भारत का इतिहास 1526 ईस्वी से 1756 ईस्वी तक

इतिहास विभाग

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय मार्ग, तीनपानी बाईपास

हल्द्वानी-263139

ई-मेल info@uou.ac.in, http@//uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष

कुलपति

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे , प्रोफेसर इतिहास एवं निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा**,** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**,** हल्द्वानी
प्रोफेसर आर.पी. बहुगुणा, प्रोफेसर इतिहास एवं पूर्व निदेशक**,** दूरस्थ शिक्षा केन्द्र **,** जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय**,**दिल्ली
प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी, पूर्व विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग**,** एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय**,** श्रीनगर (गढ़वाल)
प्रोफेसर वी.डी.एस.नेगी, विभागाध्यक्ष इतिहास**,** एस.एस.जीना विश्वविद्यालय**,**अल्मोड़ा
प्रोफेसर एम.एम.जोशी, इतिहास एवं समन्वयक इतिहास**,** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**,** हल्द्वानी
श्री विकास जोशी, असिस्टेण्ट प्रोफेसर(एसी)**,** इतिहास विभाग**,** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**,** हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक- डॉ. मदन मोहन जोशी

इकाई लेखन

ब्लाक एक

इकाई एक : मुगलकालीन इतिहास के स्रोत -- डॉ. जीतेश कुमार जोशी, सहायक प्राध्यापक(एसी),उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी
इकाई दो : मुगल राज्य व्यवस्थाः बाबर एवं हुमायूं – प्रोफेसर(रि.) जी.एम. जसवाल, कुमायूँ विश्वविद्यालय
इकाई तीन : शेरशाह एवं उसका प्रशासन, भू-राजस्व व्यवस्था विकास जोशी , सहायक प्राध्यापक(एसी),उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

ब्लाक दो

इकाई चार : अकबर उसकी धार्मिक एवं राजपूत नीति तथा जहांगीर– प्रोफेसर(रि.) जी.एम. जसवाल, कुमायूँ विश्वविद्यालय
इकाई पांच: शाहजहां, औरंगजेबः धार्मिक तथा दक्षिणी नीति– प्रोफेसर(रि.) जी.एम. जसवाल, कुमायूँ विश्वविद्यालय
इकाई छह : मुगलकालीन अर्थव्यवस्था का विकास एवं विस्तार -- डॉ. सम्पत्ति नेगी, सहायक प्राध्यापक(एसी),उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

ब्लाक तीन

इकाई सात: मुगलों की उत्तर-पश्चिमी एवं मध्य एशिया की नीति-- विकास जोशी, सहायक प्राध्यापक(एसी),उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
इकाई आठ: मुगलों के राजत्व का सिद्धान्त– प्रोफेसर(रि.) जी.एम. जसवाल, कुमायूँ विश्वविद्यालय
इकाई नौ : मुगल प्रशासन का स्वरुप, वित्त व्यवस्था, मनसबदारी व्यवस्था, जागीरदारी प्रथा, भू-राजस्व व्यवस्था– प्रोफेसर(रि.) जी.एम. जसवाल, कुमायूँ विश्वविद्यालय

ब्लाक चार

इकाई दस : शिवाजी की राजनीतिक उपलब्धियां एवं प्रशासन--- डॉ. सम्पत्ति नेगी, सहायक प्राध्यापक(एसी),उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
इकाई ग्यारह : मराठों के उत्थान के कारण तथा पेशवाओं के अंतर्गत मराठा प्रशासन– डॉ. सम्पत्ति नेगी, सहायक प्राध्यापक(एसी),उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
इकाई बारह: उत्तरकालीन मुगल, नादिरशाह का आक्रमण, पानीपत का तृतीय युद्ध डॉ. सम्पत्ति नेगी, सहायक प्राध्यापक(एसी),उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

ब्लाक पांच

इकाई तेरह : मुगल साम्राज्य का पतन-- डॉ. जीतेश कुमार जोशी, सहायक प्राध्यापक(एसी),उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
इकाई चौदह: भारत में यूरोपियों का आगमन एवं औपनिवेशिक शक्ति का सुदृढ़ीकरण -- विकास जोशी, सहायक प्राध्यापक(एसी), उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

आई.एस.बी.एन. :
कॉपीराइट : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष :
Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
Printed at :

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथ्वा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इकाई एक: मुग़लकालीन इतिहास के स्रोत

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 साहित्यिक स्रोत

1.2.1 फ़ारसी स्रोत

1.2.2 संस्कृत स्रोत

1.2.3 मराठी स्रोत

1.2.4 गुरबानी स्रोत

1.2.5 हिंदी स्रोत

1.2.6 यूरोपीय यात्रा-वृत्तांत

1.3 पुरातात्विक स्रोत

1.3.1 वास्तुकला

1.3.2 सिक्के

1.4 चित्र-संग्रह और मुरक़्क़ा

1.5 सारांश

1.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.7 शब्दावली

1.8 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

भारतीय इतिहास लेखन में मुग़ल काल को 1526 ईस्वी से शुरू हुआ माना जाता है. इससे पूर्व के समय को उत्तर भारत के विशेष संदर्भ में सल्तनत काल कहा गया है. 1526 में पानीपत के मैदान में बाबर के नेतृत्व में मुग़लों ने अफ़ग़ानों को हराकर सत्ता से बेदख़ल कर दिया था. अफ़ग़ान शासकों के समय में इतिहास सम्बंधी विशेष सामग्री का सृजन नहीं हुआ था, लेकिन मुग़लों के आगमन के साथ ही काफ़ी बड़े स्तर पर फ़ारसी तारीख़ों का लेखन हुआ, वहीं अकबर के काल में अनुवाद और लेखन के लिए विशेष प्रबंध किए गए, शाही चित्रशालाएँ स्थापित की गईं, साथ ही बहुत से विशाल निर्माण कार्यों को शुरू किया गया, ये सभी आज हमारे पार उस समय के इतिहास को जानने के लिए

स्रोत के रूप में उपलब्ध हैं। इस काल में न केवल फ़ारसी में इतिहास लेखन हुआ बल्कि संस्कृत, मराठी और हिंदी की उपभाषाओं अवधी और ब्रज में भी विशेष रूप से साहित्य सृजन हुआ, जो तत्कालीन समाज, राजनीति, धर्म और अर्थव्यवस्था को समझने के लिए कम महत्व का नहीं है। इसके अलावा बादशाहों द्वारा ज़ारी फ़रमान, शहज़ादों के निशान इत्यादि आदेश भी महत्वपूर्ण हैं। सरकारी दफ़्तरों के दस्तावेज़ और इंशा साहित्य भी इस समय के लिए हमें व्यापक रूप से उपलब्ध है। मुग़ल काल में बड़े स्तर पर सिक्के भी ज़ारी किए गए, जो हमें आज उपलब्ध हैं। इस इकाई में हम इन विभिन्न प्रकार के स्रोतों के विषय में पढ़ेंगे और साथ ही उस काल के इतिहास के निर्माण में इनके महत्व की भी चर्चा करेंगे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- मुग़लकालीन इतिहास के स्वरूप के विषय में जान पाएँगे;
- मुग़लकालीन इतिहास के विभिन्न भाषाओं में लिखे गए साहित्यिक स्रोतों के विषय में जान पाएँगे;
- मुग़लकालीन पुरातत्व का उस काल के इतिहास-निर्माण में क्या महत्व है, इसे समझ पाएँगे,
- भारतीय मध्यकाल में चित्र-संग्रहों की इतिहास लेखन में भूमिका का आकलन कर पाएँगे।

1.2 साहित्यिक स्रोत

मुग़ल काल में हिंदुस्तान में कई तरह का साहित्य लिखा गया, जो उस काल के इतिहास को समझने के लिए स्रोतों के रूप में हमारे काम आते हैं. फ़ारसी तारीख़ लेखन की परंपरा इस समय और परिपक्व हुई। संस्कृत में, विशेषकर जैन आचार्यों ने रचनाएँ कीं। इन आचार्यों ने अपभ्रंश में लिखना भी ज़ारी रखा। मराठी में भी विपुल सरकारी और ग़ैर सरकारी साहित्य सामने आया। हिंदी में भक्ति और रीति काव्य मुख्यधारा का साहित्य था, वहीं कुछ इतिहास-परक चरित लेखन भी रचा गया। यूरोपीय यात्रियों ने भी अपने यात्रा वृत्तांत में मुग़ल कालीन भारत के विषय में व्यापक जानकारी प्रदान करते हैं। अब हम आगे के उपखंडों में इनके विषय में विस्तार से पढ़ेंगे।

1.2.1 फ़ारसी स्रोत

बाबरनामा:

मुगल साम्राज्य की नींव रखने वाले ज़हीरउद्दीन मोहम्मद बाबर ने इसमें अपने जीवन संबंधी घटनाओं को दर्ज़ किया है। इसे तुज़ुकेबाबरी भी कहा जाता है। यह किताब तुर्की भाषा में लिखी गई थी। शेख जेतुद्दीन ख़्वाजा ने इस किताब का फ़ारसी में अनुवाद किया। लेकिन इसमें सिर्फ खानवा की लड़ाई तक के हालात हैं। 1583 में अकबर के आदेशानुसार ख़ान-ए ख़ानां ने इसका फिर अनुवाद 1589-90 में किया। अँग्रेज़ी में इसका अनुवाद 1826 में मिसेज ए० एस० बेवरिज ने इसका दूसरा अनुवाद 1905 में किया जो दो भागों में है।

बाबरनामा में जून 1504 से 1529 तक यानी उसकी मौत से एक साल पहले के हालात मौजूद हैं। इसको तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पहला भाग बाबर के फ़रगना के तख़्त पर बैठने से शुरू होता है और उसके आख़िरी बार समरकंद छोड़ने पर खत्म होता है। दूसरा भाग उसके भागने से शुरू होकर हिंदुस्तान के आखिरी हमले पर खत्म होता है और तीसरा हिस्सा हिंदुस्तान के हालात से संबंधित है।

बाबर ने हिंदुस्तान का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। यहाँ की राजनीतिक दशा, प्राकृतिक दृश्य, आबोहवा, फसलें, फल-फूल और सब्जियाँ, यहाँ के व्यापार और उत्पादन वगैरह का विस्तार से ब्यौरा दिया गया है। विदेशी होने की वजह से बाबर ने उन तमाम चीज़ों को अपनी डायरी में जगह दी है जो उसके लिए नई थीं, मगर एक हिंदुस्तानी के लिए साधारण।

बाबर ने अपने बयान में बड़ी ईमानदारी से काम लिया है। बाबरनामा सिर्फ बाबर के काल की जानकारी के लिए ही अनिवार्य नहीं है, बल्कि हुमायूँ के शुरू के दौर के लिए भी प्राथमिक महत्व का स्रोत है। इसमें उसकी पैदाइश से लेकर हिंदुस्तान की जीत तक उसके हालात दिए गए हैं। हुमायूँ की अच्छाइयाँ, बुराइयाँ और उसकी व्यक्तिगत कमजोरियाँ जगह-जगह पर बयान की गई हैं।

इन खूबियों के बावजूद बाबरनामा में कुछ कमियाँ हैं। मिसाल के तौर पर हिंदुस्तान की राजनीतिक स्थिति का विवरण देते हुए बाबर ने खान देश, उड़ीसा, सिंध और कश्मीर का हाल छोड़ दिया है। पुर्तगालियों और उनकी बस्तियाँ भी नजरअंदाज कर दी गई हैं।

बाबरनामा की दूसरी कमी बीच-बीच में समय के अंतराल हैं। इनमें से कुछ बड़े अंतराल हैं: 1503-1504, 1508-1519, 1520-15251। इन अंतरालों का इतिहास लिखने के लिए हमें कई दूसरे अन्य ग्रंथों की सहायता लेनी पड़ती है। बेवरिज का मत है कि बाबर की यह आत्मकथा कई बार दुर्घटनाओं का शिकार हुई जिसके कारण यह अंश ग़ायब हो गए।

हबीब उस सियार:

इसे ख्वांदमीर ने लिखा था। इसमें बाबर के शासनकाल की घटनाओं का वर्णन किया गया है, हालांकि यह हुमायूँ के शासनकाल के दौरान पूरा किया गया था। 1529 में अफ़ग़ानों के खिलाफ बाबर के अभियान का इसमें अच्छे से वर्णन किया गया है। बाबर के काल के लिए यह किताब बहुत जरूरी है क्योंकि लेखक संसार का इतिहास लिख रहा था और मध्य एशिया के हालात से बहुत अच्छी तरह परिचित था। हिंदुस्तान पर कब्जा करने से पहले बाबर के हालात का विवरण हमारे लिए बहुत जरूरी है।

तारीख़-ए-रशीदी:

मिर्ज़ा हैदर दोग़लत की यह रचना मुगलों और मध्य एशिया के तुर्कों का इतिहास जानने के लिए अत्यधिक आवश्यक है। लेखक बाबर का मौसेरा भाई था। बाबर ने मिर्जा हैदर की बड़े प्यार से परवरिश की। अपनी व्यक्तिगत

काबिलियत और होशियारी से मिर्जा ने तरक्की की। बाबर की मौत के बाद उसने हुमायूँ की नौकरी कबूल कर ली। 1540 में उसने कश्मीर पर कब्जा कर लिया और हुमायूँ के प्रतिनिधि के रूप में हुकूमत करने लगा।

यह किताब काशगर के अब्दुल रशीद ख़ान बिन अबुल फ़तह सुलतान सईद को समर्पित की गई। इसके दो हिस्सों में मुग़लिस्तान और काशगर के मुग़ल ख़ानों का इतिहास है। तारीख़-ए-रशीदी मध्य एशिया की राजनीति पर गहरा प्रकाश डालती है। बाबर और उसके पुरखों के जीवन से संबंधित घटनाओं को मिर्जा ने बड़े दिलचस्प अंदाज़ में बयान किया है।

उसने हुमायूँ के काल का विस्तार से वर्णन किया है। खासतौर से कन्नौज की लड़ाई का हाल जैसा मिर्जा ने पेश किया है, वैसा अन्यत्र नहीं मिलता है। वह खुद शाही फौज के एक दस्ते का कमांडर था। हुमायूँ की आदतों और चरित्र के बारे में जो कुछ उसने लिखा है, वह इसलिए और ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि वह हुमायूँ को बहुत करीब से जानता था। साथ ही उसे कुछ दिनों तक उसके साथ काम करने का अवसर भी मिला था। दूसरे लेखकों की तरह उसने भी मिर्ज़ा कामरान की आलोचना की है, परंतु साथ ही उसने शहज़ादे के बारे में कुछ ख़ास बातें बताई हैं। वह कन्नौज की लड़ाई के शुरू में कामरान का दोष, पंजाब और कंधार में कुछ विद्रोही शक्तियों के पनपने की वजह से कामरान का आगरा से भागना, इत्यादि का उल्लेख करता है।

क़ानूने हुमायूँनी :

यह ख़्वांदमीर की आखिरी रचना है। जैसा कि उसके बयान से जाहिर होता है। मार्च 1533 में उसने इस किताब को लिखना शुरू किया और मई 1534 के बाद पूरा किया।

भूमिका समेत इस किताब में नौ अध्याय हैं। क़ानूने हुमायूँनी हुमायूँ के काल का एक समसामयिक ग्रंथ है। ख़्वांदमीर ने जो घटनाएँ बयान की हैं, वे स्वयं उसकी आँखों देखी थीं। इससे उसका बयान भरोसे के काबिल है, इसमें बहुत से नियम, कानून और दरबार के रीति-रिवाजों का जिक्र किया गया है। हुमायूँ के उसूल, उसके शासन संबंधी अनुभव और नई-नई दरबार की रस्में जो हमारे लेखक ने खुद देखी थीं, विस्तार से बयान की हैं।

साथ ही ख़्वांदमीर के ग्रंथ में वे सारी ख़राबियाँ मौजूद हैं जो सरकारी इतिहासकार की रचना में होनी चाहिए। उसने हुमायूँ की जबरदस्त चापलूसी की है। इसमें कठिन फ़ारसी भाषा का प्रयोग किया गया है। इससे रचना का ऐतिहासिक महत्व कम नहीं होता, लेकिन उसको समझना थोड़ा मुश्किल हो जाता है।

हुमायूँनामा:

गुलबदन बेगम बाबर की बेटी थी। उसका जन्म 1523 के करीब हुआ था। बाबर की मृत्यु के समय बेगम की आयु आठ वर्ष थी। हुमायूँ ने उसे बड़े प्यार से रखा जैसा कि उसने खुद लिखा है। कन्नौज की हार के बाद वह काबुल में

रही और 1545 में हुमायूँ की वापसी पर अति प्रसन्न हुई। उसने हुमायूँ और कामरान के बीच अफगानिस्तान में हुई लड़ाइयों का जिक्र बड़े रोचक ढंग से किया है।

हुमायूँनामा दो हिस्सों में बँटा हुआ है। पहला हिस्सा बाबर के इतिहास से संबंधित है और दूसरा हुमायूँ के हालात बयान करता है। बाबर के बारे में उसने बहुत विस्तार से नहीं लिखा है क्योंकि कम उम्र होने की वजह से उसको बहुत सारी बातें याद नहीं रही थीं। इसके लिए उसे दूसरों से जानकारी लेनी पड़ी। हुमायूँ के जीवन, उसकी लड़ाइयों, उसके दुःख और संकट वगैरह का जिक्र बेगम ने विस्तार से किया है। राजनीतिक घटनाओं के अलावा इस किताब में सामाजिक रीति-रिवाजों का हवाला भी मिलता है ।शादी-ब्याह की रस्मों और "मुगल हरम" के रीति-रिवाजों का विवरण बेगम बड़े चाव से करती हैं।

किताब का वह हिस्सा जो हुमायूँ से संबंधित है, तीन भागों में बँटा हुआ है: पहले हिस्से में हुमायूँ के सिंध छोड़ने से काबुल पहुँचने और कामरान को अंधा करने तक की घटनाएँ दी गई हैं; दूसरे हिस्से में हुमायूँ की सिंध से ईरान की यात्रा और काबुल की जीत का जिक्र है; तीसरे हिस्से में ख़िज़र ख़्वाजा और दूसरे रिश्तेदारों के बयान किए हुए हालात हैं। हुमायूँ के सिंध छोड़ने से पहले की राजनीतिक घटनाओं और सैनिक गतिविधियों और महत्वपूर्ण लड़ाइयों को सिर्फ चंद शब्दों में पेश किया गया है। लेकिन "हरम" की बेगमों के जीवन, हुमायूँ का अपनी माँ और बहनों से गहरा प्यार, मिर्ज़ा हिंदाल की शादी की रस्मों जैसी घटनाओं को बेगम ने काफी विस्तार से लिखा है।

तज़किरातुल वाक़यात:

इस किताब का लेखक जौहर आफ़ताबची है जो हुमायूँ का पुराना नौकर था और अच्छे बुरे समय में उसके साथ रहा था। हिरात में पादशाह से मिलने से लेकर हुमायूँ के पंजाब पर कब्जा कर लेने तक वह लगातार हुमायूँ के साथ रहा। यह किताब अकबर के आदेश पर लिखी गई थी।

1586-87 में इस किताब का लिखना शुरू किया गया। तज़किरा उपअध्यायों में विभाजित है। पहले चार में चौसा से हुमायूँ की फरारी तक के हालात हैं। बिलग्राम की लड़ाई में हुमायूँ की हार और उसके आगरा से भाग कर सिंघ पहुंचने तक का हाल पाँचवें और छठे अध्याय में दिया गया है। सातवें से उन्नीसवें अध्याय तक हुमायूँ का सिंध में मारे-मारे फिरना, उसका ईरान में ठहरना और काबुल तथा कंधार का जीतना जैसे हालात का जिक्र है। आखिरी छह अध्यायों में उसका हिंदुस्तान के लिए रवाना होना, उसको जीतना, उसकी मृत्यु और अकबर का तख्त पर बैठना बयान किया गया है।

वाकयात-ए-मुशताकी:

लोदी और सूरकाल पर रोशनी डालने वाली यह सबसे पहली किताब है। वाकयात-ए-मुशताकी में बहलोल लोदी से लेकर अकबर के शासनकाल के मध्य भाग तक के वाकयात मौजूद हैं। रिज़वी के विचार में यह कोई इतिहास

की किताब नहीं है, वरन कुछ पादशाहों और उनके "उमरा" से संबंधित किस्से-कहानियों का संग्रह है जो लेखक की अपनी याददाश्त पर आधारित है।

वाकयात का लेखक रिज़कुल्लाह मुशताकी एक इज्जतदार तुर्क घराने का सदस्य था। वाकयात-ए-मुशताकी की कहानियाँ अपने काल के राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक पहलुओं पर गहरी रोशनी डालती हैं। जो कहानियाँ बहलोल लोदी से संबंधित हैं वो अफगानों के कबीलाई ढाँचे को जाहिर करती हैं। लेखक ने सिकंदर लोदी के कारनामों को अकबर के कारनामों पर प्राथमिकता देने की कोशिश की है।

मुशताकी ने इन कहानियों के माध्यम से देश की न्याय व्यवस्था, जासूसी विभाग की कुशलता, फौज की भर्ती, इकता प्रणाली और गाँव के सामाजिक जीवन जैसे विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है।शेरशाह की उदारता, उसके जमाने का अमन और सुकून और शासन संबंधी सुधारों को बयान किया गया है। कहीं-कहीं बिलकुल नई जानकारी दी गई है। मिसाल के तौर पर 1531 तक शेरशाह के पास सिर्फ 6000 सवार थे। लेकिन उस चार साल के अरसे में जब हुमायूँ गुजरात में व्यस्त था, उसके सवारों की संख्या बढ़कर 70,000 तक पहुँच गई, जिसका कारण यह था कि बहादुरशाह की तबाही के बाद सारे अफगान उमरा शेरशाह के इर्द-गिर्द जमा हो गए।

वाकयात-ए-मुशताकी को बहुत होशियारी से इस्तेमाल किया जाना चाहिए क्योंकि लेखक ने अपने विचारों को किस्सों और कहानियों के माध्यम से हम तक पहुँचाया है। ऐतिहासिक सत्य को इन बेसिर-पैर की कहानियों से अलग करना काफी मुश्किल हो जाता है। लेखक कभी-कभी सुनी-सुनाई बातों पर पूरा विश्वास कर लेता है जिससे एक इतिहासकार की कठिनाई और बढ़ जाती है।

तोहफ़ा-ए-अकबरशाही:

अब्बास ख़ाँ सरवानी ने यह किताब अकबर के आदेश पर लिखी थी। उसने शेरशाह सूरी के कारनामों को उजागर करने की पूरी कोशिश की है। लेखक ने अपनी याददाश्त और ऐसे अफ़गान उमरा को अपना स्रोत बनाया है जिनको वह ख़ुद जानता था। तोहफ़ा-ए-अकबर शाही अकबर को समर्पित की गई थी। उसके लिखने की सही तारीख़ निर्धारित करना मुश्किल है। इसका मकसद तारीख़-ए-अलफ़ी के लिए सामग्री जमा करना था।

अब्बास ख़ाँ सरवानी अपनी किताब सुल्तान बहलोल लोदी के जिक्र से शुरू करता है। शुरू का भाग इतना प्रभावशाली नहीं है जितना कि 1538 के बाद का हिस्सा है। चौसा की लड़ाई के मुकाबले में बिलग्राम की लड़ाई का जिक्र काफी विस्तार से किया गया है।

तारीख़-ए-शाही:

अहमद यादगार ने किताब के आरंभ में ही अपने को सूर पादशाहों का पुराना मुलाजिम बताया है और लिखा है कि बंगाल के दाऊद शाह ने उसे अफ़गान सुल्तानों का इतिहास लिखने का हुक्म दिया था।यह किताब बहलोल लोदी के काल से शुरू होती है और इसमें हुमायूँ, अकबर और जहाँगीर के शासनकाल का भी विवरण मिल जाता है।

तारीख़-ए-शाही के सबसे महत्वपूर्ण भाग में बाबर के आख़िर के दो सालों का विवरण है। यह हिस्सा बाबरनामा में पाए जाने वाले अंतरालों को पूरा करता है।

तज़किरा-ए-हुमायूँ व अकबर:

बायज़ीद बयात 1587 से शाही रसोई के प्रबंधक के पद पर काम कर रहा था। वह लिखता है कि अकबर ने सारे बुद्धिमान और समझ रखने वाले दरबारियों को हुक्म दिया था कि वह इतिहास लिखें और हुमायूँ के दौर से संबंधित जो कुछ भी किसी को याद हो, उसको कलमबंद किया जाए। बायजीद ने इस किताब की रचना इसी हुक्म के अनुसार की। यह किताब अबुल फजल के इस्तेमाल के लिए लिखी गई थी। बायज़ीद 1544 में ईरान में हुमायूँ के मुलाज़िमों में शामिल हुआ था, उसने हुमायूँ के बड़े उमरा के साथ काम किया था, विशेष रूप से मुनीम ख़ाँ के साथ जो पहले काबुल का गवर्नर था और बाद में अकबर के दरबार में उसने वकील का रुतबा हासिल किया था। इस तरह वह दरबार के प्रमुख व्यक्तियों के निकट रहा था।

इस रचना का आरंभ हुमायूँ की ईरान रवानगी से होता है। उसने उन "उमरा" की सूची दी है जो हुमायूँ हमसफर थे। हुमायूँ का काबुल पर कब्जा करने का हाल महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ बहुत दिलचस्प भी है, क्योंकि उससे हुमायूँ के व्यक्तित्व पर रोशनी पड़ती है। उसकी उदारता, उसकी ज्योतिष और चित्रकारी में रुचि, उसकी कलाकारों और विद्वानों की सरपरस्ती आदि के बारे में जानकारी मिलती है।

अकबर के बारे में बायज़ीद ने बहुत उपयोगी जानकारी दी है। उसने उसके अनुभव और बड़े-बड़े कारनामों का सिर्फ जिक्र ही नहीं किया है, लगान व्यवस्था, जागीरों के शासन और "घोड़े दागने" की रस्म वगैरह का विस्तार से वर्णन किया गया है।

नफ़ाइस-उल मासिर:

शायद अकबर के काल पर सबसे पहली ऐतिहासिक किताब यही है। मीर अलाउद्दौला कजवीनी ने इस किताब की रचना की। यह किताब कवियों की जीवनी पर आधारित है। इसे 28 अध्यायों में बाँटा गया है। अलग-अलग अध्यायों में अलग-अलग कवियों का उनके "तख़ल्लुस" के पहले शब्द के अनुसार जिक्र किया गया है।

इस रचना में 1565-66 से 1574-75 तक के हालात मौजूद हैं। बाबर, हुमायूँ और अकबर के समय से उमरा और बाबर और दूसरे तैमूरी शहजादों की औलादों का उल्लेख उसने "बेतों" (अध्यायों) में किया है, जिनमें कवियों का वर्णन है।

इस ग्रंथ में अकबर को शरीयत का उस्ताद और उलमा का सरपरस्त बताने की कोशिश की गई है। उसकी विजय को इस्लाम फैलाने के जलवे से जोड़ा गया है। लेखक राजा भारमल को मुतीउलइस्लाम (इस्लाम का वफादार) की पदवी देता है। उसका मत है कि गुजरात की फतह के पीछे कोई राजनीतिक कारण नहीं था बल्कि अकबर का मतलब वहाँ के अफगान महदीयों को जड़ से खत्म कर देना था।

आगरा और फतेहपुर सिकरी की बहुत सी इमारतों का हाल इस किताब के महत्व को और बढ़ा देता है। इसमें अकबर के दरबारी गवैयों और शायरों का हवाला भी मिलता है। उमरा और "शोरा" की जिंदगी सामाजिक, मजहबी तथा इल्मी माहौल को प्रकट करती है।

तारीख़-ए-अकबरी:

यह नफ़ाइस-उल मासिर के ढंग पर लिखी गई अकबर के दौर से संबंधित एक और किताब है। इसका लेखक आरिफ कंधारी 1545 के बाद बैरम ख़ाँ और बाद में मुज़फ़्फ़र ख़ाँ का मुलाजिम हो गया। तारीख़-ए-अकबरी की रचना अगस्त 1585 तक पूरी हुई।

कंधारी ने अकबर के सुधारों की चर्चा की है। जमींदारों के प्रति नीति को लेखक ने अकबर का सबसे बड़ा कदम बताया है। वह लिखता है कि हिंदुस्तान में लगभग दो-तीन सौ जमींदार हैं जिनको शक्ति के बल पर काबू में लाना असंभव है। शहंशाह ने अपनी अक़्लमंदी से उनको अपने साथ मिला कर अमन और सुकून का रास्ता हमवार कर दिया है। अकबर के करोड़ियों के ज़रीब की सराहना करते हुए उसने लिखा है कि इसका मकसद खेती को बढ़ावा देना, "ऐमादारों" के कपट को रोकना और उनकी और किसानों की जमीनों की सही निशानदेही करना था। दाग प्रथा के लागू करने, जागीरों के जब्त करने और मनसबदारों को नकदी तनख्वाह बँटवाने से जो तनाव उत्पन्न हुआ, उसका पूरा ब्यौरा हमारे लेखक ने पेश किया है।

तारीख़-ए-अलफ़ी:

इस्लाम के एक हजार साल पूरा होने के सिलसिले में अकबर ने इस इतिहास को लिखने का आदेश दिया। यह मुस्लिम शासकों का एक साधारण इतिहास है जो पैग़म्बर मोहम्मद की मौत से शुरू होता है। सात विद्वानों का एक बोर्ड बनाया गया और एक साल का इतिहास एक लेखक को सौंपा गया था। इस दल में हर नज़रिए और विचार के लोग मौजूद थे। अकबर ने बयान की वास्तविकता और पूर्णता पर जोर दिए जाने का हुक्म दिया। चूँकि यह बोर्ड अकबर की मर्जी के मुताबिक काम नहीं कर सका, इसलिए यह जिम्मेदारी मुल्ला अहमद ग़ल्वी पर डाल दी गई। उसने 1294 ई. तक के हालात लिखे। 1588 में उसके कत्ल के बाद यह जिम्मेदारी आसफ खाँ जाफ़र बेग को सौंप दी गई। उसका काम गाज़ान ख़ाँ से शुरू होकर 1588-89 तक आता है। 1591-92 में बदायूँनी को उसे दोहराने और तारीखों की गलतियों को दूर करने का हुक्म दिया गया।

दिल्ली सल्तनत के दौर के हालात मिनहाज़ुद्दीन सिराज की तबकात-ए-नासिरी और जियाउद्दीन बरनी की तारीख़-ए-फिरोज़शाही, पर आधारित है। तैमूर के हमले का हाल ज़फ़रनामा-ए-शरफ़ुद्दीन अली यज़दी से लिया गया है। बाबर के बारे में पूरी जानकारी तुज़ुक-ए-बाबरी से हासिल की गई है। हुमायूँ और शेरशाह का हाल विस्तार से दिया गया है। अकबर को ख़ुदा का ख़ास और चुनिंदा बंदा बताने की कोशिश की गई है, एक ऐसा कामिल इनसान जो

दुनिया की मसरूफ़ियत और सल्तनत के काम-काज के साथ-साथ रूहानी मशक्कतों को भी नजरअंदाज नहीं करता। अकबर के व्यक्तित्व को "पादशाह-ए-इस्लाम" के रूप में उभारा गया है।

अकबरनामा:

अबुल फजल के पुरखे पंद्रहवीं शताब्दी के आसपास नागौर में बस गए थे। अबुल फ़ज़ल के पिता शेख़ मुबारक को अपने जमाने के बड़े-बड़े विद्वानों के साथ बैठने का मौका मिला। उसने अपने पिता शेख मुबारक से ही विद्या प्राप्त की। शुरू से ही जहीन और मेहनती होने के कारण 15 वर्ष की आयु में उसने परंपरागत शिक्षा प्राप्त कर ली। अपने माता-पिता की मृत्यु के पश्चात शेख़ मुबारक नागौर से अहमदाबाद आ गए, जहाँ महदवी आंदोलन का बड़ा जोर था। शेख़ मुबारक भी उसके प्रभाव से न बच सक, यह आंदोलन समकालीन मुस्लिम समाज की बुराइयों के विरोध में चलाया गया था। इस आंदोलन को राजनीतिक शक्तियों ने कुचलने की पूरी कोशिश को क्योंकि यह फ़िरक़ा धर्म और राजनीति दोनों से जुड़ा हुआ था। अकबर के काल में भी, विशेषकर 1560 के बाद जब बैरम खाँ के पतन के बाद शेख अब्दुल नवी और अब्दुल्ला सुल्तानपुरी जैसे कट्टर व्यक्तियों को सिर उठाने का मौका मिला, महदवियों पर अत्याचार बढ़ गए। शेख़ मुबारक की इस गिरोह के साथ हमदर्दी ने उसे भी परेशानी में फंसा दिया। उसको जमीन जब्त कर ली गई और गिरफ्तारी के आदेश दे दिए गए। कट्टर उलमा के इस व्यवहार का अबुल फजल के दिमाग पर गहरा असर पड़ा। 1574 में अबुल फजल अकबर की मुलाजमत में दाखिल हुआ। अपनी सूझबूझ और विचारों की उदारता के कारण वह बहुत जल्दी पादशाह के निकट आ गया। 1589 या 1590 में उसको अकबर के काल का इतिहास लिखने का आदेश मिला।

अबुल फजल ने इतिहास से संबंधित अरबी और फ़ारसी की सारी महत्वपूर्ण किताबों का अध्ययन किया था, सारे सरकारी रिकार्ड उसके इस्तेमाल में थे। तारीख-ए-अल्फी के लिए जुटाई गई सामग्री भी मौजूद थी। अबुल फजल ने शाही फरमानों और दूसरे दस्तावेजों का भी इस्तेमाल किया।अबुल फज़ल का मकसद अकबर को जीवन के रूहानी पहलू को उजागर करना था। अकबर की सुलह-ए-कुल की नीति को लोगों तक पहुँचाना और पादशाह के व्यक्तित्व की महानता को मनवा देना भी इस किताब के उद्देश्यों में शामिल है। अबुल फजल का विचार था कि पादशाहत खुदा की देन है। इसीलिए उसने चंगेज खाँ को एक खास रूहानी अंदाज में बयान किया है। सात साल की मेहनत के बाद अबुल फजल ने 1597-98 में अकबरनामा पूरा करके अकबर के सामने पेश किया। यह तीन जिल्दों में बँटा हुआ है। तीसरी जिल्द आइने अकबरी है।

पहला हिस्सा अकबर की पैदाइश के तफसील बयान से शुरू होकर 15 सितंबर 1572 पर खत्म होता है। यानी अकबर के जीवन के तीस साल का इतिहास इसमें मौजूद है। दूसरे दिलचस्प विषय, जिनका इस हिस्से में जिक्र किया गया है, वे सृष्टि की रचना, विभिन्न धमों की विचारधारा, आदम और दूसरे पैगंबरों के वर्णन और अकबर के पूर्वजों के हाल आदि से संबंधित हैं। दूसरे हिस्से में अकबर की तख्तनशीनी से 46वें साल तक के हालात दिए गए हैं।

तीसरा हिस्सा यानी आइने अकबरी अकबरनामा की जान है। इससे अबुल फजल के इल्मी मयार, तहकीक की गहराई और तारीखी सूझबूझ का अंदाजा होता है। इसके पाँच हिस्से हैं। पहले हिस्से में 10, दूसरे में 30, और तीसरे में 16, "आईन" (विनियम) हैं। चौथे हिस्से में हिंदुस्तान की जातियों, ऋतुओं, फसलों और कुदरती सौंदर्य का जिक्र है। हिंदुओं के फलसफे, राजनीति, साहित्य, धार्मिक जीवन और उनकी न्याय प्रणाली आदि विषयों पर विस्तार से रोशनी डाली गई है। आखिर में हिंदुस्तानी संतों और कुछ विदेशी सूफियों की जीवनियाँ दी गई हैं। पाँचवें हिस्से में सिर्फ दो अध्याय हैं जिनमें अकबर की कहावतें और अबुल फजल की आत्मकथा है।

तबकात-ए-अकबरी:

इसके लेखक निज़ामुद्दीन अहमद थे। उनके पिता का नाम ख्वाजा मोहम्मद मुकीम था जो बाबर का दीवान-ए-बयूतात था। निजामुद्दीन एक पढ़ा लिखा और मिलनसार आदमी था। बहुत से हमलों में वह अकबर के साथ रहा। उसने गुजरात में बख्शी के पद पर काम किया। मालवा और अजमेर में भी वह ऊँचे ओहदों पर नियुक्त रहा। ऐसे में उसे हालात की व्यक्तिगत जानकारी हासिल करने में काफी मदद मिली। वह तारीख-ए-अलफी लिखने वाले बोर्ड का सदस्य भी रहा था। तबकात-ए-अकबरी हिंदुस्तान की साधारण तारीख है। यह नौ हिस्सों में विभाजित है। सलातीन-ए-देहली और मुगलों का हाल पहले दो हिस्सों में दिया गया है। दकन, गुजरात, मालवा, बंगाल, जौनपुर, कश्मीर, सिंध और मुलतान के हालात बाकी हिस्सों में दिए गए हैं।

निज़ामुद्दीन ने अकबरनामा और आईने अकबरी से पूरा फायदा उठाया है। इसके अलावा उसने 28 दूसरे ग्रंथों का भी हवाला दिया है, लेकिन उनमें से बहुत से अब उपलब्ध नहीं हैं। बाबर के हालात ज्यादातर बाबरनामा से लिए गए हैं। उसने अपने पिता की जानकारी से पूरा फायदा उठाया है। हुमायूँ और अकबर के हालात काफी हद तक तारीख़-ए-अलफ़ी से लिए गए हैं।

मुन्तख़ब-उत-तवारीख़:

अब्दुल कादिर बदायूँनी की मुन्तख़ब-उत-तवारीख़ मुग़ल काल की एक और अहम तारीख़ है। अकबर के इतिहासकारों के तीन तबके हैं। पहले वे लोग जो अकबर को नायक मानकर चले हैं, जैसे अबुल फ़ज़ल। उनके लिए अकबर की हर हरकत काबिले तारीफ़ और हर काम मशीयत-ए-इलाही का मज़हर था। दूसरी किस्म के वे लोग जो अकबर की तारीफ में इंतहापसंदी का शिकार नहीं हुए हैं। उन्होंने हालात को तटस्थ बुद्धि से जाँचा और परखा है, जैसे निज़ामुद्दीन अहमद। तीसरा तबका फिर इंतहापसंदों का है जिन्होने अकबर की मुख़ालिफ़त और उसके रवैए की काट को अपना मकसद बना कर इतिहास लिखा है। मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूँनी का नाम इसी फेहरिस्त में शामिल है। मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूंनी की कृति भारत में गौरी के आक्रमण से लेकर अकबर के शासनकाल के अंत तक मुस्लिम शासन का इतिहास है, जो धार्मिक पूर्वाग्रह से लिखा गया है। इस प्रकार इस कृति में अकबर के शासनकाल

का इतिहास रूढ़िवादी सुन्नी दृष्टिकोण से लिखा गया है। स्वाभाविक रूप से यह सुलह-ए-कुल के सिद्धांतों पर आधारित अकबर की नीतियों की आलोचना बन जाती है।

जहाँ तक पुस्तक की संरचना का प्रश्न है, यह तीन खंडों में विभाजित है। पहला खंड गोरी आक्रमण से लेकर हुमायूँ के शासनकाल के अंत तक, यानी 1556 तक उत्तर भारत में मुस्लिम शासन के इतिहास से संबंधित है। पुस्तक की आंतरिक समीक्षा से पता चलता है कि बदायूँनी ने दो स्रोतों से जानकारी प्राप्त की: तारीख-ए मुबारकशाही (याह्या बिन अहमद सरहिंदी) और तबक़ात-ए अकबरी। बाद के सूर काल के लिए, बदायूँनी व्यक्तिगत जानकारी और आंशिक रूप से अन्य स्रोतों के माध्यम से उसके पास उपलब्ध जानकारी पर आधारित है। 1553-56 के बीच की अवधि के लिए सूर साम्राज्य के बारे में बदायूँनी का विवरण बहुत महत्वपूर्ण और मौलिक है। यह हमारे पास उपलब्ध एकमात्र विस्तृत विवरण है जो आदिल शाह सूर और अन्य शासकों के अधीन राजनीतिक घटनाक्रम को बताता है, जिन्होंने सूर के सिंहासन पर अपना दावा पेश किया था।

मुंतख़ाब का दूसरा खंड अकबर के शासनकाल के इतिहास से, 1595 तक की अवधि से संबंधित है। इस खंड में बदायूंनी ने जो आखिरी घटना दर्ज की है, वह फ़ैजी की मौत है जो 1595 में हुई थी। तीसरे खंड में मशाइख, उलेमा, चिकित्सकों और कवियों की बड़ी संख्या में जीवनियाँ शामिल हैं: उन्होंने अपने समय के 38 महत्वपूर्ण मशाइख, 49 प्रमुख उलमा, 15 प्रसिद्ध चिकित्सकों और 167 प्रसिद्ध कवियों की जीवन संबंधी जानकारी दी है। इसके लिए उन्होंने कवियों के तज़किरों से बहुत सी सामग्री उधार ली है, जिन्हें अलाउद्दौला काज़विनी ने अपने नफ़ाइस उल मआसिर के हिस्से के रूप में संकलित किया था।

तुज़ुक-ए-जहाँगीरी:

यह जहाँगीर के काल का प्रथम स्रोत है। इसमें लड़ाइयों को पूरे हालात, उनके कारण शाही फौजों की दक्षिण में हार, शाही अफसरों में फूट, उनके लगातर तबादले और उनका अपने कर्त्तव्य से मुँह मोड़ना जैसी घटनाओं का विस्तार से वर्णन है। तुज़ुक में शासन-संबंधी कानूनों को पूरी तरह दर्ज़ किया गया है। अपने जीवन, दैनिक व्यस्तता और अपने व्यक्तित्व से संबंधित बातों को उसने बड़ी ईमानदारी से लिखा है। तुज़ुक की अहमियत सिर्फ जहाँगीर की जिंदगी तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसके वजीरों और अधिकारियों के जीवन, उनकी विचारधारा और उनके बारे में खुद पादशाह की राय जानने के लिए भी तुज़ुक बहुत जरूरी है। जहाँगीर ने अजमेर, मालवा, गुजरात, पंजाब और कश्मीर को अपनी यात्राओं का पूरा विवरण देकर इतिहास में एक महान योगदान किया है। एक तरफ तो उससे मुल्क के विभिन्न भागों का हाल मालूम होता है, दूसरी तरफ प्रांतीय परिस्थितियों और गाँवों की हालत पर रोशनी पड़ती है। ये वे बातें हैं जिनका आमतौर पर पादशाहों का रचना में हवाला नहीं मिलता। जहाँगीर ने इसे अपने राज्य के सोलहवें साल तक लिखा है। बाकी घटनाओं को लिखने का काम दक्षिण से वापसी पर मौतमिद खाँ बख्शी को सौंपा गया। पादशाह

के नाम से उसने उन्नीसवें साल तक के हालात लिखे। उसके बाद की घटनाएँ लेखक ने अपने नाम से लिखी हैं जो कि उसकी किताब इकबालनामा-ए-जहाँगीर का हिस्सा है। तुज़ुक को मौलवी मोहम्मद हादी ने पूरा किया।

इकबालनामा-ए-जहाँगीरी:

जहाँगीर के सोलहवें साल से मोतमिद खाँ दरबार में रहा था और पादशाह के साथ घूमने का उसे पूरा मौका मिला था। कुछ नई बातों को छोड़कर इकबालनामा में उन्नीसवें साल तक के तमाम हालात तुजुक से ही लिए गए हैं। मोतमिद खाँ से हमें पता चलता है कि जहाँगीर के चौथे साल में ऐतमादउद्दौला को उसके बेटे शाहजादा खुसरो की रिहाई के षड्यंत्र में शामिल होने के कारण गिरफ्तार कर लिया गया था और थोड़े समय के बाद भारी जुरमाना अदा करने पर उसे कैद से रिहाई मिली।

उन्नीसवें साल के बाद के हालात जानने के लिए इकबालनामा जहाँगीर के समय का एकमात्र स्रोत था। महावत खाँ की बगावत के समय मोतमिद खाँ शाही कैंप में मौजूद था। पादशाह को महावत खाँ के चंगुल से निकालने की कोशिशों में भी उसने खास भूमिका निभाई। बेगम नूरजहाँ के निकट होने के कारण वह उसके व्यवहार को खूब समझता था और शासन पर बेगम के प्रभाव का भी उसे अंदाजा था। फिर भी बेगम की आलोचना करने में उसने कोई रियायत नहीं की है। उसने आसफ खाँ का कड़ा विरोध किया है क्योंकि उसने गद्दीनशीनी के वक्त बेगम के उम्मीदवार का विरोध किया था। उसने ऐतमादउद्दौला पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया है और उसके उत्तराधिकारी ख्वाजा अबुल हसन को बदमिजाज बताया है।

पादशाहनामा:

मोहम्मद अमीन कज़वीनी का पादशाहनामा शाहजहाँ के काल का सबसे पहला सरकारी इतिहास है। आठवें साल में कज़वीनी को यह किताब लिखने का आदेश दिया गया और बीसवें साल में उसने शाहजहाँ के पहले दस सालों का इतिहास लिखकर पादशाह के सामने पेश कर दिया। ऐसा लगता है कि लेखक इस पुस्तक को 20 साल तक लाना चाहता था लेकिन जैसा कि मोहम्मद सालेह का बयान है उसको गुप्तचर विभाग में ऐसे पद पर नियुक्त कर दिया गया था जहाँ अपनी व्यस्तता और समय के अभाव के कारण वह अपनी इस इच्छा को पूरा न कर सका। फिर भी कजवीनी ने शाहजहाँ के काल के इतिहासलेखन का प्रचलन निर्धारित कर दिया और इस काल की लगभग सारी तारीखें इसी अंदाज पर लिखी गई।

अब्दुल हमीद लाहौरी का पादशाहनामा अकबर की तरह शाहजहाँ ने भी अपने काल का इतिहास लिखवाने में खास दिलचस्पी ली और इस मकसद के लिए कर्मचारी रखे गए। लाहौरी ने शाहजहाँ के काल के शुरू के 20 साल का इतिहास लिखा है। शाहजहाँ चाहता था कि उसके काल के इतिहास को अबुल फजल के ढंग से लिखा जाए। लाहौरी जो अपनी तार्किक प्रस्तुति की वजह से बहुत मशहूर था, पटना से बुलाया गया और यह काम उसके सुपुर्द कर

दिया गया। पादशाहनामा तैमूर के हालात से शुरू होता है। इसमें शाहजादा, उमरा, विद्वानों, सूफियों, हकीमों और शायरों के हालात भी मिलते हैं जिससे शाहजहाँ के काल की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का अंदाजा होता है।

मोहम्मद वारिस का पादशाहनामा लाहौरी के काम को पूरा करने के लिए लिखा गया है। वारिस लाहौरी का शागिर्द और सहायक था। उसने अपनी किताब शाहजहाँ के इक्कीसवें साल से शुरू की और तीसवें साल पर खत्म की।

अमल-ए-सालेह:

इसका लेखक मोहम्मद सालेह कम्बों, फ़ारसी और हिंदी का अच्छा शायर था। उसका मनसब 500 था। उसने शाहजहाँ के काल का पूरा इतिहास लिखा है। शाहजहाँ के आखिरी दो सालों का हाल लिखने की वजह से इसका महत्व बहुत बढ़ गया है क्योंकि लाहौरी और वारिस दोनों ने सिर्फ 30 साल तक के हालात दिए हैं। लाहौरी की तरह सालेह ने भी मनसबदारों की सूची दी है। राजनीतिक घटनाओं के अलावा इसमें शाहजहाँ के काल के उलमा, मशहख, हुक्मा और शायरों का जिक्र भी किया गया है।

शाहजहाँ के दौर में राज्य की स्थिति और अधिकारियों से संबंधित जानकारी सादिक ख़ाँ की तारीख-ए-शाहजहाँनी से मिलती है। लेखक खुद एक बड़ा मनसबदार था, (6000/6000) इसलिए उसको हालात की अच्छी जानकारी थी। शाहजहाँ के आखिरी दौर के लिए जिसका सालेह ने भी संक्षिप्त वर्णन किया है, सादिक ख़ाँ हमारे लिए बेहद जरूरी है। औरंगजेब के आगरे पर कब्जा कर लेने के बाद हमारे लेखक ने शाहजहाँ के दूत की हैसियत से काम किया। शाहजहाँ की हुकूमत के खात्मे के साथ सादिक खाँ ने अपनी किताब को भी समाप्त किया है।

शाहजहाँ के काल का एक अन्य समकालीन और बहुत ही जरूरी लेखक चंद्रभान ब्राह्मण है। शाहजहाँ की शासन-प्रणाली और उसकी वास्तविक कार्य-प्रणाली पर चहार चमन सर्वश्रेष्ठ काम है। चंद्रभान चारों दीवानों के साथ रहा था। इस संगत ने उसको शासन संबंधी जानकारी हासिल करने में बहुत मदद दी। सादुल्ला खाँ के अधीन वह फरमान लिखने का कार्य करता था। जिससे उसका सीधा संपर्क शाहजहाँ के साथ ही रहा। इस तरह मुगल शासन के अंदरूनी ढाँचे और उसकी उलझनों का उसे पूरा ज्ञान था। साथ ही वह फारसी का बहुत बड़ा विद्वान भी था। उसने उन सारे वजीरों का हाल चहारचमन में दिया है जिनके साथ काम करने का उसे अवसर मिला था।

आलमगीरनामा:

औरंगजेब के काल का सरकारी इतिहासकार काज़िम शीराजी है। उसने औरंगजेब के पहले दस सालों का इतिहास लिखा जिसे आलमगीरनामा कहा जाता है। इसमें सारी महत्वपूर्ण घटनाओं और मशहूर लोगों के हालात नोट किए गए हैं। दूसरे सरकारी इतिहासकारों की तरह शीराजी की पहुँच भी सारे रिकाडों तक थी जिससे इसकी विश्वसनीयता साबित होती है। जिन बातों का रिकाडों में हवाला नहीं था, उनकी छानबीन करने का उसे खास हुक्म दिया गया था। उसे पादशाह से सलाह लेने की भी आजादी दी गई थी। शीराजी ने औरंगजेब की खुलकर तारीफ की है

और उसके भाइयों को "बेशुकाह""नाशुजा", ताज़ीम (कायर) कह कर नीचा दिखाया है। शाहजहाँ की भी आलोचना की गई है। लेकिन उमरा की आलोचना नहीं की गई है। जिन अमीरों ने औरंगज़ेब की मुखालिफत की थी, उनको भी अच्छे नामों से याद किया गया है।

काज़िम ने कीमतें बढ़ने, खेती की हालत बिगड़ने और सैलाबों का जिक्र किया है। औरंगजेब को यह सब बातें पंसद नहीं थीं। इसलिए उसने सरकारी तौर पर इतिहास लिखे जाने पर पाबंदी लगा दी।

काज़िम शीराजी के ढंग पर हातिम खाँ ने भी आलमगीरनामा लिखा जिसमें शुरू के दस सालों का हाल दिया गया है।

आकिल ख़ाँ राज़ी ने वाकयात-ए-आलमगीरी लिखी जिसमें उत्तराधिकार के युद्धों का विस्तार से बयान किया गया है क्योंकि उसने लड़ाई अपनी आँखों से देखी थी। औरंगजेब के समकालीन सुजनराय भंडारी ने ख़ुलासत-उत-तवारीख़ लिखी। यह हिंदुस्तान का इतिहास है जो शाहजहाँ की मृत्यु (1666) पर खत्म होता है। इसमें औरंगज़ेब के काल की आर्थिक स्थिति, राज्यों की भौगोलिक सीमाओं और खास-खास व्यापारिक मार्गों का जिक्र किया गया है। पंजाब के बारे में दिलचस्प जानकारी दी गई है। सिक्खों के हवाले भी किताब का मुख्य आकर्षण हैं। उत्तर-पश्चिमी सीमओं की अहमियत पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है। उसने काबुल और कंधार को हिंदुस्तान के दरवाजे बताया है। शायद अबुल फ़ज़ल के बाद भंडारी ही ऐसा इतिहासकार था जिसे ऐतिहासिक भूगोल का सही ज्ञान था।

ख़ाफ़ी ख़ाँ की मुन्तखब उल लुबाब औरंगजेब के काल का आलोचनात्मक वर्णन है। उसने मुग़लों द्वारा किसानों के सताए जाने का जोरदार विरोध किया है। वह लिखता है "रैयत मुग़ल नाम और कौम से डरती थी।" उसने दकन के हालात की भी आलोचना की है। अपने अनुभव के आधार पर वह मुग़ल साम्राज्य के पतन की व्याख्या करता है।

ईश्वरदास नागर की फ़ुतुहात-ए-आलमगीरी औरंगजेब के 34 वें साल तक का इतिहास है। राजपूतों के, खासतौर से राठौरों के, साथ औरंगजेब के संबंधों का पूरे विस्तार से बयान किया गया है। इस विषय पर यह सबसे अच्छी किताब है। उसने यह बताने की कोशिश को है कि 1691-92 तक औरंगजेब की नीतियाँ विफल हो गई थीं और उमरा अपनी आजाद हुकूमतें कायम करने के ख्वाब देखने लगे थे।

नुस्ख़-ए-दिलकुशा:

इसका लेखक भीमसेन सक्सेना कायस्थ था। मुगलों की सेवा छोड़ने के बाद वह राव दलपत बुंदेला का मुलाजिम हो गया। राव औरंगजेब के उन मनसबदारों में से था जो मराठों के खिलाफ लड़ रहे थे। उसका पेशकार होने के कारण भीमसेन हमेशा उसके साथ रहता था। वह सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति का विस्तार से बयान करता है। दकनियों के पहनावे, रीतिरिवाज और उनके खाने-पीने की आदतों का उसने खुलकर बयान किया है।

मुगल फौज की कमजोरी, अफसरों की आपसी जलन और उमरा के भ्रष्टाचार को भीमसेन ने बड़ी काबलियत से बयान किया है। वह लिखता है कि रिश्वत का आम चलन था। इस सिलसिले में उसने अपने चाचा की मिसाल पेश की है। नुस्ख़-ए-दिलकुशा से हमें मालूम होता है कि मुगल फौजों ने फसलों को बर्बाद किया जिससे किसानों को जमीनें-छोड़ कर भागना पड़ा। बहुत से किसान बागी मराठों से जा मिले। नतीजा यह हुआ कि जो जमीनें सोना देती थीं, अब वहाँ से ताँबे के सिक्के भी वसूल नहीं होते थे। दकन में औरंगजेब की गतिविधियों को लेखक ने बिना पक्षपात के बयान किया है। वह लिखता है कि मुग़ल किले जीतने में लगे थे और मराठे जमीनों पर कब्जा कर रहे थे।

साकी मुसतइद खाँ की मआसिर-ए-आलमगीरी औरंगजेब के काल का एक और महत्वपूर्ण स्रोत है। इससे औरंगजेब के 11 वें साल से 20 वें साल तक के हालात का समकालीन वर्णन मिलता है। उसने सतनामी विद्रोह का स्पष्टीकरण बड़े रोचक अंदाज में किया है। 1680 के बाद उमरा के, तबादलों, नियुक्तियों और तरक्की की चर्चा भी की गई है। इसी वजह से जदुनाथ सरकार ने इसे मुग़ल राज्य का गज़ेटीयर" कहा है।

इन स्रोतों के अलावा मुग़ल काल में कई और प्रकार की साम्रगी जमा की गई थी जो इतिहास लिखने में मदद करती हैं। खासतौर से शासन प्रणाली को ठीक ढंग से समझने के लिए इस प्रकार के दस्तावेज़ों का सहारा लेना बहुत जरूरी हो जाता है। इस श्रेणी में दस्तूर-उल अमल, वाकिया-ए-नवीस की रिपोर्ट, मकतुबात वगैरह मुख्य हैं।

1.2.2 संस्कृत स्रोत

मुग़ल दरबार में संस्कृत काव्यों और ग्रंथों का फ़ारसी में अनुवाद हुआ, संस्कृत की प्रशस्ति प्रकार की रचनाएँ भी इस काल में लिखी गईं. मुगल काल के संस्कृत स्रोतों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं: कृपारसकोश: जैन अनुयायीशांतिचंद्र द्वारा अकबर के लिए लिखा गया संस्कृत प्रशंसा काव्य। कविता में अकबर के जीवन और परिवार का वर्णन है। अथर्ववेद, रामायण, भगवद गीता, पंचतंत्र इत्यादि का अकबर के शासनकाल के दौरान संस्कृत से फ़ारसी में अनुवाद हुआ। सर्वदेशवृत्तांतसंग्रह सत्रहवीं या अठारहवीं शताब्दी में रचित अकबरनामा का आंशिक संस्कृत अनुवाद था. मुगलों की रुचि संस्कृत विचारों और ग्रंथों में थी। शाहजहाँ ने भी जगन्नाथ पंडितराज और कविन्द्राचार्य सरस्वती जैसे संस्कृत विचारकों को संरक्षण प्रदान किया। पद्मसुंदर का अकबरशाहीश्रृंगारदर्पण अकबर के काल में होने वाली घटनाओं और विशेषरूप से अकबर के विषय में बताता है। चतुर्भुज मिश्रा ने शाइस्ता ख़ान के लिए रसकल्पद्रुम की रचना की थी।

1.2.3 मराठी स्रोत

मराठ्यांच्या इतिहासाची साधने का संपादन वी.के. राजवाड़े ने किया था, इसमें कुछ राजनीतिक पत्र और शिवाजी और उनके समय के निजी कानूनी दस्तावेजों और चार्टरों का एक विशाल संकलन शामिल है। यह संकलन

ऐतिहासिक रुचि के कई बिंदुओं पर प्रकाश डालता है। इसके कई पत्रों में युद्ध की कूटनीति का पता चलता है। मुगल-मराठा संबंधों के अध्ययन के लिए यह अमूल्य है।

पोवाड़ा या मराठी गाथागीत, एच.ए. एक्वर्थ और एस.टी. शालिग्राम द्वारा संग्रहित हैं, अधिकतर ये मिथकीय स्वरूप की हैं और शिवाजी के जीवन काल से बहुत बाद की। अफ़ज़ल खान गाथा संभवतः सबसे पुरानी है, और शंभूजी के शासनकाल की है। यह शिवाजी के जीवन की केवल दो घटनाओं को छूती है। एकवर्थ द्वारा दस गाथागीतों का अंग्रेजी अनुवाद, 1894 में प्रकाशित किया गया था। यह पुस्तक न केवल मराठा नायक के जीवन पर प्रकाश डालती है बल्कि कभी-कभी राजनीतिक मामलों के बारे में भी जानकारी देती है।

'शिव-छत्रपति-चें चरित्र' कृष्णजी अनंत सभापति द्वारा, छत्रपति राजा राम के आदेश से, 1694 में जिंजी में लिखा गया था। लेखक शिवाजी का एक वफादार सेवक था और हालाँकि उसने तब लिखा था जब वह बहुत बूढ़ा था, लेकिन यह शिवाजी का सबसे पुराना और सबसे मूल्यवान वृत्तांत है।

मल्हार राम राव चिटनिस द्वारा लिखित 'शिव-छत्रपति-च्यें-सप्त-प्रकरणात्मक चरित्र' जानकारी का एक बहुत मूल्यवान ख़ज़ाना है। यद्यपि कई स्थानों पर गलत, या कोरी कल्पना भी शामिल है। कोई राज्य-दस्तावेज़ों का उपयोग नहीं किया गया है, सही कालक्रम का भी मौजूद नहीं है। तथापि इसका अध्ययन न केवल मराठा प्रदेश के इतिहास के लिए आवश्यक है, बल्कि यह उस काल के भारतीय इतिहास के सामान्य विकासक्रम पर भी प्रकाश डाल सकता है।

'शिवादिग्विजय' का संपादन नंदूरबारकर और एल.के. दांडेकर 1895 में किया था। सर जदुनाथ सरकार के अनुसार, "1718 में खांडो बल्लाल (शिवाजी के सचिव बालाजी अवजी के पुत्र) द्वारा लिखित रूप में इसे तैयार किया गया। प्रकाशित संस्करण स्पष्ट रूप से बड़ौदा में लिखे गए आधुनिक स्थानीय उपन्यासों की शैली से परिचित एक लेखक द्वारा गढ़ा गया था। लेकिन पुस्तक का मूल भाग 1760-74 के आसपास लिखी गई कोई खोई हुई मराठी कृति है

1.2.4 गुरबानी स्रोत

सिखों के बीच गुरबानी का प्रचलन बढ़ रहा था, चूँकि सिख गुरुओं ने इस भाषा में अपने प्रवचन दिए थे, इसलिए अनुयायियों के बीच इस भाषा की प्रमुखता थी।

बचित्र नाटक: सिखों के अंतिम गुरु, गुरु गोबिंद सिंह द्वारा लिखित 'बचित्र नाटक' उनके पूर्ववर्तियों की सामूहिक जीवनी और उनकी अपनी आत्मकथा है। इस प्रकार यह पुस्तक न केवल सिख गुरुओं के जीवन रेखा पर प्रकाश डालती है बल्कि कभी-कभी राजनीतिक मामलों के बारे में भी जानकारी देती है।

गुरु नानक की जन्म साखियाँ: भाई सेवा दास द्वारा लिखित गुरु नानक की जनम साखी आदि ग्रंथ के अंग्रेजी अनुवाद में सबसे आसानी से उपलब्ध है और संभवतः सिख धर्म के संस्थापक के जीवन के लिए हमारा सबसे पहला प्रमाण है। मध्यकालीन भारत के धार्मिक इतिहास के अध्ययन के लिए यह अमूल्य है।

वार: भाई गुरदास के वार सिख धर्म के प्रारंभिक इतिहास के बारे में जानकारी का एक उपयोगी भंडार हैं। इसकी रचना सत्रहवीं शताब्दी के पहले तृतीयांश में की गई है। यह संकलन ऐतिहासिक रुचि के कई बिंदुओं पर प्रकाश डालते हैं।
कबित्त: गुरदास की कबित्त रचनाएँ सत्रहवीं शताब्दी की पहले चतुर्थांश में की गई है। यह सिख धर्म के कठिन इतिहास के बारे में एक और उपयोगी संकलन है।

1.2.5 हिंदी स्रोत

'अमर काव्य वंशावली' मेवाड़ के महाराणा राज सिंह के राज्यारोहण की कहानी बताने वाला एक पद्य वृत्तांत है। इसकी रचना रणछोर भट्ट ने महाराणा राज सिंह के शासनकाल में की थी। इसमें 1408 श्लोक हैं, जिनमें 103 पन्ने हैं। यह मेवाड़ के राणाओं की कहानी उनकी उत्पत्ति से ही शुरू होती है। पांडुलिपि (पांडुलिपि सज्जन वाणीविलास लाइब्रेरी, उदयपुर) लेखक की लापरवाही के कारण बहुत दोषपूर्ण है। हालाँकि यह वृत्तांत प्रताप की मृत्यु के एक शताब्दी के भीतर लिखा गया था, लेकिन इसमें राजस्थान के महान नायक के वृत्तांत में भी कुछ स्थानों पर त्रुटियाँ हैं। यह राजस्थान का पूर्ण वर्णनात्मक विवरण भी देता है। लेखक ने कुछ घटनाओं का उल्लेख किया है जिन्हें उसने स्वयं देखा था। यह मुगल-राजपूत संबंधों के अध्ययन के लिए अमूल्य है।

'मेहता नेणसी की ख्यात राजस्थान का सामान्य इतिहास है। लेखक कई वर्षों तक जोधपुर के महाराजा जसवन्त सिंह के प्रधानमंत्री रहे। नेणसी की ख्यात राजस्थान के इतिहास पर ज्ञात सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में से एक है। पुस्तक दो खंडों में है, एक में जोधपुर का इतिहास है, दूसरे में राजस्थान के बाकी राज्यों का इतिहास है। पुस्तक 1664 ई. में महाराजा जसवन्त सिंह द्वारा ज़ारी जागीरों के विवरण के साथ शुरू होती है। प्रारंभिक काल के लिए कोई तारीखें नहीं दी गई हैं। वह महाराजा जसवन्त सिंह के प्रधानमन्त्री थे और स्वाभाविक रूप से उस शासनकाल तथा महाराजा जसवन्त सिंह के पिता के शासनकाल के बारे में उनका ज्ञान लगभग समकालीन था।
जहां तक काम की गुणवत्ता का सवाल है, यह तथ्य कि यह एक ऐसे प्रधान मंत्री का काम था जिसके नियंत्रण में राज्य के सभी संसाधन थे। मेहता नेणसी वास्तव में जोधपुर के अबुल फज़ल हैं। गाँवों के बारे में उनका वर्णन आइन-ए-अकबरी से तुलना करने का सुझाव देता है।

'कविराज की ख्यात संक्षेप में कन्नौज से आगमन की कहानी कहती है और फिर मारवाड़ में राठौड़ों का इतिहास शुरू होता है। यह महाराजा जसवन्त सिंह के समय से लिखा गया है।

'मुंध्यार ख्यात 'एक अन्य महत्वपूर्ण ख्यात है, मुंध्यार नागोर के दक्षिण में 16 किलोमीटर दूर एक गांव है और इसे चारणों के परिवार के सासीन (दान की जागीर) के रूप में रखा जाता है। इसमें राजस्व के अनुमान के साथ-साथ विभिन्न राजाओं के समय के चारणों और ब्राह्मणों का विवरण दिया गया है, मुगल सम्राट के साथ विवाह संबंध भी विधिवत दर्ज किए गए हैं। महाराणा राजसिंह के समय लिखी गई राजप्रशस्ति भी एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। उदयपुर री ख्यात 1753 में पूरी की गई थी और राणा राजसिंह द्वितीय के काल तक का चित्तौड़ का इतिहास इसमें शामिल हैं।

1.2.6 यूरोपीय यात्रा-वृत्तांत

यूरोपीय यात्रियों का आगमन मुग़लकाल में काफ़ी तीव्र हो चुका था। इसका कारण व्यापार के लिए यूरोपीय कम्पनियों का भारत में आना था, जिसके कारण न केवल व्यापारियों का भारत आना हुआ बल्कि जेसुइट पादरी, राजदूत और काम की तलाश में निकले दुस्साहसी भी थे।

फ़्रंक्वा बर्नियर एक उच्च शिक्षित व्यक्ति था और उनमें अवलोकन की तीव्र भावना थी। वह एक फ्रांसीसी चिकित्सक था, जिनका पसंदीदा शौक राजनीति और दर्शन था। औरंगज़ेब के शासनकाल के शुरुआती दौर में उसने सम्राट के दरबार में बारह साल बिताए। उसने गम्भीर ग्रंथ 'हिस्टॉयर डे ला डेर्निएरे रिवोल्यूशन डेस एट्स डू ग्रैंड, मोगुल, जो 1670 में प्रकाशित हुआ था और विभिन्न पत्र जो उन्होंने भारत से फ्रांस में अपने दोस्तों को लिखे थे, वे भी उपलब्ध हैं। उन सभी यूरोपीय यात्रियों में से, जिन्होंने पूर्व के बारे में अपनी धारणाएँ दर्ज की हैं, बर्नियर का विवरण सबसे लोकप्रिय है। भारत में कई वर्षों तक रहने के बाद बर्नियर ने लाहौर, कश्मीर, राजमहल, कासिमबाजार, मसूलीपट्टम और गोलकुंडा का दौरा किया। फ़ारस से यात्रा करते हुए वह 1669 में मार्सिले पहुँचा।

मुगलों की सैन्य व्यवस्था के दोषों पर बर्नियर की टिप्पणियाँ सटीक हैं। दिल्ली, आगरा और कश्मीर का उनका वर्णन दिलचस्प है और भारत में तानाशाह बादशाह की छवि निर्माण के पीछे उसका वृत्तांत उल्लेखनीय रूप से ज़िम्मेदार रहा है।

कैरेरी

इटालियन डॉ. जॉन एफ. जेमेली कैरीरी ने औरंग़ज़ेब के दक्कन अभियानों के बीच में वहाँ का दौरा किया। प्रशासन के मुग़ल सिद्धांत और भूमि व्यवस्था पर कैरीरी की कुछ बहुत दिलचस्प टिप्पणियाँ हैं; औरंगजेब के राजस्व और धन का, और उसके साम्राज्य की सीमा का एक उपयोगी विश्लेषण भी इसने पेश किया है।

फ्रायर

डॉ. जॉन फ्रायर का विवरण हमें शिवाजी और सामान्य तौर पर मराठा शक्ति के संबंध में काफी मात्रा में जानकारी देती है। डॉ. जॉन फ्रायर 1681 में समाप्त होने वाले नौ वर्षों भ्रमण के दौरान फ़ारस और भारत में थे, ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में उसकी यात्राएँ, कोरोमंडल और मालाबार तटों के स्थानों की समुद्री यात्राओं और कैम्बे और गोवा के बीच विभिन्न स्थानों पर थोड़ी अंतर्देशीय यात्राओं तक सीमित रहीं। उसने स्पष्ट रूप से मुग़ल राज्य के पतन के रूप में औरंग़ज़ेब की धर्मांधता को पहचाना है। वह लिखता है कि अकबर ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच सहभागिता को बढ़ावा दिया था ताकि राज्य सही ढंग से चल सके, और औरंग़ज़ेब ने इस व्यवस्था को पलट दिया। फ्रायर कहता है, "यह धार्मिक कट्टरपंथी सम्राट, औरंगज़ेब, सभी को अपने धर्म में लाने की एक परियोजना पर काम कर रहा है, और पहले से ही हिंदुओं पर कर लगा दिया है, जिसके कारण कुछ राजाओं ने विद्रोह कर दिया है।

1674 में, जब डॉ. जॉन फ्रायर बंबई में थे, ऑक्सेंडेन और अन्य लोगों को उस शहर से शिवाजी के पास दूतमंडल के रूप में भेजा गया था, फ्रायर इसके साथ नहीं थे, हालांकि उन्होंने इसकी कार्यवाही का बहुत अच्छा विवरण दिया है। उनके पास बंबई और सूरत के दो शहरों का उत्कृष्ट विवरण है; लेकिन अब तक उनके वृत्तांत का सबसे मूल्यवान हिस्सा बीजापुर साम्राज्य की राजनीतिक स्थिति का विश्लेषण है।

फादर एन्थोनी मोंसेरात

फादर मोंसेरात फादर एक्वाविवा (Father Acquaviva) के साथ 1578 में अकबर के दरबार में आया था। उसने अपना यात्रा-विवरण प्रस्तुत किया है। उसने अकबर के चरित्र और व्यक्तित्व का विशद वर्णन किया है, जिसमें अकबर की शक्ल-सूरत, उसकी पोशाक, उसकी धार्मिक मान्यताओं आदि का विवरण मिलता है। उसने अकबर के भोज-प्रबंध, निराश्रितों की शिक्षा के लिए की गई उदार व्यवस्थाओं, शाहजादों और शाहजादियों की शिक्षा आदि के बारे में विस्तार से लिखा है। फादर मोंसेरात को शाहजादा मुराद का शिक्षक नियुक्त किया गया था। उसके अनुसार शाहजादों और शाहजादियों की शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया जाता था।

फादर मोंसेरात ने जिन शहरों को देखा और जिन मार्गों से होकर यात्रा की, उनके बारे में विस्तार से लिखा है तथा उसका यह विवरण बहुत महत्वपूर्ण है। उसने सूरत, मांडू, सिरोंज, नरवर, ग्वालियर, दिल्ली, सोनीपत, सरहिंद, लाहौर आदि शहरों का वर्णन किया है। वह लिखता है कि भारत के नगर दूर से देखने पर तो बड़े सुहावने लगते हैं, किंतु अंदर से देखो तो संकरे और बेतरतीब नजर आते हैं। घरों में खिड़कियाँ दिखाई नहीं देतीं। उसका लाहौर शहर विषयक वृत्तांत अत्यंत सजीव व महत्वपूर्ण है।

राल्फ़ फ़िच

फ़िच भारत में 1588-91 के बीच रहा। वह पहला अंग्रेज यात्री है जिसने भारत लोगों के बारे में, उनकी वेशभूषा और रीति-रिवाजों के बारे में लिखा है। उसने दूर-दूर की यात्राएँ की। वह हुगली, चिटगाँव, पेगू और श्याम तक पहुँचा। उसके कथनानुसार गुजरात का मुख्य शहर खंभात था। उसकी बसावट व्यवस्थित थी तथा वह एक बड़ा और पते आबादी वाला शहर था। इस शहर में पक्षियों, कुत्तों और बिल्लियों के लिए भी अनेक अस्पताल थे। बुरहानपुर में बड़ी मात्रा में सूती कपड़ा बनता था। वहाँ कपड़े की छपाई का काम पी होता था।

फिच के अनुसार आगरा एक बड़ा शहर था। इसमें पत्थर के मकान थे और इसकी गलियाँ काफी चौड़ी थीं। फतेहपुर सीकरी आगरा से बड़ा था। ये दोनों शहर आकार में तब के लंदन से बड़े और अधिक आबादी वाले शहर थे। बनारस एक बड़ा शहर था। इसके मकान साफ-सुथरे थे, जो नदी के किनारे-किनारे बसे हुए थे, बनारस में बहुत से मंदिर थे। बनारस सूती कपड़े के निर्माण का भी बहुत बड़ा केंद्र था।पटना में रुई, बंगला चीनी और अफीम का बाजार था। पटना के पास सोने की खानें थीं। फ़िच ने गोलकुंडा के लोगों की वेशभूषा के बारे में और गंगा की घाटी के निवासियों के बारे में महत्वपूर्ण बातें कही हैं।

बाल-विवाह की प्रथा एक बहुप्रचलित प्रथा थी। फिच ने स्वयं एक ऐसा ही बाल-विवाह बुरहानपुर में देखा था। बनारस में हुए एक विवाहोत्सव का फिच ने विस्तार से वर्णन किया है। उसने लोगों की धार्मिक मान्यताओं और अंधविश्वासों का भी विस्तृत विवरण दिया है।

विलियम हाकिंस

हॉकिंस एक व्यापारी था और ईस्ट इंडिया कंपनी का कर्मचारी था। वह भारत में 1608 से 1613 तक ठहरा। वह फारसी भाषा का एक बहुत अच्छा ज्ञाता था और वह जहाँगीर द्वारा दी हुई शराब की पार्टियों में आमंत्रित किया जाता था। हाकिंस के विवरण' का महत्व इसलिए है कि उसने प्रत्यक्षदर्शी के रूप में सब कुछ लिखा है। विशेष रूप से जहाँगीर के व्यक्तित्व तथा दिनचर्या के विषय में उसका विवरण अत्यंत विश्वसनीय है। पादशाह को जवाहरातों का शौक था। किस दिन कौन-कौन से और कितनी मात्रा में हीरे-जवाहरात पहनने हैं-इस हिसाब से वे विभाजित थे। यहाँ तक कि उसकी तसबीह (माला) भी कीमती मोती, माणिक्य, हीरे, पन्ने और मूंगे की बनी होती थी। दैनिक प्रार्थना (नमाज) के बाद जहाँगीर बाहर आकर झरोखा-दर्शन देता था। तीन बजे के करीब वह दरबारे आम लगाता था। वह सारे मामलों की सुनवाई के लिए वहाँ दो घंटे ठहरता था, फिर वह दरबारे खास में चला जाता था, जहाँ केवल वही लोग आ सकते थे जो पादशाह के खास थे।

हाकिंस ने पादशाह की संपत्ति का विवरण दिया है, उसमें उसने सारी वस्तुएँ गिनाई हैं, जैसे हीरे-जवाहरात, अस्त्र-शस्त्र, हीरे-जवाहरात से मंडित हौदे काठियाँ, कीमती बरतन जिनमें कीमती सुराहियाँ, कटोरे, शराब पीने के प्याले, सीनी आदि शामिल थे। उसने शाही पशुओं के बारे में भी लिखा है, जिनमें हाथियों और फारसी, तुर्की तथा कश्मीरी घोड़ों का वर्णन है।

विलियम फ़िंच

विलियम फिंच हॉकिंस के साथ ही अगस्त 1608 में सूरत पहुँचा। पर्कस ने उसके ग्रंथ "लार्ज जनरल" को संपूर्ण रूप में प्रकाशित किया है। फ़िंच ने सार रूप में, किंतु अधिक प्रामाणिक तरीके से मनुष्यों, जानवरों, पौधों, शहरों, किलों, इलाकों, धार्मिक विश्वासों आदि का वर्णन किया है। ऐसा वर्णन किसी अन्य यात्री का नहीं मिलता। फिंच ने हिंदुस्तान के तीन प्रमुख व्यापारिक मार्गों का विस्तार से उल्लेख किया है. सूरत-आगरा मार्ग (जो बुरहानपुर होकर था), आगरा-अहमदाबाद मार्ग और लाहौर-काबुल मार्ग। इन भागों पर पड़ने वाले सभी महत्वपूर्ण स्थानों के नामों का उसने उल्लेख किया है।

फिंच ने सूरत, बुरहानपुर, मांडूगढ़, उज्जैन, सारंगपुर, सिरोज, नरवर और ग्वालियर के बारे में विवरण प्रस्तुत किया है। फतेहपुर सीकरी के बारे में उसने लिखा है कि "वहाँ ऐसे अनेक भवन हैं, जिनमें कोई नहीं रहता, परती भूमि को बाग-बगीचों में बदल दिया गया है, बुआई की बहुत-सी भूमि पर नील तथा अन्य खाद्यान्नों की पैदावार की जाती है। वहाँ खड़ा व्यक्ति यह महसूस नहीं कर पाएगा कि वह शहर के बीच में खड़ा है।" बुलंद दरवाजे को उसने सारी

दुनिया में (शायद) सबसे ऊँचा और भव्य माना है।फिंच ने आगरा के किले के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। उस समय पादशाह आगरा के किले में ही रहता था।

फिंच ने लाहौर को पूर्व का सबसे बड़ा शहर माना है। यहाँ के अधिकांश निवासी बनिया और दस्तकार थे। लाहौर के महल का उसने विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। सबसे महत्वपूर्ण वर्णन महल के भित्ति चित्रों का है, विशेषकर जहाँगीर की आरामगाह में बने भित्ति चित्रों का। इन चित्रों में पादशाह जहाँगीर, उसके शाहजादों औरअन्य अमीरों के चित्र शामिल थे।

थामस कोर्यत

थामस कोर्यत ने अपनी भारत-यात्रा का विशद वर्णन किया है। उसने स्थल मार्ग से यात्रा की थी और सर थामस रो के साथ उसे पादशाह जहाँगीर से मिलने का अवसर मिला था। उसने जहाँगीर के दैनिक कार्य-कलाप और मनोरंजन के साधनों के बारे में लिखा है। उसने झरोखा-दर्शन और तुलादान का भी वर्णन किया है। तुलादान का उत्सव बड़ी शानो-शौकत से मनाया जाता था। इस अवसर पर पादशाह सोने के तराजू पर बैठता था। उसने मीना-बाजार के बारे में भी लिखा है। मीना बाजार एक प्रकार का मेला था, जिसमें केवल स्त्रियाँ ही सम्मिलित होती थीं।

सर थामस रो

सर थामस रो मुगल दरबार में सन् 1616 में आया। उसे पादशाह के साथ मांडू, अहमदाबाद, अजमेर जैसे अनेक स्थानों पर जाने का अवसर मिला। वह पादशाह के साथ शिकार खेलने भी गया। वह आगरा में एक वर्ष तक रुका। सन् 1619 में वह पादशाह का यह संदेश लेकर लौटा कि अंग्रेजों का मुग़ल दरबार में हमेशा स्वागत किया जाएगा। इसके वृत्तांत को हकलुयात सोसायटी ने प्रकाशित किया था।

सर थामस रो ने लिखा है कि एक बार जहाँगीर जयपुर के निकट स्थित टोडा नामक स्थान पर एक साधु से मिला। जहाँगीर ने उस साधु से इतनी आत्मीयता, दयालुता और विनम्रता से बातचीत की जो सामान्यतः किसी राजा में आसानी से नहीं दिखाई पड़ते.... उसने उसे बाँहों में भर लिया जबकि कोई सफाई पसंद व्यक्ति उसे छूना भी गवारा नहीं करेगा, तीन बार अपना हाथ अपनी छाती पर रखा और उसे पिता कह कर पुकारा।

शाही पादशाह की ओर से शिकार का जानवर भेजा जाना उसके अनुग्रह का प्रतीक समझा जाता था। सर थामस रो पर भी पादशाह ने ऐसी अनुकंपा एकाधिक बार की थी। उसने 714 झरोखा-दर्शन का बड़ा दिलचस्प वर्णन किया है। उसके वर्णन से पता चलता है कि स्त्रियाँ भी दर्शन के समय पादशाह के साथ जातीं थीं। वे "जालीदार झरोखे" के पीछे बैठती थीं। रो दो बार पादशाह के साथ आगरा और मांडू में मनाए गए जन्मोत्सवों में सम्मिलीत हुआ था जिसमें सोने के बाले होते। हीरे-जवाहरात से जड़े झूल पड़े तथा गोटे-किनारी के झंडे-झंडियाँ लहराते सजे-सजाए बारह हाथियों की सवारी पादशाह के सामने से गुजरी। हाथियों ने "बड़ी खूबसूरती से झुक कर" पादशाह को सलामी दी।

तुला-दान की रस्म भी हुई। पादशाह को सोने-चाँदी, हीरे-जवाहरात, रेशमी और जरी के कपड़ों तथा मसालों आदि से तौला गया।

किसी फौजी मुहिम पर जाने से पहले पादशाह की शस्त्र-सज्जा की रस्म के बारे में और पादशाह के छावनी में आगमन के बारे मे रो ने विस्तार से लिखा है। छावनी क्षेत्र का वर्णन करते हुए वह लिखता है कि वहाँ सभी प्रकार की दुकानें होती थीं। दुकानों को इस तरह सजाया जाता था कि वे "अलग से पहचानी जा सकती थीं" कि किसे कहाँ और क्या ख़रीदारी करनी है।

एडवर्ड टैरी

टैरी, सर टॉमस रो का पादरी था। वह रो के साथ 1617 में मांडू और फिर वहाँ से अहमदाबाद चला गया। उसने विशेषकर मालवा और गुजरात के बारे में ही लिखा है। यह बात अलग है कि उसके विवरणों में कहीं-कहीं अन्य शहरों का भी उल्लेख आया है। उदाहरण के लिए उसने मुल्तान का जिक्र किया है, वहाँ अच्छे तीर-कमान बनते थे। सींगों से बने कमानों को अच्छी तरह से "जोड़ा जाता था"। तीर सरकंडों और बेंत से बनाए जाते थे। दोनों पर अच्छी प्रकार से रंग-रोगन चढ़ाया जाता था। इतने खूबसूरत तीर कमान भारत में और कहीं नहीं बनते थे।

टैरी ने तत्कालीन सिक्कों का आकार-प्रकार तथा मूल्य आदि का भी विवरण दिया है। जो सोना-चाँदी बाहर से आता था, उसे गला कर और साफ करके उस पर शाही मोहर लगा दी जाती थी। "यहाँ के सिक्के दुनिया के किसी भी देश के सिक्कों से अधिक शुद्ध होते हैं।" सिक्का रुपया कहलाता था। सिक्के अलग-अलग प्रकार के होते थे, जिनका मूल्य भी अलग-अलग होता था। एक सिक्के का मूल्य दो शिलिंग तीन पेन्स के बराबर था, सबसे अच्छा सिक्का दो शिलिंग नौ पेन्स के बराबर था। चाँदी के सिक्के या तो गोल होते थे या चौकोर। वे ठोस, मोटे, न टूटने वाले और न घिसने वाले होते थे। सोने के "बहुमूल्य" सिक्के भी प्रचलित थे, किंतु सामान्यतः वे लोगों के रोजमर्रा के काम के लिए दिखाई नहीं देते थे। "महमूदी" नाम से जाना जाने वाला सिक्का गुजरात में चलता था, जिसका मूल्य केवल दो पेन्स के लगभग था।

टैरी ने मुग़ल छावनी का वर्णन किया है। उसका कहना है कि "लश्कर" के तंबुओं का रंग प्रायः "सफेद होता था, जो लोगों के पहनावे के रंग से मिलता-जुलता था।" शाही तंबू लाल रंग का होता था। पादशाह एक दिन में दस मील से ज्यादा नहीं चलता था। टैरी ने सैनिकों के अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन किया है। उसके अनुसार मुगल अच्छे घुड़सवार थे और अपने साजो-सामान की अच्छी देखभाल रखते थे।

फ्रांसिस्को पेलसार्ट

यह एक डच फैक्टर (गुमाश्ता) था, जो जहाँगीर के काल में आगरा में रहा था। उसने भारत उपमहाद्वीप के अनेक स्थलों की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का बहुत ही रोचक वर्णन किया है। उसका वर्णन एक प्रकार की रिपोर्ट है, जो उसके अनुभवों और उसके द्वारा की गई जाँच-पड़ताल पर आधारित है। उसने इसे डच कंपनी के

निदेशकों को भेजा था ताकि उससे दक्षिण एशिया और यूरोप में डचों को व्यापार में लाभ पहुँचाने की संभावना जानने में मदद मिल सके।

पेलसार्ट ने भारत में मसुलीपत्तनम से प्रवेश किया और पूरे उपमहाद्वीप के उत्तरी और पश्चिमी भागों में उत्पादन और व्यापार से संबंधित अधिकांश महत्वपूर्ण स्थानों का भ्रमण किया। गुजरात के बारे में लिखते हुए उसने उत्पादन के अनेक केंद्रों, वहाँ उत्पादित कपड़े की अनेक किस्मों, पटना और बंगाल जैसे दूरस्थ स्थानों से अथवा गुजरात के दक्षिण-पश्चिम में स्थित मालाबार से कच्चे माल के आयात के बारे में लिखा है।

पेलसार्ट ने आगरा का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। उसने शहर की बनावट, अमीरों और गरीबों के घरों, उनकी खान-पान की आदतों, अलग-अलग वस्तुओं के बाजारों तथा वहाँ पर उपलब्ध विविध प्रकार की वस्तुओं के बारे में लिखा है। उसने उन सभी मार्गों का जिक्र किया है जो आगरा को उत्पादन के महत्वपूर्ण केंद्रों से जोड़ते थे। वहाँ की विख्यात वस्तुओं का भी उसने उल्लेख किया है। उसके विवरणों में जिन केंद्रों का उल्लेख मिलता , वे है: जौनपुर, बनारस, अवध, लखावर, पटना, सूरत आदि-आदि।

आगरा के गरम मसाला-व्यापार के बारे में पेलसार्ट ने जो कुछ लिखा है, उससे ज्ञात होता है कि उसकी दृष्टि कितनी पैनी और समझ कितनी चतुराई भरी थी। भारतीय व्यापारी मसाले के व्यापार में डचों से होड़ करते समय क्या-क्या तरीके अपनाते थे-इसका वर्णन किया है। आगरा के बाजार में किन-किन मसालों की आवश्यकता पड़ती थी, यह उसने बताया है। तब उसने डच कंपनी के निदेशकों को यह सलाह दी थी कि वे भारत में अपने मसाले के व्यापार को किस तरह व्यवस्थित करें ताकि उन्हें अधिकतम लाभ हो सके और इस लाभ को भारतीय वस्त्रों और नील के व्यापार में लगा सकें।

पेलसार्ट ने नील के उत्पादन, और विशेषकर बयाना में नील के उत्पादन के बारे में जो कुछ लिखा है, उसका कोई सानी नहीं है। नील के उत्पादन के बारे में बयाना में जो तरीके अपनाए जाते थे, उनके बारे में उपलब्ध जानकारी का उपयोग भारत में मध्यकालीन और ब्रिटिशकालीन तकनीक से तुलना के लिए किया जा सकता है।

जीन बैप्टिस्ट तेवर्नियर

जीन बैप्टिस्ट तेवर्नियर सत्रहवीं शताब्दी का सर्वाधिक ख्याति प्राप्त फ्रांसीसी यात्री था। वह पेशे से जौहरी था तथा शाहजहाँ के काल में भारत आया था। वह एक अनुभवी और साहसिक यात्री था तथा यात्रा के खतरों से नहीं घबराता था। उसने अपनी यात्राएँ पंद्रह वर्ष की अल्पायु में ही प्रारंभ कर दी थीं। पूर्व की उसने सात यात्राएँ की थीं, जिनमें से छह बार वह हिंदुस्तान आया था। ये यात्राएँ 1641-42; 1645-47; 1651-54; 1657-61; 1665-67; तथा 1686-87 के दौरान हुईं। अपनी प्रथम दो यात्राओं के काल में ही तेवर्नियर ने लगभग सारा हिंदुस्तान छान मारा था।

प्रथम यात्रा काल में उसने सूरत, बुरहानपुर, आगरा, ढाका, गोआ तथा गोलकुंडा की यात्रा की थी। गोलकुंडा में उसने हीरे की खानों के बारे में पूछताछ की तथा संभवतः खानों को देखा भी था।

अपनी दूसरी यात्रा के दौरान वह दौलताबाद-नान्देर मार्ग से गोलकुंडा पहुँचा तथा वहीं की हीरे की खानों के अतिरिक्त दखलकोंडा (आधुनिक रमालाकोटा) तथा गनी या कोलूर की खानों की भी उसने यात्रा को थी। अपनी तीसरी यात्रा के दौरान उसने पूर्वी तट पर मसुलीपत्तनम, मदास, गंडीकोट आदि स्थानों का भ्रमण किया तथा वहाँ से अपने जवाहरात बेचने के उद्देश्य से गोलकुंडा की ओर प्रस्थान किया।1657 में उसने पुनः हिंदुस्तान की यात्रा की और इस यात्रा का उद्देश्य शाइस्ता खाँ द्वारा आर्डर किए गए माल की आपूर्ति करना था। उसके पास अनेक दुर्लभ वस्तुएँ थीं जिन्हें उसने शाइस्ता खाँ को बेच दिया। शाइस्ता खाँ इस समय दकन का घेरा डाले हुआ था। अपना कार्य संपन्न करने के पश्चात तेवर्नियर ने पुनः गोलकुंडा की ओर रुख किया तथा वहाँ से 1660 में या 1661 के प्रारंभ में पुनः सूरत पहुँचा।

तेवर्नियर की हिंदुस्तान की अंतिम यात्रा 1686 में 80 वर्ष की परिपक्व आयु में संपन्न हुई। उसके साथ व्यापार के लिए बहुत-सा कीमती सामान था। बुरहानपुर, सीरोन्ज, ग्वालियर, आगरा होता हुआ वह जहानाबाद पहुँचा तथा वहाँ औरंगजेब को पेशकश दी तथा उसके महत्वपूर्ण अमीरों से भेंट की। उसने पादशाह को अपने सबसे कीमती जवाहरात बेचने में सफलता प्राप्त की। दो मास तक जहानाबाद में रहने के पश्चात वह पुनः आगरा के लिए बढ़ा तथा वहाँ से सूरत पहुँचा। यह उसकी अंतिम यात्रा थी। उसका विवरण न केवल भारत के व्यापारिक इतिहास के लिए महत्वपूर्ण है बल्कि मुग़ल प्रशासन को समझने के लिए भी महत्वपूर्ण है।

1.3 पुरातात्विक स्रोत

मुग़ल काल के पुरातात्विक स्रोतों के रूप में हम उस काल की नगर योजना, भवन निर्माण और बाग़ीचे के प्रारूप और सिक्कों को रख सकते हैं।

1.3.1 वास्तुकला

मुग़ल काल की विभिन्न इमारतें आज हमारी विरासत के रूप में हमारे सामने हैं। मुग़ल वंश के संस्थापक बाबर की सौंदर्य अभिरुचि बहुत अच्छी थी, हालाँकि उसे कई इमारतें बनाने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिला। हालाँकि, उसने दो मस्जिदें बनाईं, एक रुहेलखंड के संभल में और दूसरी पानीपत के काबुलीबाग में। अपने शासनकाल के प्रारंभिक वर्षों में, हुमायूँ ने दिल्ली में दीनपनाह नामक एक शहर का निर्माण किया। मुगल वास्तुकला का वास्तविक चरण अकबर के साथ शुरू हुआ और उसने भारतीय वास्तुकला के साथ-साथ फ़ारसी परंपराओं को भी जोड़ा। दिल्ली में हुमायूँ का मकबरा उनकी विधवा हाजी बेगम द्वारा बनाया गया था, जिसमें संगमरमर से बनी पहली थोड़ी बल्बनुमा दोहरी गुंबददार संरचना है। एक बगीचे में स्थित यह ताज का प्रोटोटाइप है।

अकबर ने आगरा का किला लाल बलुआ पत्थर से बनवाया था। उनके अन्य किले लाहौर, अजमेर और इलाहाबाद में हैं। अकबर के शासनकाल के दौरान सीकरी में एक महल-सह-किला परिसर बनाया गया था, जिसे बाद

में गुजरात पर जीत के बाद फ़तेहपुर नाम दिया गया। फ़तेहपुर-सीकरी में जामी मस्जिद को फर्ग्यूसन ने पत्थर में रोमांस के रूप में वर्णित किया है। इसके प्रांगण में शेख सलीम चिश्ती की कब्र है। मस्जिद का विशाल प्रवेश द्वार बुलंद दरवाजा है जिसे अकबर ने 1573 में गुजरात में अपनी जीत की याद में शुरू कराया था।इसकी ऊंचाई 176 फीट है। फ़तेहपुर-सीकरी की अन्य महत्वपूर्ण इमारतें हैं जोधा बाई का महल (हिंदू शैली का प्रभाव) अनुप तलाव, बीरबल का महल, मरियम का महल, दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास और पंच महल (पांच में पिरामिड संरचना) कहानियाँ, बौद्ध विहार के प्रभाव को दर्शाती हैं) उनके काल की दो अन्य उल्लेखनीय इमारतें हैं - इलाहाबाद में चालीस स्तंभों का महल और सिकंदरा में अकबर का मकबरा (अकबर द्वारा स्वयं शुरू किया गया) जो बौद्ध विहारों के प्रभाव को दर्शाता है।

जहाँगीर के शासनकाल के दौरान, उसकी पत्नी नूरजहाँ ने आगरा में (उसके पिता) इतमाद-उद-दौला का मकबरा बनवाया। नई तकनीक पिएट्रा ड्यूरा (अर्ध-कीमती पत्थरों से बने पुष्प डिजाइनों से दीवारों की सजावट) को यहां इस्तेमाल किया गया था। यह मकबरा पूरी तरह से संगमरमर से बना था। जहाँगीर ने लाहौर में मोती मस्जिद और लाहौर के निकट शहादरा में अपना मकबरा बनवाया।

शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान, मुगल वास्तुकला अपने सर्वोच्च उत्कर्ष पर पहुँच गई। शाहजहाँ ने अपनी पत्नी मुमताज महल की याद में प्रसिद्ध ताज महल बनवाया। इसके मुख्य वास्तुकार उस्ताद अहमद लाहौरी थे जिन्हें नादिर-उल-असर की उपाधि से सम्मानित किया गया था।

शाहजहाँ के शासनकाल में मस्जिद निर्माण भी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। उल्लेखनीय हैं आगरा किले में मोती मस्जिद, जो पूरी तरह से संगमरमर से बनी थी और दिल्ली में लाल बलुआ पत्थर से बनी जामा मस्जिद (1644)। 1638 में, शाहजहाँ ने दिल्ली में शाहजहाँनाबाद की एक नई राजधानी का निर्माण शुरू किया, जो 1648 में पूरा हुआ। दीवान-ए-खास और रंग महल लाल किले के अंदर दो सबसे विशिष्ट इमारतें हैं। औरंगजेब ने दिल्ली के लाल किले में मोती मस्जिद और लाहौर में बादशाही मस्जिद बनवाई।

1679 में औरंगाबाद में बनी औरंगजेब की रानी रबिया-उद-दुरानी की कब्र ताजमहल की एक स्पष्ट नकल है। ताज की तुलना में, यह मकबरा एक बहुत ही औसत दर्जे का निर्माण है। अठारहवीं सदी में साम्राज्य के विखंडन के साथ जहां स्थानीय शैलियों ने आकार लिया वहीं इमारतों ने अपनी भव्यता अब खो दी थी। मुग़लकालीन वास्तुकला न केवल निर्माण शैली का इतिहास है, बल्कि यह मुग़लों धार्मिक और लौकिक विश्वासों का भी प्रतिनिधित्व करती है। एक और दिलचस्प विकासक्रम था राजस्थान में राजपूताना शैली के किलों के निर्माण कार्य का प्रसार, जो मुग़लों के साथ राजपूतों की निकटता और सहयोग का भी संकेत करता है।

1.3.2 सिक्के

मुगलों का सबसे महत्वपूर्ण मौद्रिक योगदान पूरे साम्राज्य में सिक्का प्रणाली की एकरूपता और समेकन लाना था। मुगल साम्राज्य प्रभावी रूप से समाप्त होने के बाद भी यह व्यवस्था लंबे समय तक चली। त्रि-धात्विक प्रणाली जो मुग़ल सिक्के की विशेषता के रूप में सामने आई, वह काफी हद तक मुगलों की नहीं बल्कि शेर शाह सूरी (1540 से 1545 ईस्वी) की देन थी, जिसने दिल्ली में थोड़े समय के लिए शासन किया था। शेरशाह ने चाँदी का एक सिक्का जारी किया जिसे रूपया कहा जाता था। इसका वजन 178 ग्रेन था और यह आधुनिक रुपये का अग्रदूत था। 20वीं सदी की शुरुआत तक यह काफी हद तक अपरिवर्तित रहा। चाँदी के रुपए के साथ सोने के सिक्के, जिन्हें मोहर कहा जाता था, 169 ग्रेन वजन के और तांबे के सिक्के, जिन्हें दाम कहा जाता था, जारी किए गए।

जहां तक सिक्के के डिजाइन और ढलाई तकनीक का सवाल है, मुगल सिक्का निर्माण में मौलिकता और नवोन्मेषी कौशल झलकता है। मुगल सिक्के के डिजाइन महान मुगल अकबर के शासनकाल के दौरान परिपक्व हुए। पुष्प-पल्लव की किनारी के साथ पृष्ठभूमि के अलंकरण जैसे नवाचार पेश किए गए। जहाँगीर ने अपने सिक्कों में व्यक्तिगत रुचि ली। आज उपलब्ध सिक्के दुनिया में जारी किए गए सबसे बड़े सिक्कों के संग्रह में से हैं।

ये सिक्के उस युग की आर्थिक स्थिति को दर्शाते हैं, साथ ही सिक्के जटिल डिजाइन और सुलेख के साथ मुगल साम्राज्य की कलात्मक उपलब्धियों को प्रदर्शित करते हैं। इनसे युग के राजनीतिक बदलावों की जानकारी प्रदान करते हैं। सिक्के मुगल साम्राज्य के शासन के बारे में जानकारी प्रदान करने के साथ ही मुगल साम्राज्य के जटिल सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने की जानकारी प्रदान करते हैं।

1.4 चित्रकला और मुरक़्क़ा

भारत में लघु चित्र 9वीं शताब्दी में ही अस्तित्व में थे, लेकिन 1526 में मुगल साम्राज्य की स्थापना तक वे देश में व्यापक रूप से प्रसिद्ध कला नहीं बन पाए। मुगल चित्रकला के विकास का श्रेय अकबर और जहाँगीर को जाता है। अकबर के पास 24000 पांडुलिपियों का एक पुस्तकालय था, जिनमें से कई को चित्रों के माध्यम से चित्रित किया गया था। मुगल चित्रकला हिंदू, बौद्ध और जैन प्रभावों के साथ लघु चित्रकला के फ़ारसी स्कूल से विकसित हुई।
ये चित्र अक्सर युद्धों, पौराणिक कहानियों, शिकार के दृश्यों, वन्य जीवन, शाही जीवन, पौराणिक कथाओं आदि जैसे विषयों के इर्द-गिर्द घूमते थे.। ये चित्र मुगल सम्राटों की लंबी कहानियों को बताने का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी बन गईं।

पहला प्रमुख कार्य हमज़ानामा, या 'हमज़ा की किताब' के एकाधिक सचित्र संस्करणों का निर्माण था। इसके बाद बाबरनामा की कई प्रतियाँ लघुचित्रों के साथ तैयार की गई. अकबर चाहता था कि प्रमुख संस्कृत ग्रंथों का फ़ारसी में अनुवाद किया जाए ताकि उन्हें गैर-हिंदुओं द्वारा व्यापक रूप से पढ़ा जा सके। ऐसा करने में, आशा व्यक्त की गई कि "जो लोग शत्रुता प्रदर्शित करते हैं वे ऐसा करने से बच सकते हैं और सत्य की खोज कर सकते हैं"। इसलिए अनुवाद ब्यूरो को रामायण (रज़्मनामा, या युद्ध की पुस्तक) और हरिवंश, जिसे महाभारत का परिशिष्ट माना जाता है, जैसे

मौलिक ग्रंथों के फ़ारसी संस्करण तैयार करने का काम दिया गया था, जिसमें कृष्ण के जीवन का विवरण दिया गया था। अकबरनामा भी प्रमुख ग्रंथ था जिसे चित्रों से सजाया गया था।

मुरक्का एक फ़ारसी शब्द है जो चित्रों और सुलेख के एक एल्बम को संदर्भित करता है, और भारतीय उपमहाद्वीप में एक परंपरा है, यह एल्बमों की कोलाज जैसी गुणवत्ता को दर्शाता है, जो कागज की कई शीटों को काटकर सजावटी सीमाओं के भीतर व्यवस्थित किया गया है। मुग़ल बादशाह जहाँगीर और शाहजहाँ ने अपने शाही भवनों में विस्तृत सचित्र एल्बम बनवाए। इन एल्बमों का उद्देश्य संभवतः बौद्धिक समारोहों और आनंद पार्टियों में दिखाया और चर्चा किया जाना था। कुछ प्रमुख मुरक़्क़े इस प्रकार हैं:

अकबर के शासनकाल में निर्मित सलीम एल्बम में ईसाई छवियां और हिंदू दरबारियों के चित्र दोनों शामिल हैं।शाहजहाँ के शासनकाल की मिंटो एल्बम में शाही दरबारियों, उद्यानों और वन्य जीवन की छवियों को दर्शाने वाले लघु चित्र शामिल हैं, जो विस्तृत पुष्प किनारी से घिरे हुए हैं।शाहजहाँ एल्बम, अब बिखर गई है, क्योंकि इसे बेल्जियम के डीलर जॉर्ज जोसेफ डेमो ने विभाजित कर दिया था। कई फ़ोलीओ अब न्यूयॉर्क के मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट में हैं। केवोर्कियन एल्बम, अब ज्यादातर न्यूयॉर्क (मेट्रोपॉलिटन) और वाशिंगटन (फ्रीर) के बीच विभाजित हो गई है।गुलशन एल्बम, सम्राट जहाँगीर द्वारा संकलित, अब ज्यादातर गोलेस्तान पैलेस, तेहरान में है।

1.5 सारांश

मुग़ल काल के इतिहास के स्रोत काफ़ी व्यापकता लिए हुए हैं, जहाँ इस समय के साहित्यिक स्रोतों में फ़ारसी भाषा का विपुल साहित्य शामिल है, वहीं स्थानीय भाषा में लिखे गए ग्रंथ भी व्यापक रूप से उपलब्ध हैं, इसके साथ ही सरकारी दस्तावेज़, ख़ुफ़िया रिपोर्ट, चिट्ठियां, फ़रमान, निशान इत्यादि का विपुल भंडार भी हमें देखने को मिलता है। इस इकाई में हमने फाँसी तारीख़ लेखन के साथ मुग़ल दरबार में संस्कृत परंपरा, राजस्थान में ख्यात और चरित की परंपरा के साथ ही मराठा साम्राज्य के साथ विकसित हो रहे मराठी साहित्य की भी चर्चा की है, विशेष रूप से ऐसे साहित्य की जो ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही यह जानना भी बड़ा महत्वपूर्ण है कि इस समय बड़े स्तर पर ब्रज और अवधी भाषा में साहित्य लिखा जा रहा था, विशेष रूप से ब्रज भाषा में। अधिकांश साहित्य का संदर्भ भक्ति परंपरा से था और इसके साथ ही वैष्णव आचार्यों द्वारा संस्कृत भाषा में पुराने ग्रंथों पर, विशेष रूप से ही भागवत पुराण पर, कई भाष्य और टिकाएँ लिखी गई। और वैष्णव भक्तों की जीवनियों का भी ब्रज और हिंदी भाषा में संकलन किया गया है। विभिन्न निराकार पंथ के संतों ने भी बड़ी मात्रा में साहित्य सृजन किया है, जो तत्कालीन समाज की विशिष्टताओं को समझने के लिए महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में काम आता है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि इस समय नव्य-न्याय की दार्शनिक परंपरा में भी बहुत सा साहित्य संस्कृत भाषा में लिखा जा रहा था जो इस दार्शनिक मत के नए स्वरूप में हो रहे विस्तार को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस इकाई में हमने इस बात की भी चर्चा की

है कि यूरोपियों के यात्रा वृत्तान्त के माध्यम से भी हमें हिन्दुस्तान के बारी में काफ़ी दिलचस्प जानकारियां हासिल होती है।

1.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के लिए सही विकल्प चुनें:

1. पेल्सार्ट था:

A. डच

B. पुर्तगाली

C. अंग्रेज

D. इतालवी

2. विलियम फ़िंच भारत कब आया?

A. 1608

B. 1612

C. 1609

D. 1611

प्रश्नों के उत्तर 1. A, 2.A.

1.7 शब्दावली

मुरक़्क़ा	मुरक्का एक फ़ारसी शब्द है जो चित्रों और सुलेख की एल्बम को संदर्भित करता है।
महदी	महदी आंदोलन, जिसे महदाविया के नाम से भी जाना जाता है, एक इस्लामी आंदोलन है जिसकी शुरुआत 15वीं सदी के अंत में भारत में हुई थी। सैयद मुहम्मद जौनपुरीको इस आंदोलन का संस्थापक माना जाता है, और उन्होंने 1496 में मक्का में काबा में महदी होने का दावा किया था।

1.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. अकबर के काल के प्रमुख फ़ारसी स्रोतों की विवेचना कीजिए।
2. मुग़ल काल के संस्कृत और हिंदी स्रोतों पर टिप्पणी लिखिए:
3. मुग़ल काल के प्रमुख यूरोपीय यात्रा वृत्तांतों के विवरणों के महत्व पर प्रकाश डालिए।

1.9 संदर्भ सामग्री

Manik Lal Gupta, Sources of Mughal History, Atlantic Publishers, New Delhi, 1989.

Allison Busch, Audrey Truschke,Sanskrit and Vernacular Literatures at the Mughal Court, https://doi.org/10.1093/oxfordhb/9780190222642.013.31.

Rajeev Kinra, Writing Self, Writing Empire, Primus Books, New Delhi, 2016.

मध्यकालीन भारत भाग-2, हरिश्चंद्र वर्मा (संपा.), हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2005.

इकाई दो –मुगल राज्य व्यवस्थाः बाबर एवं हुमायूं

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 बादशाह बाबर

2.3.1 बाबर का काबुल पर अधिकार

2.3.2 भारत में राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर पंजाब पर आक्रमण

2.3.3 पानीपत का प्रथम युद्ध

2.3.4 भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना

2.3.4.1 पादशाह बाबर

2.3.4.2 खनवा, चन्देरी तथा घाघरा के युद्ध

2.3.4.3 शासक के रूप में बाबर का मूल्यांकन

2.4 बादशाह हुमायूं

2.4.1 प्रारम्भिक कठिनाइयां

2.4.2 बहादुर शाह से संघर्ष

2.4.3 शेर खाँ से संघर्ष

2.4.4 हुमायूं का पतन और हिन्दुस्तान से निष्कासन

2.4.5 हिन्दुस्तान पर पुनराधिकार एवं मृत्यु

2.4.6 शासक के रूप में हुमायूं का आकलन

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारत में सन् 1526 में मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई। राजनीतिक स्थिरता, शान्ति एवं प्रशासनिक सुव्यवस्था, आर्थिक समृद्धि, सांस्कृतिक विकास तथा साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से भारतीय इतिहास में एक नए युग का प्रारम्भ हुआ। काबुल का शासक बाबर, पिता की ओर से तैमूर का तथा माँ की ओर से चंगेज़ खाँ का वंशज था। भारत की राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर उसने पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी को पराजित कर भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना की तथा अगले वर्ष उसने खनवा के युद्ध में राजपूत राज्य संघ के प्रमुख व मेवाड़ के शासक राणा सांगा को पराजित किया।

हिन्दुस्तान के पहले बादशाह के रूप में बाबर ने पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त शासक की अवधारणा का विकास किया। हुमायूं बाबर और अकबर महान के मध्य एक कमज़ोर कड़ी था। दस वर्षों तक वह अपने आलस्य और विलासप्रियता, भाइयों तथा अपने अमीरों के विश्वासघात व बहादुर शाह के विरोध से जूझता रहा लेकिन इस अवधि में शेर खाँ उसके पतन और उसके भारत से निष्कासन का कारण बना। 15 वर्ष के अंतराल के बाद हुमायूं ने एक बार फिर दिल्ली पर अधिकार कर लिया किन्तु छह महीने बाद ही उसकी मृत्यु हो गई।

शेर खाँ, शेर शाह के रूप में सन् 1540 में बादशाह बना। अपने पाँच वर्षों के सुशासन से उसने इतिहास में एक अमिट छाप छोड़ी है। प्रशासनिक सुव्यवस्था और कल्याणकारी राज्य की कल्पना को साकार करने के प्रयास की दृष्टि से हम शेर शाह को अकबर का मार्गदर्शक कह सकते हैं। ब्रिटिश भारतीय शासकों ने भी अपने प्रशासन में इस अफ़गान शासक की अनेक नीतियों का अनुकरण किया था।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको मुगल साम्राज्य की स्थापना की परिस्थितियों से लेकर शासक के रूप में बाबर, हुमायूं तथा शेरशाह के कार्यों की जानकारी देना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- बाबर द्वारा भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना तथा पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त शासक की अवधारणा का विकास।

2. शासक के रूप में बाबर का आकलन

3. बादशाह हुमायूं की कठिनाइयां, उसकी असफलता और हिन्दुस्तान के बादशाह के रूप में उसकी वापसी।

4. शेर शाह का उत्थान तथा एक प्रशासक के रूप में भारत को उसकी देन।

2.3 बादशाह बाबर

2.3.1 बाबर का काबुल पर अधिकार

उमर शेख मिर्ज़ा का पुत्र और फ़रगना का शासक बाबर, पिता की ओर से तैमूर का तथा माँ की ओर से चंगेज़ खाँ का वंशज था। उज़बेक शैबानी खाँ से पराजित होने और अपने फ़रगना हाथ से चले जाने के बाद बाद वह पूर्व की ओर अग्रसर हुआ। सन् 1504 में उसने काबुल तथा गज़नी पर अधिकार कर लिया। सन् 1507 में उसने पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त शासक का ज्ञापन करने वालीपादशाह की उपाधि धारण की। सन् 1513-14 के समरकन्द अभियान में असफल होने के बाद बाबर ने मध्य एशिया पर विजय की योजना का हमेशा के लिए परित्याग कर दिया और सन् 1525 तक वह अपने सैनिक अभियानों को छोड़कर शेष समय काबुल में ही बना रहा।

2.3.2 भारत में राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर पंजाब पर आक्रमण

काबुल पर अधिकार करने के तुरन्त बाद से ही बाबर भारत की समृद्धि और उसकी साधन-सम्पन्नता की ओर आकर्षित हो गया था। अपने पूर्वज तैमूर के भारत अभियान ने उसे भी भारत पर आक्रमण करने की प्रेरणा मिली थी। अपनी आत्मकथा तुज़ुक-ए-बाबरी में बाबर ने अपनी काबुल विजय के तुरन्त बाद से ही हिन्दुस्तान फ़तेह करने की अपनी महत्वाकांक्षा का उल्लेख किया है। काबुल विजय के बाद वह रसद प्राप्त करने के उद्देश्य से दो बार हिन्दुस्तान आया था।

1. सन् 1519 में उसने यूसुफ़जाही जाति को राजस्व देने के लिए विवश किया और बाजौर व भेरा पर आक्रमण कर उन्हें लूटा व उन पर अधिकार कर लिया। उसने अपने राजदूत मुल्ला मुर्शिद को इब्राहीम लोदी के पास तैमूर के वंशज के रूप में पंजाब के पश्चिमी क्षेत्र पर अपने वैधानिक अधिकार का दावा पेश करने के लिए भेजा।
2. सन् 1519 में ही यूसुफ़जाहियों के दमन के लिए बाबर ने दुबारा पंजाब पर आक्रमण किया।
3. भेरा के विद्रोहियों के दमन हेतु बाबर ने सन् 1520 में पंजाब पर तीसरा आक्रमण किया।
4. बाबर ने पंजाब पर चौथा आक्रमण सन् 1524 में पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ लोदी और इब्राहीम लोदी के चाचा आलम खाँ लोदी के निमन्त्रण पर किया था। इसमें उसने लाहौर व दीपलपुर पर अधिकार कर लिया।
5. बाबर अपने अन्तिम तथा पाँचवे आक्रमण के लिए अपने तोपखाने और 12000 की सेना के साथ दिसम्बर, 1525 में पंजाब पहुंचा और उस पर अधिकार कर लिया।

2.3.3 पानीपत का प्रथम युद्ध

आलम खाँ लोदी तथा इब्राहीम लोदी से असन्तुष्ट अनेक लोदी अमीरों ने बाबर से दिल्ली पर अधिकार करने हेतु अभियान करने का अनुरोध किया। पंजाब पर अधिकार करने के बाद बाबर सरहिन्द और अम्बाला होता हुआ पानीपत पहुंचा। तुज़ुक-ए-बाबरी में बाबर के अनुसार उसकी सेना में 12000 और इब्राहीम की सेना में 100000 सैनिक थे

eqxydkyhu rksi

किन्तु यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है। बाबर की सेना कम से कम 25000 की थी। 21 अप्रैल, 1526 को पानीपत पानीपत का प्रथम युद्ध हुआ। इब्राहीम लोदी परम्परागत मध्यकालीन आक्रामक रणनीति अपना रहा था जब कि बाबर ने आक्रामक एवं रक्षात्मक दोनों रणनीतियां अपनाई थीं। अग्रिम टुकड़ी के लिए अराबा और तोपचियों की रक्षा के लिए टूरा (बचाव स्थान) बनाए गए थे। आक्रामक रणनीति के अन्तर्गत उज़बेग शैबानी खाँ से सीखी हुई तुलुगमा पद्धति का प्रयोग होना था। इब्राहीम की सेना में बन्दूकों का अभाव था तथा तोपें थी ही नहीं। बाबर की सेना ने इब्राहीम लोदी की सेना का भयंकर विनाश किया। इस एक तरफ़ा युद्ध में बाबर विजयी हुआ और इब्राहीम लोदी लड़ते हुए मारा गया।

2.3.4 भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना

2.3.4.1 पादशाह बाबर

पानीपत का निर्णायक युद्ध इब्राहीम लोदी, अफ़गान शक्ति तथा दिल्ली सल्तनत के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। इस युद्ध के परिणामस्वरूप भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई। बाबर ने सुल्तान के स्थान पर पादशाह की उपाधि धारण की। पादशाह अथवा बादशाह पद, सुल्तान पद की तुलना में अधिक मान, प्रतिष्ठा और शक्ति का पद था। इस नए राजत्व के सिद्धान्त के अनुसार शासक पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त हुआ और सिद्धान्तः उसको खलीफ़ा से वैधानिक मान्यता प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रही।

2.3.4.2 खनवा, चन्देरी तथा घाघरा के युद्ध

1. मेवाड़ के शासक राणा संग्राम सिंह के नेतृत्व में राजपूत राज्य संघ उत्तर भारत की सर्व-प्रमुख शक्ति के रूप में स्थापित हो चुका था। अपनी सत्ता को स्थायित्व प्रदान करने के लिए बाबर को राजपूत शक्ति को हराना आवश्यक था। कालपी, बयाना और धौलपुर पर मुगलों द्वारा अधिकार किए जाने के विरोध में राजपूतों और मुगलों में युद्ध हुआ। राणा संग्राम सिंह की विजयों से आतंकित एवं हतोत्साहित मुगल सेना में जोश भरने के लिए बाबर ने न केवल एक ओजस्वी भाषण दिया अपितु राजपूतों के विरुद्ध इस युद्ध को जिहाद का नाम दिया। 16 मार्च, 1527 को खनवा में हुए 10 घण्टों तक चले युद्ध में अपने तोपखाने के बल पर मुगलों की विजय हुई। इस युद्ध के बाद राणा संग्राम सिंह के नेतृत्व में संगठित राजपूत राज्य संघ नष्ट हो गया और मुगलों के लिए हिन्दुस्तान में सबसे बड़ा सबसे बड़ा खतरा दूर हो गया।

2. चन्देरी को मालवा तथा राजपूताने का प्रवेश द्वार कहा जाता था। बाबर ने चन्देरी की ओर अभियान कर 21 जनवरी, 1528 को मेदिनीराय को पराजित किया।

3. बंगाल के शासक नुसरत शाह के समर्थन से पूर्व में अफ़गान शक्ति के पुनर्गठन को असफल करने के उद्देश्य से बाबर ने जनवरी, 1529 में आगरा से पूर्व की ओर प्रस्थान किया। 6 मई, 1529 को घाघरा के युद्ध में उसने महमूद खाँ लोदी

के नेतृत्व वाली अफ़गान सेना को पराजित किया। नुसरत शाह से सन्धि कर बाबर ने यह आश्वासन प्राप्त किया कि वह मुगलों के विरुद्ध अफ़गानों को कोई सहयोग नहीं देगा।

2.3.4.3 शासक के रूप में बाबर का मूल्यांकन

26 दिसम्बर, 1530 को बाबर की मृत्यु हो गई। भारत में अपने अल्प शासनकाल में बाबर ने एक नए राजत्व के सिद्धान्त का पोषण करने वाले एक साम्राज्य की स्थापना जिसका कि विस्तार अफ़गानिस्तान से लेकर बिहार तक था। उसने मध्यकालीन भारतीय सैन्य-शक्ति के स्तर को अपने तोपखाने के बल पर एक नए शिखर तक पहुंचा दिया। राजपूतों के विरुद्ध युद्धों को बाबर ने जिहाद का नाम अवश्य दिया किन्तु उसने एक धर्मांध मुस्लिम शासक की भांति धार्मिक उत्पीड़न के लिए कोई अभियान नहीं किया। अपने नव-स्थापित साम्राज्य के प्रशासनिक ढांचे में उसने आमूल परिवर्तन न करके अपनी व्यावहारिक सद्बुद्धि का परिचय दिया। उसने अपने अधिकारियों को यह निर्देश दिया कि वो अपने प्रशासनिक कार्यों के निर्वाहन में स्थानीय परम्पराओं को पर्याप्त सम्मान दें किन्तु उसके कामचलाऊ प्रशासन में प्रजा के हितों की नितान्त उपेक्षा की गई थी और उसके राज्य की आय मुख्यतः युद्धों के द्वारा लूटी गई राशि पर आधारित थी। वह अपने राज्य को आर्थिक तथा राजनीतिक स्थायित्व देने में असफल रहा। शेर शाह, मालदेव तथा हेमू विक्रमादित्य के परवर्ती काल में उत्थान से यह सिद्ध हो गया कि उसने अफ़गान तथा राजपूत शक्तियों के पूर्ण दमन में सफलता प्राप्त नहीं की थी। उसने हुमायूं के लिए चुनौतियों से भरा साम्राज्य छोड़ा था और ऊपर से उसने अपने पुत्रों में अपने साम्राज्य का विभाजन कर हुमायूं के लिए और भी अधिक कठिनाइयां खड़ी कर दी थीं।

2.4 बादशाह हुमायूं

2.4.1 प्रारम्भिक कठिनाइयां

सन् 1530 में बाबर की मुत्यु के बाद हुमायूं को बादशाह बनते ही अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

1. हुमायूं को विरासत में आर्थिक रूप से दुर्बल और प्रशासनिक स्तर पर अव्यवस्थित एवं राजनीतिक दृष्टि से अस्थिर एक ऐसा साम्राज्य मिला था जो कि केवल सैन्य-बल पर टिका हुआ था। उसकी सेना मुगलों, तुर्कों, उज़बेको, ईरानियों, अफ़गानों और हिन्दुस्तानियों का जमावड़ा थी और इसमें जातीय, भाषागत एवं सांस्कृतिक भिन्नता के कारण एकता और संगठन का अभाव था।

2. बाबर ने हमायूं को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने के साथ ही अपने शेष तीन बेटों - कामरान, अस्करी और हिन्दाल में भी अपना साम्राज्य विभाजित कर दिया था। कामरान को काबुल और कान्धार का शासक बनाया गया था। कामरान ने प्रारम्भ से ही हुमायूं के लिए कठिनाइयां खड़ी कर दी थीं। अस्करी और हिन्दाल भी कामरान के मोहरे बन कर हुमायूं को परेशान कर रहे थे।

3. हुमायूं के अन्य सम्बन्धी - मुहम्मद ज़मां, मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा तथा मीर मुहम्मद महदी ख्वाजा न केवल शक्तिशाली, साधन-सम्पन्न थे अपितु स्वयं बादशाह बनने की महत्वाकांक्षा भी रखते थे। ये सभी नए बादशाह के प्रति निष्ठावान नहीं थे।

4. बंगाल के शासक नुसरत शाह ने मुगलों से पराजित अफ़गानों को शरण दी थी और इब्राहीम लोदी की पुत्री से विवाह कर दिल्ली के तख्त पर स्वयं अधिकार करने की योजना भी बनाई थी।

5. सिंध और मुल्तान के अरघुन शासकों से बाबर ने काबुल छीन लिया था और खनवा के युद्ध में विजय के बाद उन्हें अपनी आधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया था। बंगाल और गुजरात में बादशाह हुमायूं की व्यस्तता देखकर अरघुन शासकों ने स्वयं को न केवल स्वतन्त्र घोषित किया अपितु हुमायूं के विद्रोही भाई कामरान मिर्ज़ा से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध भी स्थापित कर लिए थे।

5. भारत में नवजात मुगल साम्राज्य को पूर्व में शेर खाँ के नेतृत्व में अफ़गान शक्ति के पुनर्गठन से सबसे बड़ा खतरा था।

6. दक्षिण में गुजरात का शासक बहादुर शाह मालवा और चित्तौड़ पर अधिकार करना चाहता था और फिर उत्तर भारत की ओर भी बढ़ना चाहता था।

2.4.2 बहादुर शाह से संघर्ष

गुजरात का शासक बहादुरशाह मालवा तथा राजपूताने पर अधिकार करना चाहता था। उसने शेर खाँ से मित्रता कर ली और बागी मुगल ज़मां मिर्ज़ा को अपने यहां शरण दी और हुमायूं द्वारा उसको मुगलों को सौंपने की मांग ठुकरा दी। सन् 1535 में जब बहादुर शाह ने चित्तौड़ पर घेरा डाला तो वहां की रानी कर्णवती ने हुमायूं से सहायता मांगी। हुमायूं बहादुर शाह के विरुद्ध अभियान के लिए निकला किन्तु एक विधर्मी से जिहाद करते हुए एक मुसलमान के विरुद्ध उसने युद्ध न करने का मूर्खतापूर्ण निर्णय लेकर एक ओर जहां राजपूतों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का मौका खा दिया, वहीं उसने मुश्किल में पड़े हुए बहादुर शाह को चित्तौड़ जीतने का अवसर भी प्रदान कर दिया। हुमायूं और बहादुर शाह की सेनाओं का मन्दसौर में आमना-सामना हुआ जिसमें मुगल सेना की विजय हुई । भागते हुए बहादुर शाह का हुमायूं ने मन्दसौर, चम्पानेर और खम्भात तक पीछा किया और फिर अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया। अस्करी को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया किन्तु एक वर्ष के अन्दर ही मालवा तथा गुजरात की मुगल विजय निरर्थक सिद्ध हुई और बहादुर शाह को एक बार फिर गुजरात पर अधिकार करने का अवसर मिल गया।

2.4.3 शेर खाँ से संघर्ष

अगस्त, 1532 में दौहरिया के युद्ध में मुगलों ने अफ़गानों को पराजित कर बिहार-बंगाल के प्रवेश द्वार चुनार के किले पर अपना दावा किया था जिस पर कि शेर खाँ ने अधिकार कर लिया था। शेर खाँ बाबर का सैनिक पदाधिकारी रह चुका था। उसने हुमायूं को अपना स्वामी स्वीकार करते हुए चुनार का किला उसी के पास रहने देने की प्रार्थना की। हुमायूं ने किले को घेर लिया परन्तु छह महीने के घेरा डालने के बाद भी वह उस पर अधिकार नहीं कर

सका। इधर ग्वालियर पर बहादुरशाह द्वारा कब्ज़ा किए जाने से परेशान हुमायूं उसे रोकने के लिए वापस जाना चाहता था। शेर खाँ द्वारा मुगलों की दिखावे मात्र की आधीनता और ज़मानत के तौर पर अपने बेटे कुतुब खाँ को हुमायूं को सौंपने के प्रस्ताव के बदले में हुमायूं ने चुनार का किला उसी के पास रहने दिया और वह स्वयं आगरा लौट गया। गुजरात में हुमायूं की व्यस्तता का लाभ उठाकर शेर खाँ ने दक्षिणी बिहार पर अधिकार कर लिया। उसने हुमायूं को कोई भेंट नहीं भेजी और हुमायूं के कब्ज़े से कुतुब खाँ के वापस निकल आने के बाद सन् 1534 में बंगाल के शासक महमूद शाह को सूरजगढ़ के युद्ध में पराजित कर उससे भारी रकम वसूली। सन् 1537 में शेर खाँ द्वारा बंगाल पर दुबारा आक्रमण के समय वहां के शासक महमूद शाह के अनुरोध पर हुमायूं सन् 1537 में शेर खाँ के दमन हेतु पूर्व की ओर बढ़ा लेकिन बंगाल में उससे निपटने से पहले हुमायूं ने नवम्बर, 1537 में चुनार किले का घेरा डाला और जून, 1538 में उसे जीत लिया। इस बीच शेर खाँ ने बंगाल पर अधिकार कर लिया था। शेर खाँ के दमन के उद्देश्य से मई, 1538 में हुमायूं बंगाल के लिए निकला। शेर खाँ के पुत्र जलाल खाँ द्वारा उसका मार्ग अवरुद्ध किए जाने के कारण वह चार महीने बाद बंगाल की राजधानी गौड़ पहुंच सका। शेर खाँ तब तक रोहतास गढ़ पहुंच गया था। हुमायूं ने चार महीने का समय गौड़ में व्यतीत किया। उसके द्वारा बिहार की रक्षा के लिए नियुक्त उसका भाई हिन्दाल बिहार को असुरक्षित छोड़कर आगरा चला गया और वहां उसने तख्त पर अधिकार कर लिया। आगरा वापस लौटने के लिए उत्सुक हुमायूं ने चौसा से शेर खाँ के समक्ष अप्रैल, 1539 को सन्धि का प्रस्ताव भेजा जिसे स्वीकार करने में टालमटोल करते हुए उसने तीन महीने बिता दिए। बरसात के मौसम में, पश्चिम से पूरी तरह कटे हुए, रसद की कमी से जूझ रहे, शेर खाँ सन्धि की प्रत्याशा के कारण पूर्णतया असावधान हुमायूं पर 25 जून की रात में हमला कर दिया और मुगल सेना को पराजित किया। भारी नुक्सान उठाकर हुमायूं जान बचाकर वापस आगरा पहुंच सका। चौसा के युद्ध के बाद शेर खाँ ने शेर शाह की उपाधि धारण कर ली। शेर शाह से युद्ध करने हेतु हुमायूं ने अपनी सेना का पुनर्संगठन किया। अप्रैल, 1540 तक शेर शाह बंगाल से बढ़ते हुए कन्नौज पहुंच चुका था और अपनी सेना के साथ हुमायूं भी आगरा से वहां पहुंच गया था। कन्नौज में दोनों सेनाएं एक महीने तक एक-दूसरे के सामने थीं किन्तु हुमायूं की सेना का पड़ाव निचली सतह पर था। मई माह में अप्रत्याशित हुई बारिश से हुमायूं के शिविर में पानी भर गया और उसकी तोपें बेकार हो गईं। इसका लाभ उठाकर शेर शाह ने मुगलों पर हमला बोल दिया। 17 मई, 1540 को बिलग्राम के युद्ध में शेर शाह ने मुगल सेना को पराजित किया। शेर शाह ने सुगमता से आगरा तथा दिल्ली पर अधिकार कर लिया और फिर उसने हुमायूं को हिन्दुस्तान से पूरी तरह निष्कासित कर दिया।

2.4.4 हुमायूं का पतन और हिन्दुस्तान से निष्कासन

शेरशाह से पराजित, अपनी बादशाहत खो चुका और दिल्ली तथा आगरा से निर्वासित हुमायूं लाहौर पहुंचा किन्तु कामरान मिर्ज़ा के असहयोग के कारण वह वहां भी टिक नहीं सका। शेर शाह ने मुगलों के विरुद्ध अभियान कर लाहौर पर अधिकार कर लिया और उनको हिन्दुस्तान छोड़ने के लिए विवश किया। बादशाह शेर शाह ने पश्चिमोत्तर

प्रदेश में मुगलों की वापसी की सभी सम्भावनाओं को समाप्त करने के लिए आवश्यक कदम उठाए और हुमायूं को निर्वासित जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर किया।

2.4.5 हिन्दुस्तान पर पुनराधिकार एवं मृत्यु

ईरान के बादशाह की सहायता से हुमायूं ने अस्करी को पराजित करने के बाद कान्धार पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने काबुल पर भी अधिकार कर लिया। उसने कामरान मिर्ज़ा को अपने विरुद्ध इस्लाम शाह सूर से सहायता प्राप्त करने के लिए दिल्ली की ओर प्रस्थान करने से पहले ही पकड़ कर उसको अंधा कर दिया। हिन्दाल की पहले ही मृत्यु हो चुकी थी। भाइयों की समस्याओं से मुक्त होकर अब हुमायूं ने हिन्दुस्तान की अराजकतापूर्ण स्थिति का लाभ उठा कर उसे फिर से जीतने की योजना बनाई। सन् 1554 में हुमायूं ने लाहौर पर अधिकार कर लिया। 27 अप्रैल, 1555 को सरहिन्द में उसने अफ़गान सेना को पराजित किया और 27 जुलाई, 1555 को एक विजेता के रूप में उसने दिल्ली में फिर से प्रवेश किया किन्तु ठीक छह महीने बाद 27 जनवरी, 1556 को सीढ़ियों से लुढ़कने से गम्भीर रूप से घायल होने के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

2.4.6 शासक के रूप में हुमायूं का आकलन

1. भावुक प्रकृति के हुमायूं में व्यावहारिकता की कमी थी। उसने अपने पिता बाबर द्वारा अपने भाइयों में राज्य के बटवारे की वसीयत को स्वीकार कर अपने लिए मुश्किलें खड़ी कर दीं और स्वधर्मी शत्रु गुजरात के शासक बहादुर शाह को चित्तौड़ विजय का अवसर प्रदान कर दिया था।
2. अपनी क्षमाशीलता से उसने अपने भाइयों, विशेषकर कामरान मिर्ज़ा को बार-बार विद्रोह और षडयन्त्र करने का मौका दिया।
3. अपनी विलासप्रियता, नशा करने की लत और आलसी स्वभाव के दुर्गुणों के कारण उसने शेर खाँ को अपनी शक्ति पुनर्संगठित करने का अवसर दिया।
4. शत्रुओं और षडयन्त्रकारियों के आश्वासनों पर भरोसा कर हुमायूं ने बार-बार अपनी जड़ें खुद ही खोदी थीं। शेर खाँ, बहादुर शाह और कामरान मिर्ज़ा की बातों पर विश्वास कर उसने अपना भारी नुक्सान किया था।
5. हुमायूं एक वीर सैनिक था किन्तु उसका यह दुर्भाग्य था कि उसे बहादुर शाह और शेर खाँ जैसे योग्य शत्रु मिले थे।
6. हुमायूं में दूरदर्शिता की कमी थी और प्रशासनिक कार्यों में उसकी कोई अभिरुचि नहीं थी। सन् 1530 से 1540 तक के अपने शासनकाल में वह नवोदित मुगल साम्राज्य को सुसंगठित एवं सुदृढ़ करने में नितान्त असफल रहा।

7. 'हुमायूं' का शाब्दिक अर्थ 'भाग्यशाली' होता है किन्तु दुर्भाग्य ने कभी भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण वह जीवन भर भटकता रहा और उसका अन्त भी सीढ़ियों से लुढ़कने के कारण हुआ।

2.6 सारांश

भारत की राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर काबुल के शासक बाबर ने पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी को पराजित कर भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना की। हिन्दुस्तान के पहले बादशाह के रूप में बाबर ने पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त शासक की अवधारणा का विकास किया। हुमायूं बाबर और अकबर महान के मध्य एक कमज़ोर कड़ी था। उसने दस वर्षों तक शासन किया किन्तु वह इस काल में अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं, भाइयों तथा सम्बन्धियों के विश्वासघातों व बहादुर शाह और शेर खाँ जैसे प्रबल प्रतिद्वन्दियों से जूझता रहा। शेर खाँ उसके पतन और उसके भारत से निष्कासन का कारण बना। दिल्ली के बादशाह के रूप में 15 वर्ष के अंतराल के बाद हुमायूं की फिर वापसी हुई किन्तु छह महीने बाद ही उसकी मृत्यु हो गई।

शेर खाँ, शेर शाह के रूप में सन् 1540 में बादशाह बना। अपने पाँच वर्षों के सुशासन से उसने इतिहास में एक अमिट छाप छोड़ी है। उसने अपने साम्राज्य में अभूतपूर्व शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित की। उसने साम्राज्य की सुरक्षा, व्यापार-वाणिज्य की उन्नति और कृषि विकास हेतु समुचित प्रबन्ध किए। प्रशासनिक सुव्यवस्था और लोक-कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना को साकार करने के प्रयास की दृष्टि से हम शेर शाह को अकबर का मार्गदर्शक कह सकते हैं।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

पादशाह - बादशाह।

जिहाद - विधर्मियों के विरुद्ध मुसलमानों का धर्मयुद्ध।

दीवान-ए-विज़ारत - वित्त मन्त्रालय।

दीवान-ए-अर्ज़ - सैन्य मन्त्रालय।

दीवान-ए-रसालत - विदेश मन्त्रालय।

दीवान-ए-कज़ा - मुख्य न्यायाधिकारी

बरीद-ए-मुमालिक - मुख्य गुप्तचर अधिकारी।

शिक़दार-ए-शिक़दारान - मुख्य सैनिक एवं प्रशासनिक अधिकारी।

मुन्सिफ़-ए-मुन्सिफ़ान - मुख्य न्यायिक अधिकारी।

पट्टा - किसानों को दिया जाने वाला अधिकार पत्र।

कुबूलियत - किसानों से लिया जाने वाला लगान सम्बन्धी दायित्व पत्र।

2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 2.3.3 पानीपत का प्रथम युद्ध।
2. देखिए पादशाह बाबर 2.3.4.1
3. देखिए 2.3.4.1 प्रारम्भिक कठिनाइयां।
4. देखिए 2.3.4.3 शेर खाँ से संघर्ष।

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Williams, Rushbrook – *An Empire Builder of the Sixteenth Century*
2. Banerjee, S. K. – *Humayun Badshah*
3. Qanungo, K. R. – Sher Shah
4. Lane Poole, S. – *Babur* (*Rulers of India Series*)
5. Grenard, Fernand – *Babar – First of the Mughals*
6. निगम, एस0 बी0 पी0 - सूर वंश का इतिहास भाग 1
7. विद्या भास्कर - शेर शाह सूरी

2.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Babur – *Baburnama* (Eng. Tr. – Mrs Beveridge)
2. Gulbadan Begum – *Humayun Nama* (Eng. Tr. – Mrs Beveridge)
3. Sarwani, Abbas Khan – *Tarikh-i-Sher Shahi* (English tr. – Dowson, John)
4. करनाड, गिरीश - मुगलकालीन भारत (बाबर)
5. श्रीवास्तव, हरिशंकर - मुगल सम्राट हुमायूं

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. हुमायूँ पर चर्चा कीजिए।

इकाई तीन - शेरशाह एवं उसका प्रशासन, भू-राजस्व व्यवस्था

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 प्रारंभिक जीवन और पृष्ठभूमि

3.4 शेरशाह द्वारा लड़े गए प्रमुख युद्ध

3.5 शेरशाह का प्रशासन

- **3.5.1 केन्द्रीय प्रशासन**
- **3.5.2 प्रांतीय प्रशासन**
- **3.5.3 न्यायिक व्यवस्था**
- **3.5.4 सैन्य प्रशासन**
- **3.5.5 अवसंरचनात्मक निर्माण और सार्वजनिक कार्य**

3.6 शेरशाह की भू-राजस्व व्यवस्था

3.7 शेरशाह के उत्तराधिकारी एवं सूर वंश का पतन

3.8 सारांश

3.9 तकनीकी शब्दावली

3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्न

3.11संदर्भग्रंथसूची

3.12 निबंधात्मकप्रश्न

3.1 प्रस्तावना

रशब्रुक विलियम्स, सूर वंश की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि:- "यह तैमूरी खानदान का दुर्लभ सौभाग्य था कि वह अंततः अपनी विजय की विरासत पुनः प्राप्त करने में सफल रहा, विरासत जिसे अफगान शेरशाह ने सुदृढ़ किया था। शेरशाह ऐसा प्रशासक था जिसमें मौलिकता थी और जिसने अनजाने ही मुगलों के लिए प्रशासनिक तंत्र का ऐसा ढांचा तैयार कर दिया था जिसे मुगल स्वयं बनाने में असमर्थ रहते, भले ही उन्होंने राजतंत्र के लिए एक नए आदर्श को प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की थी।"

सूरी साम्राज्य के संस्थापक शेरशाह सूरी का उदय भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय है।शेरशाह सूरी ने भारत में एक मजबूत अफ़गान राज्य की स्थापना की, आगे चलकर शेर शाह सूरी की शासन पद्धति के विशिष्ट तत्वों को मुगल बादशाहों द्वारा भी अपनी शासनपद्धति में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। वस्तुतः कहा जाए तो मध्यकालीन भारत में वह शासक शेरशाह ही है जो प्रशासनिक और सैन्य नवाचार के मामले मेंएक नए युग की शुरुआत करता है। 16वीं शताब्दी की शुरुआत में फ़रीद ख़ान के रूप में जन्मे, शेर शाह की एक क्षेत्रीय कुलीन राज्य से लेकर एक विशाल साम्राज्य के शासक बनने तक की यात्रा उसकी असाधारण योग्यता, रणनीतिक सूझबूझ और शासन-व्यवस्था के प्रति गहन समझ का प्रमाण है। आगे आप इस अध्याय में विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत विस्तारपूर्वक सूर साम्राज्य का विषद अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

यह अध्याय शेर शाह सूरी के अफ़गान राज्य की स्थापना और सुदृढ़ीकरण पर प्रकाश डालता है, इस अध्याय के माध्यम से आप शेरशाह के शासन को आकार देने वाले सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्यों की विस्तार से खोजबीन कर सकेंगे। इस अध्याय में आप पढेंगे कि कैसे शेरशाह सूरी ने अपनी पश्तून विरासत और सैन्य कौशल का लाभ उठाते हुए उत्तरी भारत के विखंडित क्षेत्रों को एक सुसंगत और प्रभावशाली साम्राज्य में बदल दिया। इस अध्याय में उनके सैन्य अभियानों, रणनीतिक गठबंधनों और प्रशासनिक सुधारों के साथ साथ भू-राजस्व व्यवस्था तथा उनके सफल क्रियान्वयनका भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाएगा, साथ ही इस बात पर भी प्रकाश डाला जाएगा कि किस प्रकार उनके द्वारा अपनाई गई नीतियां बाद के शासकों के लिए आधार बनी।

3.3 प्रारंभिक जीवन और पृष्ठभूमि

शेरशाह के बचपन का नाम फ़रीद ख़ान था और इनका जन्म (१४७२) भारत के वर्तमान राज्य बिहार के सासाराम क्षेत्र में सूर जनजाति के एक पश्तून परिवार में हुआ था। उनके दादा इब्राहीम खां घोड़ों के व्यापारी थे और बहलोल लोदी के आमंत्रण पर एक सैनिक के रूप में भारत आए थे, फरीद के पिता हसन ख़ान सूर,बिहार में सहसराम और खवासपुर टांडा परगने के जागीरदार (ज़मींदार) थे।अपने सौतली माँ के आचरण से परेशान होकर फरीद अपनी शिक्षा-दीक्षा के लिए साल १४९४ ई. में जौनपुर चले आए और यहीं इन्होंने फ़ारसी और अरबी में भाषा का गहन

अध्ययन कर पारंगतता हासिल करी।अपनी कुशाग्र बुद्धि तथा प्रतिभाशाली विद्यार्थी होने के चलते इन्होंने यहाँ रहकर प्रांत के दीवानी तथा फौजदारी प्रशासन का ज्ञान भी अर्जित किया।

शीघ्र ही अपने पुत्र की योग्यता से प्रभावित होकर इनके पिता ने इन्हें सहसराम और खवासपुर टांडा दोनों परगनों का प्रबंधन इन्हें सौंप दिया। फरीद ने अपनी योग्यता का परिचय देते हुए अगले 21 वर्षों तक शांति और समृद्धि के साथ अपनी जागीर का बेहतर प्रबंध किया, परन्तु पारिवारिक कलह की वजह से यह स्थिति अधिक समय तक कायम न रह सकी और वह अपने भाग्य को आजमाने के लिए आगरा जा पहुंचा।यहाँ पहुंचकर उसे दौलत खां लोदी का संरक्षण प्राप्त हुआ और यहीं उसने तत्कालीन सुल्तान इब्राहीम लोदी से सहसराम और खवासपुर टांडा की जागीरदारी पाने के लिए अनुरोध किया जिसे सुल्तान ने अस्वीकार कर दिया।हालाँकि फरीद की किस्मत अच्छी थी क्योंकि उसी वर्ष (१५२५) उसके पिता हसन खां का स्वर्गवास हो गया और सुल्तान ने स्वतः ही दोनों परगनों की जागीरदारी उसे प्रदान कर दी।

आगरा से लौटते ही फरीद ने अपने सौतले भाई सुलेमान को जागीर से पदच्युत कर दिया और अब सुलेमान ने एक अन्य अफगान जागीरदार मुहम्मद सूर खान के पास जाकर शरण हासिल ले ली।मुहम्मद सूर खां चाहता था कि जागीर का बंटवारा दोनों भाइयों के मध्य हो जाए, दरअसल वह दोनों भाइयों के बीच विवाद पैदा कर खुद जागीरदारी हड़पने का इच्छुक था। जिसका विरोध फरीद द्वारा किया गया और उसने बिहार के लोदी सूबेदार बहार खां नुहानी के यहाँ नौकरी कर ली, शयद ऐसा कर के वह सूबेदार का समर्थन हासिल करना चाहता था।इसी बीच पानीपत का प्रथम युद्ध शुरू हो गया जिसमें इब्राहीम लोदी की मृत्यु हो गई। इसी मौके का फायदा उठाते हुए बहार खां नुहानी ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और सुल्तान मुहम्मद की उपाधि धारण कर ली।आगे एक बार जब ये दोनों शिकार पर थे तो फरीद ने एक शेर से युद्ध करते हुए शेर को अपनी तलवार के एक वार से ही ख़तम कर दिया, उसके इसी वीरता के कृत्य से प्रभावित होकर सुल्तान मुहम्मद ने उसे शेर खां की उपाधि से सम्मानित किया और साथ ही अपने अल्पव्यस्क पुत्र का शिक्षक भी नियुक्त कर दिया।

आगे चलकर कुछ ऐसी परिस्थितियों का निर्माण हुआ कि शेरखान को सुल्तान मुहम्मद के दरबार को भी छोड़कर मुगलों की सेवा में जाना पड़ा। दरअसल सुल्तान मुहम्मद,नुहानी कबीले से था और उसके दरबारी यह नहीं चाहते थे कि कोई और कबीले का व्यक्ति (शेरशाह, सूर कबीले से था) दरबार में वर्चस्व पा सके। इसलिए उसके दरबारियों ने उसे यकीन दिलाया की शेरशाह आगे चलकर महमूद लोदी का साथ देगा, यहमहमूद लोदी कोई और नहीं बल्कि इब्राहिम लोदी का भाई था और पानीपत के युद्ध के बाद लोदी साम्राज्य का उत्तराधिकारी भी था। इस षड्यंत्र का प्रभाव सुल्तान मुहम्मद पर पड़ा और उसने सहसराम और खवासपुर टांडा की जागीरदारी को शेरशाह और उसके सौतेले भाई सुलेमान में बांट देने का फरमान जारी कर दिया। ऐसी स्थिति में शेरशाह को मुगलों की सेवा में जाना पड़ा और पूरी जागीरदार पर सुलेमान का अधिकार हो गया।

शेरशाह मुगलों की सेवा में लगभग 15 माह तक रहा, साथ ही वह बाबर के साथ चंदेरी के अभियान में भी शामिल था। उसने इस दौरान मुगलों के सैन्य संगठन, उनकी रणनीतिक चालों तथा उनके तोपखाने की कार्यप्रणाली इत्यादि का अध्ययन किया, जो आगे चलकर उसके लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुए। हालांकि कुछ समय पश्चात मुगल बादशाह बाबर को शेरशाह की बढ़ती महत्त्वाकांक्षाओं के संदर्भ में कुछ संदेह उत्पन्न हो गया और अब वह शेरशाह को बंदी बनाना चाहता था, परंतु जैसे ही इस बात की भनक शेरशाह को लगी वह अपनी सैन्य टुकड़ी के साथ शिविर से भाग कर अपनी जागीर में वापस चला गया। वहां पहुंचकर सुल्तान मुहम्मद ने उसका स्वागत किया और उसे अपने अल्पव्यस्क पुत्रजलालुद्दीन का पुनः शिक्षक नियुक्त कर दिया। कुछ समय पश्चात ही सुल्तान मुहम्मद की मृत्यु हो गई और शेरशाह को उसके अल्पव्यस्कपुत्र का संरक्षक बना दिया गया। परंतु स्थिति में परिवर्तन तब आया जब साल 1529 ईस्वी में मुहम्मद खान लोदी बिहार पहुंच गया, दरअसल इब्राहिम लोदी की मृत्यु के पश्चात उसने सुल्तान की उपाधि धारण कर ली थी और खानवा की पराजय के बाद वह अपने सभी प्रमुख अफगान सरदारों और तीमारदारों के साथ बिहार आ पहुंचा था। उसने बिहार पहुंचकर एक बार पुनः मुगलों से संघर्ष करने के लिए अपनी सेना को तैयार किया, और मुगलों से 1529 में घाघरा की युद्ध में वह पराजित हुआ। शेरशाह को भी इस युद्ध में अनिच्छा पूर्वक भाग लेना पड़ा था,हालाँकि वह बाबर के विरुद्ध युद्ध नहीं चाहता था और यह बात वह बाबर तक पहुंचाने में सफल भी रहा कि वह युद्ध में अफगान दबाव के कारण आया है और वह युद्ध में शामिल नहीं होगा।इस बात पर एक बार पुनः उसे बाबर का समर्थन प्राप्त हो गया।आगे चलकर शेरशाह ने सुल्तान मुहम्मद के अल्पव्यस्क पुत्र के संरक्षक के रूप में शासन तथा सेना का पुनर्गठन कर अपने विश्वसनीय अधिकारियों को महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया।शेरशाह की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को देखकर नुहानी अफगान अमीर आशंकित हो उठे और उन्होंने शेरशाह को पराजित करने के लिए बंगाल के शासक नुसरत शाह से सहायता मांगी। अब तक जलालुद्दीनभी वयस्क हो चुका था और वह खुद शासन की बागडोर अपने हाथों में लेना चाहता था, अतः वह खुद भी इस षड्यंत्र में शामिल हो गया।नुसरत शाह जो स्वयं बिहार पर विजय हासिल करने के लिए लालायित था, ने बिहार को नियंत्रण में लेने के लिए आक्रमण किया, परंतु वह शेरशाह के हाथों पराजित हुआ (1529) और इस प्रकार बिहार पर शेरशाह की पूर्णता स्थापित हो गई। इस विजय के उपरान्त शेरशाह ने 'हजरत-ए-आला' की उपाधि धारण की थी।

3.4 शेरशाह द्वारा लड़े गए प्रमुख युद्ध

शेरशाह ने बंगाल के नुसरत शाह को पराजित करने के पश्चात मृत्युपरंत कई युद्ध लड़े, और अपनी सूझ-बूझ और योग्यता के दम पर उसने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करी, जिसमें असम, कश्मीर तथा गुजरात को छोड़कर सम्पूर्ण उत्तर भारत शामिल था। उसके साम्राज्य की सीमा पूर्व में सोनार गाँव, पश्चिम में गक्खर, उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण में विन्ध्य की श्रेणियों तक विस्तारित थी। उसके द्वारा लड़े गए कुछ प्रमुख युद्धों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

- **चुनार पर अधिकार और हुमायूँ से प्रारंभिक संघर्ष:** चुनार एक अभेद्य किला था और इसका महत्व इसलिए भी था क्योंकि इब्राहिम लोदी का खजाना चुनार किले में ही उसके सूबेदार ताजखान सारंगखानी की हिफाजत में वहां सुरक्षित था। हालांकि इब्राहिम लोदी की मृत्यु के बाद ताजखान ने बाबर के प्रति अपने निष्ठा व्यक्त की। कुछ समय पश्चात जब ताजखान की मृत्यु हो गई तो शेरशाह ने एनकेन-प्रकारेण उसकी विधवा लाड मलिका से विवाह कर लिया। इस प्रकार साल 1529 ईस्वी में खजाना और किला दोनों पर शेरशाह का अधिकार हो गया। हालांकि कुछ समय पश्चात हुमायूं का ध्यान चुनार दुर्गा की तरफ आकर्षित हुआ और उसने हिंदूबेग के नेतृत्व में एक सैन्य दल भेज कर चुनर पर अधिकार कर लेने का आदेश जारी कर दिया। हालांकि शेरशाह अभी भी चुनार पर अपना आधिपत्य छोड़ने को तैयार न था और उसने निष्ठा के साथ यह वचन दिया कि वह मुगलों के सामंत के रूप में वहां शासन करेगा। परंतु, हुमायूं ने उसकी मांग को अस्वीकार कर दिया और कुछ समय पश्चात व स्वयं चुनार की घेराबंदी के लिए पहुंच गया। परिस्थिति वश कुछ ऐसा हुआ कि हुमायूं चुनार पर अधिकार करता उससे पूर्व ही उसे समाचार मिला कि मोहम्मद जमान मिर्जा ने विद्रोह कर दिया है साथ ही गुजरात के बहादुर शाह ने भी चित्तौड़ पर घेरा डाल दिया है, ऐसी परिस्थिति में हुमायूं को आगरा वापस लौटना पड़ा और शेरशाह से कुछ सैन्य सहायता के बदले उसके चुनार पर अधिकार को बरकरार रहने दिया गया।

  अब जब हुमायूं कहीं अन्यत्र व्यस्त था ऐसे समय में शेरशाह ने प्रशासन संभाला और बंगाल की सीमा तक अपनी सीमाओं का विस्तार किया, हालांकि एक बार पुनः अफ़गानशक्ति कि इस महत्वाकांक्षा ने हुमायूं को सतर्क कर दिया और शीघ्र उसे बिहार और बंगाल पर चढ़ाई करने के लिए मजबूर किया। हुमायूं ने चुनार से शेरशाह के बेटे कुतुब खान को बंदी बना लिया और उसे 500 सैनिकों के निगरानी में आगरा भेज दिया। बाद में कुतुब खान वहां से भाग निकला और अपने पिता से जा मिला। इस बीच शेरशाह ने बंगाल पर आक्रमण कर दिया और बंगाल का शासक हुमायूं की शरण में जा पहुंचा, किसी तरह शेरशाह ने हुमायूं को बंगाल पहुँचने से रोके रखा और उसके बंगाल में पहुंचने से पूर्व ही उसने सारा खजाना रोहतास के दुर्ग में स्थानांतरित कर दिया। बंगाल पहुंचने के उपरांत हुमायूं ने शेरशाह से राजसी छत्र और सिंहासन सहित लूट का सारा माल लौटाने के लिए कहा, साथ ही हुमायूं चाहता था कि शेरशाह रोहतास का दुर्गउसे सौंप दे और बदले में चुनार या उसे जैसा कोई अन्य दुर्ग ले ले। परंतु शेर खान ने इसे अस्वीकार कर दिया और हुमायूं को जवाब भिजवायाकि वह बिहार सौंपने के लिए तैयार है परंतु बंगाल पर वह मुगल सामंत की हैसियत से शासन करेगा और वार्षिक करके रूप में 10 लाख तक हुमायूं को नजराना प्रदान करेगा। हुमायूं ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इसी बीच हिंदाल और कामरान के विद्रोह के कारण हुमायूं को वापस आगरा लौटना पड़ा और इस दौरान शेरशाह हुमायूं के लौटने के मार्ग को अवरुद्ध करने के लिए तैयार खड़ा था।

- **चौसा की लड़ाई (1539):** बंगाल से लौटते समय अफगान सेना ने मुग़ल सैन्य टुकड़ी पर आक्रमण कर दिया।इस युद्ध में शेर शाह सूरी ने उत्तर भारत पर नियंत्रण के लिए मुगल सम्राट हुमायूँ को चुनौती दी थी।यह लड़ाई वर्तमान बिहार के चौसा शहर के पास हुई। इस युद्ध में हुमायूँ की सेना की निर्णायक निर्णायक हार हुई और हुमायूँ को पीछे हटने के लिए मजबूर होना पड़ा।चौसा में शेर शाह सूरी की जीत ने भारत में एक प्रमुख शक्ति के रूप में उनकी स्थिति को मजबूत किया, इस जीत ने जहाँ एक ओर सम्पूर्ण उत्तर भरता में शेर शाह के प्रभुत्व को स्थापित किया, वहीं इसी के साथ अंततः सूर साम्राज्य की स्थापना भी हुई। अब शेरशाह ने अपने इसी नाम से अपना राज्याभिषेक करवाया और अपने नाम के सिक्के ढलवाये।
- **कन्नौज (बिलग्राम) की लड़ाई (1540):** चौसा में अपनी जीत के बाद, शेर शाह सूरी ने मुगल साम्राज्य के क्षेत्रों पर अपना नियंत्रण मजबूत करने की कोशिश की।कन्नौज की लड़ाई एक महत्वपूर्ण लड़ाई थी। शेर शाह सूरी की सेना नेउनके सीधे आदेश के तहत, हुमायूँ को निर्णायक रूप से हराया। यह लड़ाई इसलिए भी महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि इसके बाद उत्तर भारतीय क्षेत्रों पर शेर शाह का पूर्ण नियंत्रण जो जाना अवश्यम्भावी था। इस युद्ध में हार के उपरान्त हुमायूँ को भारत से भागने के लिए मजबूर होना पड़ा, और शेर शाह सूरी ने दिल्ली पर नियंत्रण कर लिया। इस प्रकार मुग़ल सम्राज्य पर अब शेरशाह का पूर्ण अधिकार हो गया और हुमायूँ को अगले 15 वर्ष तक देश से निष्काषित रहना पड़ा।इस युद्ध में विजय के पश्चात 10 जून 1540 को शेरशाह ने हिन्दुस्तान के पादशाह के रूप में विधिवत अपना राज्याभिषेक करवाया और भारत में द्वितीय अफगान साम्राज्य की नींव रखी।
- **कालिंजर विजय और शेरशाह की मृत्यु (1545)**: मालवा, सिंध, मुल्तान तथा राजस्थान विजय के पश्चात शेरशाह ने अपना अंतिम अभियान कालिंजर के चंदेलों के विरुद्ध किया था। उसने कालिंजर के दुर्ग को जीतने के उद्देश्य से ही बुदेलखंड में प्रवेश किया। उसने कालिंजर पर लगभग 1 वर्ष तक घेरा डाला रहा परन्तु उसे इसे जीतने में सफलता हाथ नहीं लगी। अंततः उसने निर्णय लिया की दुर्ग की दीवारों को बारूद से उड़ा दिया जाए। 22 मई 1545 को उसने दुर्ग की दीवारों को उड़ाने का आदेश दिया और वह स्वयं इस अभियान की अगुवाई कर रहा था, लेकिन इसी समय बारूद के ढेर में आग लग जाने से भयानक विस्फोट हुआ जिसकी चपेट में वह स्वयं भी आ गया। इस युद्ध के दौरान अफगान सैनिकों ने किले पर तो विजयश्री पा ली, परन्तु अपने नायक शेरशाह को न बचा सके और शेरशाह का स्वर्गवास हो गया।

3.5 शेरशाह का प्रशासन

शेरशाह सूरी ने लगभग 1540 ई. से 1545 ई. तक एक सम्राट के रूप में शासन किया। इतिहासकार विंसेट स्मिथ का मानना है कि-"यदि उसे कुछ अधिक समय मिला होता, तो हो सकता है कि उसने अपना ही राजवंश

स्थापित कर दिया होता, और तब भारतीय इतिहास के रंगमंच पर महान मुगलों को अवतरित होने का अवसर ही ना मिलता।"शेरशाह सूरी न केवल अपनी सैन्य उपलब्धियों के लिए बल्कि अपने उल्लेखनीय प्रशासनिक सुधारों के लिए भी प्रसिद्ध हैं। शेरशाहने अपने केंद्रीय और प्रांतीय प्रशासन को लगातार युद्धरत होने के बावजूद भी, राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को सुचारू रूप प्रदान किया था।उसका शासन प्रबंध केन्द्रीय, प्रांतीय और स्थानीय स्तर पर विभाजित था। आगे हम तीनों स्तरों के प्रशासन का विहंगावलोकन करेंगे।

3.5.1 केन्द्रीय प्रशासन: केन्द्रीय प्रशासन के अन्दर सम्राट सहित निम्न अधिकारी मौजूद थे-

सम्राट:- शेरशाह साम्राज्य में सर्वोच्च अधिकारी था और अपने पूर्ववर्ती सुल्तानों की भांति ही शेरशाह के राज्य की प्रवृत्ति भी केंद्रीकृत निरंकुशता की थी,हालांकि उसका शासन लोक कल्याणकारी था। शासन की संपूर्ण शक्ति राजा के हाथ में केंद्रित थी तथा राजा की सहायता के लिए मंत्री पद की व्यवस्था थी।हालांकि विभिन्न विभागों की नीतियों को वह स्वयं निर्धारित करता था। यह सत्य है कि वह व्यवहार में निरंकुश था लेकिन उसने अपने अफगान अमीरों का सहयोग तथा उनकी सेवा प्राप्त करने के लिए कुछ हद तक अफगान परंपराओं का भी ध्यान रखा।शेरशाह प्रशासन की व्यक्तिगत रूप से देखरेख करने के लिए अक्सर अपने साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों का दौरा भी किया करता साथ ही प्रत्येक विभाग में जाकर स्वयं निरीक्षण करता और छोटी से छोटी रिपोर्ट को भी स्वयं पढता था। शेरशाह के पूर्वर्ती शासकों की ही भाति इसके दरबार में भी 4 मुख्य मंत्री तथा कुछ अन्य मंत्री उपस्थित थे। सम्राट इन मंत्रियों को कभी भी पदच्युत करने में सक्षम था और ये मंत्री भी सम्राट के सलाहकार न होकर उसके कर्मचारी थे, जिनका कार्य सम्राट के आदेशों का पालन करवाना होता था।

- **दीवान-ए-वजारत:** इस पद की स्थिति वर्तमान प्रधानमंत्री के समान थी। इस विभाग के प्रमुख को वजीर कहा जाता था, जिसका मुख्य कार्य आय और व्यय का हिसाब-किताब रखना हुआ करता था। इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर वह अन्य विभाग के मंत्रियों का निरीक्षण भी कर सकता था। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि शेरशाह स्वयं भी प्रतिदिन आय और व्यय का हिसाब देखा करता था।
- **दीवान-ए-अर्ज:** इस विभाग का प्रधान आरिज-ए-मुमालिक कहलाता था। वस्तुतः वह सेना का मंत्री होता था न की सेनापति। चूंकि सम्राट स्वयं सेनापति था, इस वजह से इस अधिकारी का प्रमुख कार्य सैन्य संगठन, भर्ती और रसद इत्यादि की पूर्ति से संबंधित था। इसके अतिरिक्त वह सेना वेतन इत्यादि का कार्य भी देखा करता था।
- **दीवान-ए-रसालत:** यह मंत्री पद वर्तमान के विदेश मंत्री के समान था। वह विदेश से आए राजदूतों का स्वागत करता और अन्य राज्यों से पत्र व्यवहार करना भी उसका मुख्य कार्य था।कभी कभी दान विभाग का कार्य भी उसे सौंप दिया जाता था।

- **दीवान-ए-इंशा:** इस विभाग के प्रधान को दबीर-ए-ख़ास कहा जाता था। इसका मुख्य कार्य साम्राज्य के भीतर प्रत्येक प्रकार के पत्र व्यवहार, आदेश इत्यादि का निर्गमन करना था।

इन चार मुख्य मंत्रियों के अलावा केंद्रीय प्रशासन में दो मुख्य विभाग और भी थे। इनमें पहला विभाग था दीवाने-ए-काजी, जिसका प्रमुख अधिकारी मुख्य काजी होता था जो राजा के बाद न्याय के मामले में दूसरे स्थान पर था। और दूसरा अधिकारी था दीवान ए बरीद, जो कि गुप्तचर विभाग का प्रधान था और डाक व्यवस्था की देखरेख भी उसी के हाथों में थी। इसका मुख्य कार्य साम्राज्य के विभिन्न भागों से गुप्तचरों द्वारा प्राप्त रिपोर्टों को राजा राजा तक शीघ्र पहुंचना था।

3.5.2 प्रांतीय प्रशासन: शेरशाह सूरी के प्रांतीय प्रशासन के बारे में सूचनाओं की सीमितता है। इतिहासकार कानून गो का मानना है की शेरशाह के अधीन सबसे बड़ी प्रशासनिक इकाई सरकार (जिला) थी, आगे वे बताते हैं कि शेरशाह की प्रांतीय व्यवस्था का आदर्श बंगाल था, उसने यहां पूर्व में चली आ रही प्रांत व्यवस्था को छोड़ दिया और बंगाल को 19 सरकारों में विभाजित किया था। हालांकि डॉक्टर परमात्मा शरण का मानना है कि कुछ ऐसे असंदिग्ध साक्ष्य उपलब्ध हैं जिनके आधार पर स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है की शेरशाह का राज्य नियमित प्रांतों में विभाजित था।अब प्रश्न यह उठता है कि शेरशाह ने बंगाल में ऐसा विभाजन क्यों किया होगा। संभवतः इसके पीछे एक प्रमुख कारण यह है की बंगाल केंद्र से बहुत दूर था और वहां के प्रचुर संसाधनों को देखते हुए उस क्षेत्र के सूबेदार केंद्रीय शासन से बगावत पर उतर आते होंगे। दूसरा कारण यह था कि जब से शेरशाह तख्त पर बैठा था तब से अफगान सरदारों को कोई पुरस्कार न मिलने के कारण उनके मध्य अत्यधिक असंतोष की भावना फैल चुकी थी। उन सब को संतुष्ट करने के लिए शेरशाह ने यह अनूठा तरीका अख्तियार किया और सरकारों का पुनर्गठन कर प्रत्येक सरकार को एक अफगान सरदार के हवाले कर दिया। इसका फायदा यह हुआ कि जहां अब एक तरफ अफगान सरदार संतुष्ट हुए वहीं सरकारों का आकार घट जाने के कारण विद्रोह की संभावना भी न्यूनहो गई। यह सारे सरकार अपने रोजमर्रा के प्रशासन में एक दूसरे से स्वतंत्र थे, हालांकि शेरशाह यह कभी नहीं चाहता था कि वह प्रांतों का विघटन करे, बल्कि वह तो इसके उलट राजनीतिक, आर्थिक एकता का पक्षधर था इसी कारण उसने काजी फजीहत को'अमीन-ए-बंगाल' (बंगाल का वायसराय) नियुक्त किया था। इस पूरे प्रांत की रक्षा का भार उसने अमीन को ही सौंपा था। शेरशाह के शासनकाल में प्रांत के उच्चतर अधिकारियों को हकीम, अमीन या फौजदार कहा जाता था। हालांकि प्रांतों के आधार पर उनके अधिकारों में समानता नहीं थी।उदाहरण के लिए पंजाब के हैबत खान को एक लाख की फौज तथा जागीर बांटने का अधिकार था तो वहीं मालवा के सूबेदार शुजात खान के पास केवल 12000 की फौज थी। शेरशाह सूरी स्वयं भी इन सूबेदार के ऊपर कड़ा नियंत्रण रखता था और इस बात का विशेष ध्यान रखता था कि उसके निर्देशों की अवहेलना न की जा सके। आगे हमें शेरशाह के उत्तराधिकारियों के समय भी सूबेदार और उनकी नियुक्तियों का उल्लेख मिलता है। अबुल फजल भी अपनी रचना में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं करता कि अकबर ने ही सबसे

पहले प्रांतों का निर्माण किया था, इसलिए प्रांतों के खात्मे के बारे में इतिहासकार कानून गो का कथन कसौटी पर खरा नहीं उतरता है।

इस प्रकार हमें यह ज्ञात होता है कि शेरशाह के समय प्रान्तों के प्रशासन और स्वरुप में एकरूपता का आभाव था। परन्तु उन पर शेरशाह का पूर्ण नियंत्रण था, इस बात की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि उसके समय में प्रान्तों में कोई विद्रोह नहीं हुए। प्रत्येक प्रांत 'सरकारों' में विभाजित था और प्रत्येक सरकार का विभाजन 'परगने' के रूप में होता था।परगने के अंतर्गत गाँव शामिल थे जो कि प्रशासन की सबसे निचली इकाई थे।

- **सरकार प्रशासन:** प्रान्तों को'सरकार' में विभाजित किया गया था।प्रत्येक सरकार में शासन की दोहरी व्यवस्था की गई थी। सरकार के स्तर पर प्रशासन सँभालने के लिए दो अधिकारी'शिकदार-ए-शिकदारान' और 'मुंसिफ-ए-मुंसिफान'नियुक्त किये जाते थे।सामान्यतः सैन्य योग्यता रखने वाले किसी व्यक्ति को मुख्य शिकदार नियुक्त किया जाता था। उसका कार्य कानून व्यवस्था को लागू करना होता था, साथ ही वह नागरिक प्रशासन का प्रहरी और फौजदारी मामलों को भी निपटाता था।मुंशिफ का कार्य मुख्यतः मालगुजारी वसूलना और उसका हिसाब किताब रखना होता था। संभवतःवह कुछ दीवानी मामलों को भी निपटाता था और उनकी सुनवाई के लिए क्षेत्र में दौरे भी करता था। शेरशाह स्वयं इन पदों पर अमीरों की नियुक्तियां किया करता था।
- **परगना प्रशासन:** परगना स्तर पर भी सरकार की ही तर्ज पर प्रशासनिक संगठन मौजूद था। हालांकि इनकी सहायता के लिए कुछ अधीनस्थ अधिकारियों की भी व्यवस्था की गई थी। परगना प्रशासन के स्तर पर शेरशाह द्वारा महत्वपूर्ण सुधार किए गए थे, उसने यहां न्याय को प्रभावशाली बनाकर जनता के सुख सुविधा का विशेष ध्यान रखा था। परगना अधिकारियों की नियुक्तियां भी शेरशाह स्वयं करता था जिससे केंद्रीय स्तर पर नियंत्रण बढ़ गया था और सभी अधिकारी उसके प्रति जवाबदेह भी होते थे।
- **ग्राम प्रशासन:** यह प्रशासन की सबसे छोटी इकाई हुआ करती थी।ग्राम प्रशासन के क्षेत्र में शेरशाह सूरी ने प्रशासन को स्थानीय लोगों के सुपर्द कर दिया था। प्रत्येक गांव में मुखिया और पटवारी हुआ करते थे जो कि स्थानीय प्रशासन की व्यवस्था सुचारू रूप से संचालित करते थे। पटवारी का कार्य किसानों और उनकी जोतों के अभिलेखों को रखना होता था जबकि मुकद्दम या मुखिया का मुख्य कार्य उस गाँव में आवासित जनसँख्या से राजस्व वसूल कर उसे शासन को सौंपना होता था।

3.5.3 न्यायिक व्यवस्था: शेरशाह के न्यायिक सुधारों का उद्देश्य कानूनी प्रणाली को अधिक कुशल और सुलभ बनाना था। शेरशाह ने अपील की एक प्रणाली शुरू की, जहाँ निचली अदालत के फैसलों की उच्च अधिकारियों द्वारा समीक्षा की जा सकती थी। उसने न्यायिक प्रणाली को पदानुक्रमिक बनाया,जिसमें स्थानीय स्तर पर मुंसिफऔर उच्च स्तर पर काजी (न्यायाधीश) द्वारा न्याय प्रदान किया जाता था। इसके साथ ही उसने इस बात को भी सुनिश्चित किया

कि न्यायाधीश निष्पक्ष हों और समस्त प्रजा कानून का पालन करे।वह न्याय को दृढ़ता और निष्पक्षता से लागू करवाता था, साथ ही उसने 'सुल्ताननुल अदल' की उपाधि भी धारण कर रखी थी। उसकी न्यायप्रियता को लेकर 'अब्बास खां' लिखता है कि-"यदि उसके साम्राज्य में एक वृद्ध महिला भी अपने सिरर पर स्वर्ण-आभूषणों से भरी टोकरी रख कर यात्रा पर निकलती है, तो किसी चोरया लुटेरे में इतनी हिम्मत नहीं कि वह बुढ़िया के आसपास के फटक सके, क्योंकि उन्हें मालूम है कि शेरशाह इसके लिए कितना बड़ा दंड दे सकता है।" इसके साथ ही शेरशाह ने अपराध के मामलों में स्थानीय उत्तरदायित्व के सिद्धांत को भी लागू कर रखा था। इसके अंतर्गत यह व्यवस्था थी की स्थानीय अधिकारियों की यह जिम्मेदारी होती थी कि वे अपने अपने क्षेत्रों में शांति कायम रखें। यदि कोई अपराधी नहीं पकड़ा जाता था गाँव के मुकद्दम को गिरफ्तार कर उससे क्षतिपूर्ति की राशि हासिल की जाती थी।

3.5.4 सैन्य प्रशासन: शेर शाह ने सैन्य संरचना को पुनर्गठित किया, उसने अपनी सेना को पैदल सेना, घुड़सवार सेना और तोपखाने की इकाइयों में विभाजित किया। शेरशाह ने भर्ती और आपूर्ति की एक मजबूत प्रणाली स्थापित की, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि उसकी सेना अच्छी तरह से सुसज्जित और कुशलतापूर्वक प्रबंधित हो। शेरशाह ने इक्तादारीप्रणाली के माध्यम से भी विभिन्न क्षेत्रों में सैन्य कमांडरों (इक्ता धारकों) को नियुक्त किया। ये कमांडर अपने अपने क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के लिए जिम्मेदार थे, और उनके पास अपने निर्धारित क्षेत्रों में प्रशासनिक कर्तव्य भी थे। शेरशाह ने आलाउदद्दीन खिलजी द्वारा लागू घोड़े दागने की प्रथा को भी अपनाया और इसे कड़ाई से जारी रखा।

3.5.5 अवसंरचनात्मक निर्माण और सार्वजनिक कार्य: शेरशाह को इतिहास में भवन निर्माता और मार्ग निर्माता के रूप में भी जाना जाता है। उसके द्वारा बनाई गई चार बड़ी सड़कें या राजमार्ग आज भी प्रसिद्ध हैं।जिसमें पहला राजमार्ग बंगाल के सोनार गांव से आगरा होते हुए दिल्ली, लाहौर और सिंध तक (सड़क-ए-आजम या ग्रांड ट्रक रोड) जाता था। दूसरा राजमार्ग आगरा से मांडू तक, तीसरा राजमार्ग आगरा से जोधपुर होते हुए चित्तौड़ तक और चौथा राजमार्ग लाहौर से मुल्तान तक जाता था।शेरशाह ने न केवल इन सड़कों का निर्माण करवाया बल्कि इन सड़कों के दोनों तरफ फलदार और छायादार वृक्ष लगवाए, साथ ही उसने इन सड़कों पर कुछ नियमित अंतराल पर सरायों का निर्माण करवाया जिनकी कुल संख्या 1700 के आस पास थी।इन सरायों में हिंदुओं तथा मुसलमानों के लिए अलग-अलग ठहरने और भोजन करने की व्यवस्था थी। साथ ही ये सराय डाक स्थानांतरण में भी सहायक थे, चूंकि प्रत्येक सराय पर डाक के आबाध आवागमन के दो घोड़े मौजूद रहते थे। शेरशाह सूरी के इन कार्यों से जहां आम प्रजा तो लाभान्वित हुई ही वहीं इससे वाणिज्यिक क्रियाकलापों को भी अत्यधिक प्रोत्साहन मिला।

शेरशाह सूरी ने एक मानकीकृत मुद्रा प्रणाली की भी शुरुआत की थी, उसने सिक्कों की ढलाई में सुधार करते हुए मुख्य रूप से दो प्रकार के सिक्के चलावाए, जिसमें पहला सिक्का चांदी का रुपया (178 ग्रेन) था और दूसरा तांबे का दाम (380 ग्रेन) था। उसने इन मुद्राओं की ढलाई के लिए 23 टकसालों का निर्माण करवाया था, जिनमें से कुछ

प्रमुख टकसालें आगरा, ग्वालियर, उज्जैन, लखनऊ, सासाराम तथा सिंध इत्यादि में अवस्थित थी। इन टकसालों की स्थिती के माध्यम से शेरशाह के साम्राज्य की सीमाएं भी रेखांकित की जा सकती हैं।

3.6 शेरशाह की भू-राजस्व व्यवस्था

शेरशाह सूरी की भूमि राजस्व प्रणाली उसके सबसे उल्लेखनीय प्रशासनिक सुधारों में से एक थी, जिसका उद्देश्य कर संग्रह की अधिक कुशल और न्यायसंगत पद्धति का निर्माण करना था। शेरशाह जब युवा था तब से ही उसे अपने पिता की जागीर का प्रबंधन करके हुए भू राजस्व प्रशासन का प्रशिक्षण मिल चुका था। जागीर संबंधी नीति के नियामक सिद्धांतो में उसने सर्वप्रथम प्रजा की भलाई को अधिक स्थान दिया। इसी कारण उसके शासनकाल में भू राजस्व की मात्रा साधारण होती थी, किंतु एक बार भू राजस्व का निर्धारण हो जाने के बाद वह उसकी वसूली पूरी करता था। इसके साथ ही वसूली के शुल्क के रूप में जमीदार को उनका हिस्सा अवश्य दिया जाता था। उसने अपनी रैयत को मापन (जरीब) और बटाई दोनों विकल्प उपलब्ध कराए थे, साथ ही उसने किसानों को यह भी छूट दी थी कि वे राजस्व का भुगतान नकद या माल किसी भी रुप में अपनी स्वेच्छा से कर सकते हैं। उसने किसानों के साथ लिखित-कबूलियात की और मापनशुल्क या सर्वेक्षण शुल्क (जरीबाना) तथा कर वसूली शुल्क (मुहासिलाना) दोनों को नियत कर दिया था। साथ ही बिचौलियों को यह शख्त निर्देश दिया था कि यदि वह अपराधी पाए गए तो उनके खिलाफ कड़ी कार्रवाई की जाएगी। इस मामले में शेरशाह की राजस्व नीतियाँ अभिनव थीं और भारतीय उपमहाद्वीप की प्रशासनिक प्रथाओं पर उनका स्थायी प्रभाव पड़ा।

शेरशाह ने अपने साम्राज्य में वास्तविक उपज के आधार पर मूल्यांकन को तरजीह दी जो पहले की प्रणालियों के विपरीत भूमि की वास्तविक उपज पर आधारित थी। उसने स्थिरता और निष्पक्षता सुनिश्चित करने के लिए अपने साम्राज्य में राजस्व संग्रह प्रक्रिया को मानकीकृत करने का प्रयास भी किया। इसमें भूमि को मापने और उसकी उपज का आकलन करने के लिए प्रक्रियाएँ विकसित करना शामिल था।शेरशाह ने भूमि की उत्पादकता का सटीक आकलन करने के लिए एक व्यापक भूमि सर्वेक्षण किया। उसने भूमि को मापने (मापन के लिए 32 अंकों वाले सिकंदरी गज और सन की डंडी प्रयुक्त की) और इसकी गुणवत्ता और उत्पादकता के आधार पर इसे वर्गीकृत करने के लिए कुशल सर्वेक्षणकर्ताओं और विशेषज्ञों को भी नियुक्त किया।भूमि को उसकी उर्वरता और उपज क्षमता के आधार पर विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया गया था। इस वर्गीकरण से विभिन्न प्रकार की भूमि के लिए उचित राजस्व दरों को निर्धारण करने में मदद मिली।शेरशाह ने भूमि के लिए माप की इकाइयों का भी मानकीकरण किया। उन्होंने भूमि को मापने के लिए मानक इकाइयों के रूप में बीघा का उपयोग शुरू किया, जिससे राजस्व के एक समान मूल्यांकन और संग्रह में मदद मिली। इस क्षेत्र में उसका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान फसल दरों की सूची को लागू किया जाना था।फसल दर को तैयार करने का तरीका भी आसान था, सर्वप्रथम मौसमी आधार पर मुख्य फसलों की पैदावार को एक-एक बीघा

अच्छी,मझली और खराब भूमि के पैदावार के आंकड़ों के मुताबिक प्रति बीघा के आधार पर एकत्रित कर लिया जाता था, उसके बाद उसकी औसत निकालकर उसका तीसरा हिस्सा (1/3) शासन की मांग मान लिया जाता था।

राजस्व निर्धारण के लिए शेरशाह ने 'ज़ब्त' प्रणाली शुरू की, जो राजस्व निर्धारण में एक बड़ा सुधार था। इस प्रणाली के तहत, राजस्व एक निश्चित राशि के बजाय भूमि की वास्तविक उपज के आधार पर तय किया जाता था। इससे राजस्व का अधिक यथार्थवादी और निष्पक्ष मूल्यांकन संभव हुआ।राजस्व की गणना उपज के प्रतिशत के आधार पर की जाती थी। राजस्व की दर भूमि की गुणवत्ता और फसल के प्रकार के आधार पर भिन्न-भिन्न होती थी। उदाहरण के लिए, चावल या गेहूं जैसी अधिक मूल्यवान फसलें पैदा करने वाली भूमि का मूल्यांकन कम उत्पादक भूमि की तुलना में अधिक दरों पर किया जाता था। सामान्यतया भू-राजस्व अनाज के रूप में ही देय था, किन्तु उसे बाजार की दर पर बेचकर नकद में परिवर्तित किया जा सकता था। राज्य भी इसे प्रोत्साहित करता था और किसान अपने लगान का भुगतान नकद भी कर सकते थे।इसके साथ ही कृषकों को जरीबाना तथा मुहासिलाना कर भी राज्य को देना होता था जिसकी दर क्रमशः भू-राजस्व की 2.5% और 5% थी।इस प्रणाली ने जहाँ राजस्व संग्रह प्रक्रिया को सरल बनाया वहीं भ्रष्टाचार के अवसरों को भी न्यून किया। इन सबके अतिरिक्त शेरशाह ने भूमि-सुधार को भी प्रोत्साहन दिया, उसने अकाल या सूखा पड़ने की दशा में अपनी रैयत को लगान माफी दी, साथ ही संकट के समय कुँवा खोदने के लिए किसानों को धन उपलब्ध करवाया तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए सिंचाई हेतु नहरों का भी निर्माण करवाया।किसानों की भलाई के लिये शेरशाह ने जो विनियम बनाये थे उनके बारे में अब्बास खां कुछ यूँ कहता है- 'उसका विजयी सैन्य दल लोगों की खेती-बाड़ी न उजाड़ दे; इसलिए वह जब भी सेना के साथ कूच करता तो स्वयं खेती-बाड़ी की हालत देखता जाता था, साथ ही वह अपने घुड़सवारों को भी चारों ओर फैला देता था ताकि जवान, किसानों के खेतों का अतिक्रमण न कर पाएं। जो भी व्यक्ति उसके आदेशों का उल्लंघन करता वह उसे कड़ा दंड देता। और इस बात का सैनिकों पर भी चमत्कारिक प्रभाव हुआ।" हालाँकि चूंकि उस समय राजस्व का प्रमुख स्त्रोत कृषि पैदावार ही थी, इसलिए उसकी यह चिंता भी स्वाभाविक ही थी।

3.7 शेरशाह के उत्तराधिकारी एवं सूर वंश का पतन

सन 1545 में शेरशाह कीमृत्युके उपरान्त आगामी एक दशक के अंतर्गत ही सूर साम्राज्य का अवसान हो गया। अफ़सोस है कि शेरशाह के उत्तराधिकारी उतने योग्य नहीं थे की वे शेरशाह की विरासत को संभाल सकें। सूरवंश की वंशावली कुछ इस प्रकार है- शेरशाह > इस्लाम शाह (1545-53) > फिरोजशाह (1553) >मुहम्मद आदिलशाह (1553-54 ई.)>सिकन्दरशाह (1554-55ई.)

शेरशाह ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में अपने बड़े पुत्र आदिलशाह को नामजद किया था। लेकिन उसकी मृत्यु के पश्चात अफगान सरदारों ने उसके दूसरे पुत्र जलालखां को 'इस्लाम शाह' के नाम से सिंहासन पर बैठाया।इस्लाम शाह की मृत्यु के बाद गददी के लिए एक भयावाह संघर्ष छिड़ा जिसने हमेशा के लिए सूर वंश के सूर्य

को अस्त कर दिया।उसके पश्चात् उसका 12 वर्षीय पुत्र फिरोजशाह को शासक बनाया गया, किन्तु उसके दो दिन बाद ही उसके मामा मुबारिज खां ने उसकी हत्या कर दी और स्वयं मुहम्मद आदिलशाह नाम से सिंहासन संभाल लिया। आदिलशाह के बहनोई अहमद खां ने आगरा पर अधिकार करके 1554 ई. में स्वयं सिकन्दरशाहके नाम से राज्य हथिया लिया। इस स्थिती को लाभ के अवसर में देखते हुए हुमायूं ने पंजाब पर चढ़ाई कर दी उसने सिकंदर शाह सूर को 22 जून, 1555 ई. को सरहिन्द के युद्ध में पराजित किया और लाहौर, आगरा तथा दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया। इस प्रकार भारत में सूर वंश का पतन हुआ एवं मुगलवंशीय शासन की पुनर्स्थापना हुई।

3.8 सारांश

अब तक आपने शेरशाह सूरी से सम्बंधित सारी जानकारी ऊपर प्राप्त कर ली है, यह बात सत्य है किशेरशाह सूरी का अफ़गान साम्राज्य अल्पकालिक था लेकिनभारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास में यह एक स्वर्णिम अध्याय के रूप में अंकित है। शेर शाह सूरी के शासनकाल ने प्रभावी शासन और सैन्य रणनीति की क्षमता का अप्रतिम उदाहरण पेश किया है। शेरशाह के अलग-अलग क्षेत्रों को एकजुट करने, प्रशासनिक प्रथाओं में सुधार करने और बुनियादी ढाँचे को बढ़ाने की अद्भुत क्षमता ने एक मज़बूत राज्य का निर्माण किया था जो उनके जीवनकाल से कहीं आगे तक अपनी छाप छोड़ने में सक्षम रहा है।

शेरशाह की अभिनव नीतियों, जिसमें कराधान, मुद्रा सुधार और सड़क निर्माण के लिए उनका दूरदर्शी दृष्टिकोण शामिल है; ने शासन के लिए नए मानक स्थापित किए और सम्पूर्ण उत्तर भारत में एक स्थायी विरासत छोड़ी। उनके योगदान ने भविष्य के शासकों के लिए भी मार्ग प्रशस्त कियाजिसमें मुगल सम्राट अकबर भी शामिल थे, जिन्होंने उनके सुधारों को आगे बढाया और उन्हें अपने प्रशासनिक ढाँचे में शामिल किया। यह बात सत्य है कि साल 1555 ई. में अंततः पुनरुत्थानशील मुगल राजवंश द्वारा सूरी साम्राज्य का अंत कर दिया गया लेकिन यह भी उतना ही सच है कि शेर शाह द्वारा लागू की गई स्थायी संस्थाओं, प्रथाओंतथा उनकी सैन्य और प्रशासनिक रणनीतियों में दूरदर्शिता के कारण आज भी शेरशाह सूरी का अफगान साम्राज्य भारत के ऐतिहासिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली युग बना हुआ है।

3.9 तकनीकी शब्दावली

- बरीद- गुप्तचर
- अभेद्य- जिसे जीता न जा सके या जिसका भेद न किया जा सके।
- रैयत- प्रजा के लिए प्रयुक्त शब्द
- मुकद्दम- गाँव का मुखिया

3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्न

प्रश्न: शेरशाह की प्रारंभिक शिक्षा कहाँ पूर्ण हुई?

(1) बनारस (2) लखनऊ (3) पटना (4) जौनपुर

प्रश्न: शेरशाह ने किस मुग़ल शासक से युद्ध किया?

(1) बाबर (2) अकबर (3) हुमायूँ (4) शाहजहाँ

प्रश्न: शेरशाह की मृत्यु किस युद्ध में हुई?

(1) देवराया (2) तबरहिंद (3) चौसा (4) कालिंजर

प्रश्न: शेरशाह ने किसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था?

(1) इस्लाम शाह (2) फिरोजशाह (3) आदिलशाह(4) हसन खान

प्रश्न: किस युद्ध में हुमायूँ ने दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया था?

(1) तबरहिंद (2) धरमत (3) बिलग्राम (4) सररहिंद

3.11 संदर्भग्रंथसूची

- वर्मा, हरीशचन्द्र, (2008), मध्यकालीन भारत: 1540-1761, हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय
- हबीब, इरफ़ान, (2005), मुगल साम्राज्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
- खान, एम. ए. (2015),शेर शाह सूरी: द फॉरगॉटन मुगल, पेंगुइन बुक्स
- रिचर्ड्स, जे. एफ. (1993), मुगल साम्राज्य, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
- https://www.eshiksha.mp.gov.in/mpdhe/pluginfile.php/54947/mod_resource/content/2
- https://www.mmcmodinagar.ac.in/bridge-library/pdf/history/B.A-II-Year-A-216-Dr.K.K-Sharma-27-07-2020-sher-Shaha-suri.pdf

3.12 निबंधात्मकप्रश्न

प्रश्न: शेरशाह सूरी के प्रारंभिक जीवन पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

प्रश्न: शेरशाह सूरी की प्रशासनिक व्यवस्था पर टिप्पणी कीजिए।

प्रश्न: शेरशाह सूरी की भू-राजव्यवस्था का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

प्रश्न: क्या आप इस बात से सहमत हैं कि अपनी प्रशासनिक नीतियों और भू-राजस्व व्यवस्था के चलते शेरशाह, अकबर का अग्रगामी था?

इकाई चार- अकबर उसकी धार्मिक एवं राजपूत नीति तथा जहांगीर

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 बादशाह अकबर की धार्मिक नीति

4.3.1 भारत में अकबर से पूर्व धार्मिक सहिष्णुता तथा धार्मिक-सांस्कृतिक समन्वय

4.3.2 अकबर का उदार धार्मिक परिवेश

4.3.3 उलेमा वर्ग के राजनीतिक प्रभाव पर नियन्त्रण

4.3.4 धार्मिक उदारता की नीति

4.3.4.1 धार्मिक उत्पीड़न की नीति का परित्याग

4.3.4.2 अकबर की विचारधारा पर सूफ़ी प्रभाव

4.3.4.3 अकबर की विचारधारा पर हिन्दू प्रभाव

4.3.4.4 जैनों, पारसियों, ईसाइयों तथा अन्य धर्मावलम्बियों का प्रभाव

4.3.4.5 तौहीद-ए-इलाही अथवा दीन-ए-इलाही

4.4 अकबर की राजपूत नीति

4.4.1 राजपूताने में प्रारम्भिक विजय तथा राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध

4.4.2 चित्तौड़ विजय तथा महाराणा प्रताप का प्रतिरोध

4.4.3 अकबर की विजयों तथा उसके प्रशासन में राजपूतों का योगदान

4.4.4 मुगल-राजपूत सामाजिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान

4.5 बादशाह जहांगीर

4.5.1 जहांगीर द्वारा अकबर की नीतियों का अनुगमन

4.5.2 जहांगीर के शासन में नूरजहां का प्रभाव

4.5.3 बादशाह के रूप में जहांगीर का आकलन

4.6 सारांश

4.7 पारिभाषिक शब्दावली

4.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

व्यावहारिक दृष्टि से मुगल साम्राज्य का संस्थापक अकबर कहा जा सकता है। भौगोलिक भिन्नताओं के क्षेत्रों में विभिन्न जातियों, धर्मों और संस्कृतियों के समूहों वाले भारत देश को राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से एकसूत्र में बांधने का जो सफल प्रयास अकबर ने किया था, उसके लिए हम उसे राष्ट्रीय शासक कह सकते हैं। अकबर की समन्वयवादी विचारधारा और उसकी उदार धार्मिक नीति मध्यकालीन विश्व इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ने में सफल रही है। जिस काल में यूरोप में धर्म के नाम पर विभिन्न मतावलम्बी एक-दूसरे को ज़िन्दा जला रहे थे और जिस काल में अन्य धर्मावलम्बियों का उत्पीड़न एक धार्मिक कर्तव्य माना जा रहा था, उस काल में अकबर ने अपने साम्राज्य में सभी धर्मों का आदर किया और सभी धर्मावलम्बियों को अपने-अपने धर्म का अनुपालन व उसका विकास करने के खुली छूट दी। उसके द्वारा प्रतिपादित मत - तौहीद-ए-इलाही अथवा दीन-ए-इलाही धार्मिक समन्वय की अनूठी मिसाल है।

अकबर की राजपूत नीति मध्यकालीन मुस्लिम शासकों में सबसे उदार और व्यावहारिक थी। उसने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए अधिकांश राजपूतों को अपनी आधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया किन्तु उसके बाद उसने उन्हें अपनी आधीनता में व्यावहारिक दृष्टि से स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन करने का अधिकार देकर सदैव के लिए अपना मित्र और अपने साम्राज्य का हितैषी बना लिया। राजपूतों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसने राजपूत-मुगल मैत्री को एक नया आयाम दिया। अकबर के साम्राज्य विस्तार हेतु अभियानों, प्रशासनिक एवं आर्थिक सुधारों, एक गंगा-जमुनी संस्कृति के विकास और भारत को एकसूत्र में बांधने में तथा दीर्घकाल तक उसे राजनीतिक स्थिरता प्रदान करने में राजपूतों की सक्रिय और सृजनात्मक भूमिका रही।

शिथिल एवं विलासी जहांगीर के सफल सैनिक अभियानों में मुख्य भूमिका शहज़ादे खुर्रम ने निभाई थी और उसके प्रशासन में तथा उसके काल की राजनीतिक गतिविधियों में और भवन निर्माण में उसकी बेगम नूरजहां की प्रधान भूमिका थी किन्तु जहांगीर ने अपने पिता की राजनीतिक, प्रशासनिक एव सांस्कृतिक विरासत को यथा सम्भव बनाए रखा। उसके काल में चित्रकला अपने शिखर पर पहुंच गई। उपलब्धियों की दृष्टि से हम उसे एक मध्यम स्तर का शासक कह सकते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य अकबर महान की धार्मिक नीति तथा राजपूत नीति के भारत के राजनीतिक, प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभावों से तथा बादशाह जहांगीर की एक शासक के रूप में उपलब्धियों व दुर्बलताओं आपको परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- अकबर से पूर्व धार्मिक एवं सांस्कृतिक समन्वय के प्रयास।

2. अकबर द्वारा धार्मिक संकीर्णता की नीति का परित्याग।

3. अकबर के धार्मिक प्रयोग।

4. मुगलों के प्रबलतम शत्रु राजपूतों को अपना सबसे बड़ा मित्र बनाने में अकबर की सफलता।

5. मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने में राजपूतों का योगदान।

6. जहांगीर के शासन में नूरजहां का प्रभाव।

7. जहांगीर की उपलब्धियां तथा उसकी असफलताएं।

4.3 बादशाह अकबर की धार्मिक नीति

4.3.1 भारत में अकबर से पूर्व धार्मिक सहिष्णुता तथा धार्मिक–सांस्कृतिक समन्वय

प्राचीन भारत में सामान्यतः धार्मिक सहिष्णुता का वातावरण रहता था और विभिन्न मतावलम्बी बिना किसी कठिनाई के अपने-अपने धर्म व अपनी-अपनी विचारधारा के अनुरूप अपना जीवन व्यतीत कर सकते थे। इस काल में सांस्कृतिक आदान-प्रदान एक सामान्य प्रक्रिया थी। हज़ारों वर्षों तक भारत में विदेशी जातियों का आगमन होता रहा और उनमें से अनेक ने अपनी सत्ता स्थापित कर भारत में अपना स्थायी ठिकाना बना लिया किन्तु उन्होंने अपने जातीय संस्कारों और मूल सांस्कृतिक मूल्यों तथा आस्थाओं का भारतीय संस्कृति और धर्म में समाहित कर दिया। आठवीं शताब्दी में पहली बार मुस्लिम अरब आक्रमणकारियों से भारत में विधिवत धार्मिक उत्पीड़न की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। दसवीं शताब्दी के अन्त से महमूद गज़नवी के आक्रमणों ने मन्दिरों व मूर्तियों के विनाश तथा विधर्मियों के संहार का एक नया युग प्रारम्भ किया जिसे 12 वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में उत्तर भारत में तुर्क शासन की स्थापना ने गैर-मुस्लिमों के लिए और भी अधिक कष्टकारी बना दिया। एक ओर जहां धार्मिक उत्पीड़न, राजनीतिक पराभव, आर्थिक हानि और सामाजिक अपमान ने पराजित जाति में विजेताओं के प्रति गहरा आक्रोश और घृणा का भाव भर दिया तो दूसरी ओर विजेताओं के धार्मिक, जातीय व सांस्कृतिक अहंकार ने उन्हें पराजित जातियों से दूर रखा। पारस्परिक अविश्वास, और द्वेष ने एक अनवरत टकराव की स्थिति उत्पन्न कर दी। किन्तु दो महान संस्कृतियों का मिलन दो

तलवारों का टकराव न होकर दो नदियों के संगम के समान होता है जिसमें दोनों का जल एक-दूसरे में घुलमिल जाता है। भारतीय संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति के मिलन से भी एक समन्वयात्मक संस्कृति का उद्भव तथा विकास हुआ।

इस्लाम के अन्तर्गत सूफ़ी सिलसिलों की विचारधारा पर भारतीय दर्शन का व्यापक प्रभाव पड़ा था। सूफ़ी विचारधारा ने भक्त संतों को भी प्रभावित किया था। सूफ़ी सन्तों की सर्वेश्वरवादी विचारधारा शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना की पोषक थी। कबीर, गुरुनानक, चैतन्य महाप्रभु और नर सिंह मेहता जैसे सन्तों ने सूफ़ियों के प्रेममार्ग को अपने जीवन में उतारा था। भवानी के भक्तों जहां एक ओर मुसलमान सम्मिलित थे वहां दूसरी ओर सूफ़ी सन्तों की मज़ारों पर मन्नत मांगने वालों में हज़ारों गैर मुस्लिम होते थे। मुस्लिम शासकों में अनेक ने व्यावहारिक उदारता की नीति अपनाई थी। कश्मीर का ज़ैनुल आब्दीन पहला मुस्लिम शासक था जिसने कि जज़िया समाप्त किया था। शेर शाह के राजस्व प्रशासन तथा न्याय वितरण में सभी धर्मावलम्बियों को समान दृष्टि से देखा जाता था। बंगाल के शासक अलाउद्दीन हुसेन शाह तथा नुसरत शाह ने अपनी गैर-मुस्लिम प्रजा के साथ सहिष्णुता की नीति अपनाई थी। अनेक मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं को अपने राज्य में उच्च पदों पर नियुक्त किया था और हिन्दू शासकों ने भी मुसलमानों को अपने राज्य में महत्वपूर्ण पद प्रदान किए थे। हिन्दू-मुस्लिम वैवाहिक सम्बन्ध भी अब दुर्लभ नहीं थे। भाषा, वेशभूषा, खान-पान, रीतिरिवाज, रहन-सहन, तीज-त्यौहार, आचार-विचार, स्थापत्य कला, शिष्टाचार आदि में समन्वय की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी। इस सांस्कृतिक समन्वय के दो सर्वश्रेष्ठ उदाहरणों के रूप में अमीर खुसरो और कबीर को देखा जा सकता है।

4.3.2 अकबर का उदार धार्मिक परिवेश

समकालीन परिवेश की तुलना में अकबर को विरासत में उदार धार्मिक वातावरण मिला था। उसके पितामह बाबर और पिता हुमायूं सुन्नी थे पर दोनों ही सामान्यतः धार्मिक संकीर्णता से ग्रस्त नहीं थे। अकबर की माँ हमीदा बानो शिया थी और हुमायूं अपने ईरान प्रवास के दौरान थोड़ी अवधि के लिए शिया मतावलम्बी हो गया था। अकबर का जन्म अमरकोट में एक राजपूत शरणदाता के घर में हुआ था। अकबर का संरक्षक बैरम खाँ शिया था। उसका शिक्षक अब्दुल लतीफ़ एक उदार विचारक था। अपने बचपन से ही अकबर का सूफ़ियों से सम्पर्क रहा। किन्तु इन सबसे ऊपर उसकी जिज्ञासु प्रकृति, उसका बौद्धिक दृष्टिकोण, उसकी सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति, उसकी आदर्शवादिता और उसकी व्यावहारिकता ने उसे उदार धार्मिक नीति अपनाने के लिए प्रेरित किया था।

4.3.3 उलेमा वर्ग के राजनीतिक प्रभाव पर नियन्त्रण

सामान्यतः मुस्लिम शासकों में अपने राज्य को 'मुस्लिम राज्य' घोषित करने की प्रथा थी और इन परिस्थितियों में इस्लाम के संरक्षण तथा उलेमा वर्ग को संतुष्ट रखने हेतु उन्हें राज्य की ओर से विशेष प्रयास भी करने पड़ते थे। दिल्ली सल्तनत काल में अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक के अतिरिक्त सभी सुल्तान उलेमा वर्ग को राजनीतिक महत्व देते थे। अकबर की बौद्धिकता उसे अपने बहुसंख्यक गैर मुस्लिम प्रजा वाले साम्राज्य को 'मुस्लिम

राज्य' स्वीकार करने से रोकती थी। वह मुसलमानों का यह दावा भी स्वीकार नहीं करता था कि पृथ्वी पर विद्यमान सभी धर्मों में से केवल इस्लाम में ही सत्य का वास है। अकबर ने स्वयं को सदैव एक आस्तिक मुसलमान के रूप में प्रस्तुत किया परन्तु उसको यह स्वीकार्य नहीं था कि धर्म, राजनीति पर हावी हो। उसने राज्य-सत्ता पर अपना वास्तविक अधिकार होने के कुछ समय बाद ही उलेमा वर्ग के राजनीतिक हस्तक्षेप पर और राज्य की ओर से उन्हें मिलने वाले आर्थिक अनुदानों पर नियन्त्रण स्थापित किया। सन् 1579 में महज़र की घोषणा द्वारा उसने मुसलमानों के धार्मिक विवादों में सर्वोच्च निर्णायक की भूमिका ग्रहण कर उलेमा वर्ग की शक्ति को सीमित किया। अकबर की नीतयों से असन्तुष्ट उलेमा वर्ग ने जब उसको अपदस्थ करने के षडयन्त्र में भाग लिया तब उसने उनके प्रभाव और प्रतिष्ठा को और भी क्षीण कर दिया।

4.3.4 धार्मिक उदारता की नीति

4.3.4.1 धार्मिक उत्पीड़न की नीति का परित्याग

1. सन् 1562 में अकबर ने आमेर के राजपूत शासक भारमल की पुत्री से विवाह किया और बाद में उसने न केवल स्वयं, अपितु अपने परिवार के अन्य पुरुष सदस्यों के भी राजपूतों में विवाह किए। भारत में मुस्लिम शासकों ने इससे पहले भी हिन्दू कन्याओं से विवाह किए थे और उन सभी का धर्म-परिवर्तन कर उन्हें मुसलमान बनाया गया था किन्तु अकबर ने न केवल विवाह के समय हिन्दू रीति-रिवाजों का पालन किया अपितु उसने अपनी हिन्दू रानियों को हिन्दू बने रहकर ही अपने धर्म का पालन करने का पूर्ण अधिकार भी प्रदान किया।

2. राज्य सत्ता पर अपना वास्तविक नियन्त्रण स्थापित होते ही अकबर ने हिन्दुओं से लिया जाने वाला तीर्थयात्रा कर समाप्त कर दिया और गैर-मुस्लिम युद्ध-बन्दियों की इस्लाम में बलात् धर्म-परिवर्तन की प्रथा को भंग कर दिया। सन् 1564 में उसने धार्मिक उत्पीड़न के प्रतीक गैर-मुसलमानों से लिए जाने वाले धार्मिक कर -जज़िया को समाप्त कर दिया। अकबर ने अपने साम्राज्य में सभी धर्मावलम्बियों को अपना धर्म पालन करने की स्वतन्त्रता प्रदान की।

4.3.4.2 अकबर की विचारधारा पर सूफ़ी प्रभाव

अपनी बाल्यावस्था में अकबर ने सूफ़ी अब्दुल लतीफ़ से वहदुतुल वुंजूद तथा सुलेह कुल का पाठ पढ़ा था। बदायूंनी के अनुसार अकबर स्वयं एक सूफ़ी साधक था। वह अजमेर वाले ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर सजदा करने नियमित रूप से जाता था और शेख सलीम चिश्ती का वह मुरीद था। सूफ़ियों की सहिष्णुता, उनके समन्वयवाद और उनके प्रेम मार्ग ने अकबर की विचारधारा पर गहरा प्रभाव डाला था। शेख मुबारक और उनके पुत्रों फ़ैज़ी तथा अबुल फ़ज़्ल के सम्पर्क में आने के बाद अकबर उदार समन्वयात्मक सूफ़ी विचारों की ओर और अधिक झुकने लगा था।

4.3.4.3 अकबर की विचारधारा पर हिन्दू प्रभाव

राजपूतों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के बाद अकबर हिन्दुओं के घनिष्ठ सम्पर्क में आया था। हिन्दुओं के आत्मा के अमरत्व, पुनर्जन्म और कर्म सिद्धान्त ने उसे प्रभावित किया था किन्तु वह सती प्रथा तथा विधवा-विवाह निषेध का विरोधी था। वह रक्षा बन्धन, जन्माष्टमी और वसन्त के त्यौहार मनाता था। उसने महाभारत और रामायण का न केवल फ़ारसी भाषा में अनुवाद कराया अपितु उनके कथानकों पर आधारित चित्रों के निर्माण को भी प्रोत्साहित किया। उसने गो-हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया। हिन्दुओं के प्रभाव में उसने उनकी सी वेशभूषा अपनाली तथा माथे पर तिलक लगाना भी प्रारम्भ कर दिया।

4.3.4.4 जैनों, पारसियों, ईसाइयों तथा अन्य धर्मावलम्बियों का प्रभाव

1. जैनों के अहिंसा के सिद्धान्त ने अकबर को अत्यधिक प्रभावित किया था। जगद्गुरु हीर विजय सूरी तथा भानुचन्द्र के प्रभाव में उसने पशु हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। वह अपने निजी जीवन में लगभग शाकाहारी हो गया था।
2. नवसारी के दस्तूर मेहरजी राना से सम्पर्क के बाद अकबर पारसियों की सूर्य-पूजा व अग्नि-पूजा में विश्वास करने लगा था।
3. अकबर ईसाई धर्म के मानवतावाद तथा सेवा भाव से प्रभावित था। उसने जेसुइट धर्म प्रचारकों को धार्मिक विचार-विमर्श के लिए अपने राज्य में आमन्त्रित किया। अकबर के अनुरोध पर पुर्तगाली ठिकाने गोआ से तीन जेसुइट मिशन अकबर के दरबार में भेजे गए। अंग्रेज़ मिशनरियों ने भी अकबर से सम्पर्क किया किन्तु किसी भी ईसाई मिशन ने अकबर पर विशेष प्रभाव नहीं छोड़ा।
4. गुरुनानक देव के सिक्ख मत की समन्वयवादी विचारधारा से भी अकबर प्रभावित हुआ था। उसने सिक्ख गुरु रामदास को अमृतसर में ज़मीन दी जहां पर कि स्वर्ण मन्दिर का निर्माण करवाया गया।
5. अकबर ने धार्मिक विचार-विमर्श के उद्देश्य से सन् 1575 में फ़तेहपुर सीकरी में इबादतखाना बनवाया। यहां पर पहले केवल सुन्नी मत के विद्वानों को आमन्त्रित किया गया किन्तु सन् 1578 में सभी मतावलम्बियों को धार्मिक एवं दार्शनिक वाद-विवाद में सम्मिलित होने की अनुमति प्रदान कर दी गई।

4.3.4.5 तौहीद–ए–इलाही अथवा दीन–ए–इलाही

सन् 1582 में दीन-ए-इलाही की योजना को प्रस्तुत किया गया था। अकबर इस नवीन मत का प्रणेता, आध्यात्मिक गुरु पुरोहित तथा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि था। इसके मतावलम्बी अकबर से रविवार को दीक्षा लेते थे और अपने अहंकार तथा स्वार्थ को त्याग कर उसके प्रति अपनी पूर्ण निष्ठा एवं भक्ति व्यक्त करते थे।

तौहीद-ए-इलाही (दैविक एकेश्वरवाद) अथवा दीन-ए-इलाही को बदायूंनी ने अकबर द्वारा धर्म प्रवर्तक के रूप में अपने साम्राज्य की समस्त प्रजा को स्वनिर्मित एक राष्ट्रीय धर्म के अन्तर्गत लाने की महत्वाकांक्षी योजना कहा है। कुछ अन्य विद्वानों ने उसके द्वारा स्वयं को एक पैगम्बर या खलीफ़ा के रूप में प्रस्तुत करने का षडयन्त्र कहा है किन्तु ये

आरोप तथ्यों पर आधारित नहीं है। वास्तव में यह एक नया धर्म न होकर एक मत था जिसमें अनेक धर्मों के श्रेष्ठ तत्वों - यथा इस्लाम के एकेश्वरवाद, ईश्वर के निर्गुण रूप की उपासना, विश्व बंधुत्व की भावना, इस्लाम के ही अन्तर्गत सूफ़ियों की रहस्यानुभूति एवं उनका समन्वयवाद, हिन्दुओं के आत्मा के अमरत्व तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त, जैनों की अहिंसा, बौद्धों के मध्यम मार्ग, पारसियों की सूर्य एवं अग्नि पूजा तथा ईसाइयों के मानवतावाद का समावेश किया गया था। दीन-ए-इलाही के अन्तर्गत 10 सद्गुणों में विनम्रता, मृदु एवं सत्य-भाषण, क्रोध पर नियन्त्रण, भौतिक सुखों के प्रति विरक्ति, आत्मा के परमात्मा में लीन होने हेतु आत्म-शोधन के बाद ईश्वर का ध्यान आदि का समावेश किया गया था। विन्सेन्ट स्मिथ दीन-ए-इलाही को अकबर की मूर्खता का स्मारक मानते हैं। अकबर ने अपने मतावलम्बी बनाने के लिए कभी बल का प्रयोग नहीं किया लेकिन इस मत में केवल उसके प्रशंसक और अवसरवादी चाटुकार ही सम्मिलित हुए। अकबर के जीवनकाल में ही दीन-ए-इलाही का प्रयोग असफल हो गया। निश्चित रूप से यह एक अहंकारी बादशाह की महत्वाकांक्षी, अव्यावहारिक, निराधार एवं हवाई योजना थी किन्तु सर्व-धर्म सम्भाव एवं राष्ट्र को भावनात्मक रूप से एकसूत्र में बांधने के प्रयास के कारण इसे अपने समय से बहुत आगे की योजना कहा जा सकता है।

4.4 अकबर की राजपूत नीति

4.4.1 राजपूताने में प्रारम्भिक विजय तथा राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध

अकबर की महत्वाकांक्षा मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ करने के साथ-साथ उसका सभी दिशाओं में विस्तार करने की थी। अफ़गानों के पराभव के बाद उत्तर भारत में राजपूत मुगलों के लिए सबसे बड़ा खतरा थे। राजपूत शक्ति का मुख्य केन्द्र राजपूताना, दिल्ली और आगरा के बहुत निकट था इसलिए उत्तर भारत पर अपना स्थायी प्रभुत्व बनाए रखने के लिए मुगलों का सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण राजपूताने पर विजय प्राप्त करना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त राजपूताने पर नियन्त्रण स्थापित किए बिना बुन्देलखण्ड, मालवा, गुजरात तथा दक्षिण भारत में मुगल अपने साम्राज्य का विस्तार नहीं कर सकते थे। अकबर को राजपूताने के सीमित संसाधनों, राजपूतों की जुझारू प्रकृति और उनकी वीरता की जानकारी थी। राजपूताने पर उसका विजय अभियान न तो मुख्यतः साम्राज्य विस्तार के लिए था और न ही साम्राज्य के संसाधनों में वृद्धि करने के लिए। अकबर राजपूत शासकों से केवल यह अपेक्षा करता था कि वो उसकी आधीनता स्वीकार कर लें, अपनी वाह्य नीतियों पर उसका नियन्त्रण स्थापित होने दें और उसे वार्षिक खिराज देते रहें। इसके बदले में अकबर उनके सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक जीवन में कोई हस्तक्षेप किए बिना उन्हें व्यावहारिक दृष्टि से स्वतन्त्र शासक के अधिकार देने को तैयार था।

1. आमेर के कछवाहा राजपूत शासक भारमल तथा उनके पुत्र भगवानदास ने मुगलों की आधीनता स्वीकार की। भारमल ने अपनी पुत्री का विवाह अकबर के साथ कर दिया। अजमेर से बीस कोस दूर मेड़ता के किले पर मारवाड़ के शासक मालदेव के सेनानायक जयमल का अधिकार था। अकबर के सेनानायक मिर्ज़ा शरीफ़ुद्दीन हुसेन ने जयमल की

सेना को पराजित कर मेड़ता के किले पर अधिकार कर लिया। रणथम्भौर पर अधिकार करने के लिए भी अकबर को अपनी शक्ति का प्रयोग करना पड़ा किन्तु मारवाड़, बीकानेर, जैसलमेर आदि ने बिना प्रतिरोध के अकबर की आधीनता स्वीकार कर ली। मेवाड़ के आधीन राज्य - डूंगरपुर, बांसवाड़ा तथा प्रतापगढ़ आदि ने बिना प्रतिरोध के अकबर की आधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार मेवाड़ छोड़कर पूरा राजपूताना मुगलों के आधीन हो गया।

1. आमेर के शासक भारमल ने अपनी पुत्री का विवाह अकबर के साथ कर दिया। आमेर के शासक की भांति जैसलमेर तथा बीकानेर के शासकों ने भी अपनी कन्याओं के विवाह मुगलों के साथ कर दिए। अकबर ने अपने राजपूत सम्बन्धियों को न केवल सम्मान दिया अपितु उसने उन्हें अपनी सेना तथा प्रशासन में अत्यन्त महत्वपूर्ण पद प्रदान किए। राजपूतों के साथ वैवाहिक सम्बन्धों में अकबर की उदारता का उल्लेख हम इसी इकाई के - **2.3.4 धार्मिक उदारता की नीति** - शीर्षक के अन्तर्गत भी कर चुके हैं।

4.4.2 चित्तौड़ विजय तथा महाराणा प्रताप का प्रतिरोध

1. मेवाड़ के राणा उदय सिंह ने अकबर की आधीनता स्वीकार करने से इंकार कर दिया था। राजपूताने के राज्यवंशों में मेवाड़ की सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी। अकबर ने सन् 1567 में चित्तौड़ पर स्वयं आक्रमण किया। उदय सिंह ने भागकर अरावली की पहाड़ियों में शरण ली किन्तु जयमल और पट्टा ने वीरतापूर्वक मुगलों का सामना किया। अन्त में मुगलों ने चित्तौड़ दुर्ग पर अधिकार किया। अकबर ने चित्तौड़ दुर्ग में भयंकर विनाश और नरसंहार कर उस पर अधिकार किया। इस कृत्य से वह अन्य राजपूत शासकों को प्रतिरोध न करने का सबक देना चाहता था। अकबर ने सन् 1569 में रणथम्भौर भी जीत लिया। अगले वर्ष तक मेवाड़ छोड़कर सभी राजपूत शासकों ने अकबर की आधीनता स्वीकार कर ली।

2. राणा उदय सिंह की सन् 1572 में मृत्यु के बाद महाराणा प्रताप ने भी मुगलों की नाम मात्र की आधीनता स्वीकार नहीं की। महाराणा प्रताप के भाइयों ने भी मुगलों की आधीनता स्वीकार कर ली परन्तु महाराणा ने अकबर द्वारा वार्ता के छह प्रस्ताव ठुकरा दिए। अकबर ने मानसिंह को सेनानायक बनाकर महाराणा के विरुद्ध सेना भेजी। हल्दीघाटी के मैदान में सन् 1576 में युद्ध हुआ जिसमें मुगलों को विजय प्राप्त हुई किन्तु अरावली की पहाड़ियों में जा छुपे महाराणा प्रताप का प्रतिरोध आजीवन जारी रहा। उन्होंने भामाशाह की आर्थिक सहायता लेकर और भीलों के सहयोग व गुरिल्ला युद्ध नीति अपना कर चित्तौड़ और मण्डलगढ़ छोड़कर शेष मेवाड़ मुगलों से वापस जीत लिया।

4.4.3 अकबर की विजयों तथा उसके प्रशासन में राजपूतों का योगदान

अकबर ने साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति अपना कर मेवाड़ छोड़कर सभी राजपूत राज्यों को अपने आधीन कर लिया था। अपनी कूटनीति से उसने राजपूत शासकों को अपना सबसे महत्वपूर्ण व भरोसेमन्द मित्र बना लिया।

पारस्परिक लाभ की नीति अपना कर राजपूतों की वचन बद्धता, उनके सैन्य कौशल तथा उनके प्रशासनिक अनुभव का अकबर ने भरपूर लाभ उठाया। भगवानदास और उसके पुत्र मानसिंह को तो उसने अपने सर्वोच्च मनसबदारों में सम्मिलित किया था। मानसिंह पर भरोसा जताते हुए अकबर ने उसे महाराणा प्रताप के विरुद्ध अभियान की कमान सौंपी थी और मानसिंह ने महाराणा प्रताप को पराजित कर उसके निर्णय को उचित सिद्ध किया था। अकबर के विजय अभियानों में उसके राजपूत सहयोगियों ने बढ़ चढ़कर भाग लिया था। अकबर सन् 1581 के सत्ता परिवर्तन के राजनीतिक संकट का निवारण, राजपूत सहयोग के बल पर ही कर सका था। अकबर के प्रशासन को सुदृढ़ एवं सक्षम बनाने में भी राजपूतों का महत्वपूर्ण योगदान था। सन् 1562 से लेकर औरंगज़ेब के विरुद्ध सन् 1680 के राजपूत स्वतन्त्रता संग्राम तक, राजपूत मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ करने में पूर्ण निष्ठा के साथ संलग्न रहे। परन्तु राजपूत शासकों ने अपनी स्वतन्त्रता खोकर मुगलों की छत्रछाया में विलासिता का जीवन व्यतीत करना भी प्रारम्भ कर दिया और उनके शासन में अनेक दोष उत्पन्न हो गए।

4.4.4 मुगल–राजपूत सामाजिक–सांस्कृतिक आदान–प्रदान

राजपूतों के सम्पर्क में आने के बाद अकबर के दार्शनिक एवं धार्मिक विचारों में और अधिक उदारता आ गई। आचार-विचार, वेशभूषा, खान-पान, रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, स्थापत्य कला, चित्रकला, संगीत, भाषा, साहित्य, शिष्टाचार, शाही दरबार, हरम-रनिवास की संरचना आदि सभी क्षेत्रों में मुगल-राजपूत आदान-प्रदान हुआ। एक ओर जहां अकबर द्वारा बनवाए गए आगरा के लाल किले में जहांगीर महल, फ़तेहपुर सीकरी के दीवान-ए-खास और उसके काल के चित्रों के कथानकों में राजपूत प्रभाव देखा जा सकता है तो दूसरी ओर राजपूत शासकों की स्थापत्य कला और उनके चित्रों के कलात्मक पक्ष पर मुगल प्रभाव देखा जा सकता है। इस प्रकार सांस्कृतिक क्षेत्र में मुगल-राजपूत मैत्री का सुपरिणाम गंगा-जमुनी संस्कृति के विकास के रूप में दिखाई पड़ा।

4.5 बादशाह जहांगीर

4.5.1 जहांगीर द्वारा अकबर की नीतियों का अनुगमन

एक शहज़ादे के रूप में सलीम ने अपने पिता के विरुद्ध कई बार बगावत की थी किन्तु जहांगीर के रूप में बादशाह बनने पर उसने सामान्यतः अकबर महान की नीतियों का अनुगमन कर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया था।

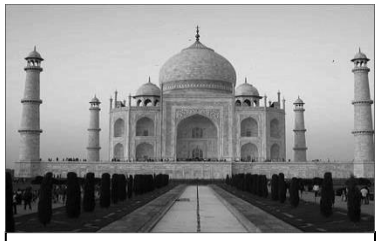

1. अपने राज्यारोहण के समय जहांगीर ने 12 अध्यादेश (दस्तूर-उल-अमल) निर्गत किए थे जो कि मूलतः अकबर की लोक-कल्याण की भावना तथा उसकी उदार नीतियों पर आधारित थे। व्यावहारिक दृष्टि से उसने अपने पिता की धार्मिक नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया। गैर-मुस्लिम जज़िया से पूर्ववत

मुक्त रहे और सभी धर्मावलम्बियों को आमतौर पर अपने-अपने धर्म का स्वतन्त्रतापूर्वक पालन करने का अधिकार मिला रहा। जहांगीर ने अकबर की भू-राजस्व व्यवस्था, मनसबदारी व्यवस्था, उद्योग एव व्यापार को प्रोत्साहन देने की नीति, धर्म-निर्पेक्ष न्याय व्यवस्था आदि का भी निष्ठापूर्वक अनुगमन किया।

2. राजपूत पहले की ही तरह मुगलों के अधीनस्थ मित्र व सहयोगी बने रहे।

3. जहांगीर के शासनकाल में भी अकबर के शासनकाल की ही भांति साहित्य, कला और संगीत को राज्य की ओर से प्रोत्साहन मिलता रहा।

4.5.2 जहांगीर के शासन में नूरजहां का प्रभाव

अपने समय की विख्यात सुन्दरी मेहरुन्निसा के पति शेर अफ़गन की सन् 1607 में हत्या में जहांगीर का हाथ था। सन् 1611 में जहांगीर ने उसके साथ विवाह किया और तभी से उसने राज्य की नीतियों में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। 'नूर महल' और बाद में 'नूरजहां' की उपाधि प्राप्त कर वह और भी अधिक प्रभावशाली हो गई। सन् 1611 से 1622 तक मुगल राजनीति पर 'नूरजहां जुन्टा' (मुख्य रूप से नूरजहां, उसका पिता उत्मात्-उद्- दौला, उसका भाई आसफ़ खाँ तथा शहज़ादा खुर्रम) का प्रभुत्व रहा और सन् 1622 से 1627 तक व्यावहारिक दृष्टि से अकेली नूरजहां, जहांगीर के शासनकाल की संचालिका बनी रही।

tgkayhi dk od+eik

1. जहांगीर के शासनकाल की सांस्कृतिक गतिविधियों में नूरजहां का योगदान प्रशंसनीय था। नूरजहां अपने काल की सबसे सुसंस्कृत महिला थी। उसके निर्देशन में तैयार किए गए वस्त्र पूरे साम्राज्य के आभिजात्य वर्ग में लोकप्रिय हुए। गुलाब के इत्र का आविष्कारक नूरजहां को माना जाता है। जहांगीर के काल की दोनों प्रसिद्ध इमारतों - एत्मात्-उद्-दौला का मक़बरा तथा जहांगीर का मक़बरा, का निर्माण नूरजहां की देखरेख में हुआ था।

2. जहांगीर ने अपने सिक्कों में अपने साथ नूरजहां का नाम भी अंकित कराया।

3. जहांगीर ने नूरजहां के पिता गियासुद्दीन बेग को अपने साम्राज्य का वज़ीर बनाया और उसे एत्मात्-उद्-दौला की उपाधि प्रदान की। नूरजहां के भाई आसफ़ खाँ को उच्च मनसब प्रदान किया गया तथा उसकी पुत्री अर्जुमन्द बानो से शहज़ादे खुर्रम का विवाह किया गया।

नूरजहां की मदद से बागी शहज़ादे खुसरो को शहज़ादे खुर्रम को सौंप दिया गया जिसने उसकी हत्या करवा दी। खुर्रम को शाहजहां का खिताब दिलाने के पीछे नूरजहां का हाथ था।

4. नूरजहां-शेर अफ़गन की पुत्री लाडली बेगम का विवाह शहज़ादे शहरयार से कर दिया गया। इसके बाद नूरजहां का झुकाव शाहजहां के स्थान पर शहरयार की ओर हो गया। सन् 1622 में एत्मात्-उद्-दौला की मृत्यु के बाद नूरजहां का अपने भाई आसफ़ खाँ से भी मनमुटाव हो गया। जहांगीर के गिरते स्वास्थ्य का लाभ उठाकर नूरजहां ने अकेले ही शासन पर अपनी पकड़ मज़बूत कर ली। शहरयार को आवश्यकता से अधिक महत्व देकर उसने शाहजहां और आसफ़ खाँ को अपना विरोधी बना लिया। शाहजहां के विद्रोह का भी मुख्यतः यही कारण था।

5. प्रसिद्ध सेनानायक महाबत खाँ ने जहांगीर द्वारा एक महिला को इतने अधिक अधिकार दिए जाने की उसके मुहँ पर आलोचना की थी। नूरजहां के राजनीतिक उत्पीड़न से क्रुद्ध महाबत खाँ ने जहांगीर के विरुद्ध विद्रोह कर उसे कुछ समय के लिए नज़रबन्द भी कर दिया था।

6. नूरजहां द्वारा राजनीतिक तनाव एव अविश्वास की स्थिति उत्पन्न किए जाने के कारण दक्षिण भारत में मुगलों की पकड़ कमज़ोर हो गई और उत्तर-पश्चिम में कान्धार मुगलों के हाथ से निकल गया।

7. नूरजहां ने प्रशासनिक भ्रष्टाचार और भेंट व नज़राने की प्रथा को बढ़ावा दिया। शक्ति संतुलन के समीकरणों में उसके द्वारा निरन्तर बदलाव किए जाने की उसकी प्रवृत्ति के कारण अमीरों में अपने भविष्य को लेकर अनिश्चितता रहती थी। इस राजनीतिक अनिश्चितता का साम्राज्य की प्रतिष्ठा पर तथा उसकी प्रशासनिक सक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

4.5.3 बादशाह के रूप में जहांगीर का आकलन

1. सन् 1605 से 1627 तक के अपने शासनकाल में जहांगीर ने विशेष उपलब्धियां अर्जित नहीं कीं परन्तु अकबर की धार्मिक, राजपूत तथा प्रशासनिक नीतियों का अनुगमन कर उसने अपनी व्यावहारिक बुद्धिमत्ता का परिचय अवश्य दिया।

2. जहांगीर ने एक न्यायप्रिय शासक के रूप में स्वयं को प्रतिष्ठित किया किन्तु वास्तव में वह एक न्यायप्रिय शासक कहलाने का अधिकारी नहीं था।

3. जहांगीर की राजपूत नीति सफल रही। मेवाड़ के शासक राणा अमर सिंह को पराजित कर जब सन् 1615 में शहज़ादे खुर्रम ने मुगलों की आधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार कर लिया तब जहांगीर ने उसको न केवल मुगल दरबार में उपस्थित होने की बाध्यता से मुक्त किया अपितु उसे शाही सम्मान व शाही उपहारों से अलंकृत कर मेवाड़ को मुगलों का स्थायी मित्र बना लिया।

4. उसने साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से कांगड़ा की विजय की किन्तु उसके काल में कान्धार मुगल साम्राज्य से निकल गया और अहमदनगर में मलिक अम्बर के नेतृत्व में मुगलों का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया गया।

5. जहांगीर स्वयं एक लब्धप्रतिष्ठ लेखक था। उसकी तुज़ुक-ए-जहांगीरी उसके शासनकाल का प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

6. जहांगीर के शासनकाल में चित्रकला अपने शिखर पर पहुंच गई थी।

7. जहांगीर के शासनकाल के अन्तिम पाँच वर्ष नूरजहां की अनियन्त्रित शक्ति के विरोध में शाहजहां और महाबत खाँ के विद्रोहों की छाया में बीते थे। अपनी विलासप्रियता, मद्यपान के बुरे व्यसन, आलस्य और शिथिलता तथा राजकाज की बागडोर पूरी तरह नूरजहां पर छोड़ने के कारण जहांगीर ने मुगलों की प्रतिष्ठा तथा बादशाह के गौरव को अपूर्णनीय क्षति पहुंचाई थी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. भारत में अकबर से पूर्व धार्मिक-सांस्कृतिक समन्वय।
2. अकबर की विचारधारा पर सूफ़ी प्रभाव।
3. महाराणा प्रताप का स्वतन्त्रता संग्राम।
4. मुगल-राजपूत वैवाहिक सम्बन्ध।
5. मुगल राजनीति पर नूरजहां का प्रभाव
6. एक शासक के रूप में जहांगीर।

4.6 सारांश

अकबर ने विरासत में एक अव्यस्थित, असुरक्षित, साधनहीन और क्षेत्रफल की दृष्टि से एक छोटा साम्राज्य प्राप्त किया था। इस साम्राज्य को विश्व के महानतम साम्राज्यों में विकसित करने का पूरा श्रेय अकबर को जाता है। भौगोलिक, जातीय, धार्मिक एवं सास्कृतिक भिन्नताओं वाले भारत को अकबर ने राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से एकसूत्र में बांधा था। इन उपलबिघयों के कारण हम उसे एक राष्ट्रीय शासक कह सकते हैं। अकबर की समन्वयवादी विचारधारा और उसकी उदार धार्मिक नीति धार्मिक वैमनस्य और धार्मिक संकीर्णजता से भरपूर मध्यकालीन विश्व इतिहास में अनुपम है। अकबर ने अपने साम्राज्य में सभी धर्मों का आदर किया और सभी धर्मावलम्बियों को अपने-अपने धर्म का अनुपालन व उसका विकास करने के खुली छूट दी। उसके द्वारा प्रतिपादित मत - दीन-ए-इलाही धार्मिक समन्वय की अनूठी मिसाल है।

अकबर ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए अधिकांश राजपूत शासकों को अपनी आधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया किन्तु उसके बाद उसने उन्हें अपनी आधीनता में स्वतन्त्र शासक के समान अधिकार देकर उन्हें अपना मित्र और अपने साम्राज्य का हितैषी बना लिया। राजपूतों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसने राजपूत-मुगल मैत्री को एक नया आयाम दिया। अकबर की विजयों, उसके प्रशासनिक एवं आर्थिक सुधारों तथा उसकी सांस्कृतिक क्षेत्र में उपलब्धियों ने भारत को एकसूत्र में बांधने में सफलता प्राप्त की।

जहांगीर ने अपने पिता की राजनीतिक, प्रशासनिक एव सांस्कृतिक विरासत को यथा सम्भव बनाए रखा था। उसके काल में चित्रकला का अभूपूर्व विकास हुआ था। जहांगीर के सफल सैनिक अभियानों में मुख्य भूमिका शहज़ादे खुर्रम ने निभाई थी और उसके प्रशासन में तथा उसके काल की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में उसकी बेगम नूरजहां की प्रधान भूमिका थी किन्तु नूरजहां का मुगल राजनीति पर प्रभाव हानिकारक सिद्ध हुआ। उपलब्धियों की दृष्टि से हम उसे एक साधारण शासक कह सकते हैं।

4.7 पारिभाषिक शब्दावली

तौहीद-ए-इलाही - एकेश्वरवाद।

गंगा-जमुनी तहज़ीब- मिलीजुली अथवा समन्वयात्मक संस्कृति।

महज़र - परमादेश। इसके द्वारा अकबर मुसलमानों के धार्मिक विवादों में सर्वोच्च निर्णायक बन गया था।

सिजदा - श्रद्धा के रूप में नमन।

कोस - दूरी का एक माप, लगभग 2 मील।

हरम - रनिवास।

जुन्टा - गुट।

4.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 4.2.3.1 भारत में अकबर से पूर्व धार्मिक सहिष्णुता तथा धार्मिक-सांस्कृतिक समन्वय।
2. देखिए 4.2.3.4.2 अकबर की विचारधारा पर सूफ़ी प्रभाव।
3. देखिए 4.2.4.2 चित्तौड़ विजय तथा महाराणा प्रताप का प्रतिरोध।
4. देखिए 4.2.4.1 राजपूताने में प्रारम्भिक विजय तथा राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध।
5. देखिए 4.2.5.2 जहांगीर के शासन में नूरजहां का प्रभाव।
6. देखिए 4.2.5.3 बादशाह के रूप में जहांगीर का आकलन।

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Smith, V. A. – *Akbar the Great*
2. Prasad, Beni – *History of Jahangir*
3. Abu-l –Fazl – *The Ain-i-Akbari* (English Tr. Blochmann, H.)
4. Abu-l –Fazl – *Akbarnama* (English Tr. Beveridge, H.)
5. Jahangir – *Tuzuk-i-Jahangiri* (English Tr. Beveridge, Rogers)

4.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Malleson, G. B. – *Akbar and the Rise of the Mughal Empire*

2. Roy Chaudhury, M. L. – *Din-i-Ilahi or the Religion of Akbar*

3. Ahmad, Bashir – *Akbar the Great Mughal: His New Policy and His New Religion*

4. Habib, Irfan – *Akbar and His India*

5. Banks, Ellison – *Nurjahan: Empress of Mughal India*

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

तौहीद-ए-इलाही अथवा दीन-ए-इलाही का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई पाँच–शाहजहां, औरंगजेब : धार्मिक तथा दक्षिणी नीति

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 बादशाह शाहजहां

5.3.1 साम्राज्य विस्तार की नीति

5.3.1.1 दक्षिण-भारत अभियान

5.3.1.2 मध्य-एशिया तथा उत्तर-पश्चिम सीमा पर अभियान

5.4 मुगल काल का स्वर्ण युग कहलाए जाने का औचित्य

5.4.1 स्वर्ण युग कहलाए जाने के पक्ष में तर्क

5.4.2 स्वर्ण युग कहलाए जाने के विरोध में तर्क

5.5 उत्तराधिकार का युद्ध

5.5.1 शाहजहां की बीमारी के समय उसके पुत्रों की स्थिति

5.5.2 शहज़ादों के मध्य युद्ध

5.5.3 औरंगज़ेब का राज्यारोहण

5.5.4 उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगज़ेब की सफलता के कारण

5.6 इस्लाम के संरक्षक के रूप में बादशाह औरंगज़ेब

5.6.1 साम्राज्य में इस्लाम के आदर्शों तथा परम्पराओं की पुनर्स्थापना

5.6.2 धार्मिक उत्पीड़न की नीति

5.6.3 धार्मिक उत्पीड़न की नीति का विरोध

5.6.3.1 जाट प्रतिरोध

5.6.3.2 सतनामी प्रतिरोध

5.6.3.3 सिक्खों का प्रतिरोध

5.6.3.4 राजपूत प्रतिरोध

5.6.3.5 बुन्देला राजपूतों का प्रतिरोध

5.6.3.6 मराठा प्रतिरोध

5.6.3.7 औरंगज़ेब की धार्मिक नीति का आकलन

5.7 औरंगज़ेब की दक्षिण नीति

5.7.1 औरंगज़ेब का दक्षिण भारत का अभियान और प्रारम्भिक सफलताएं

5.7.2 मराठा स्वतन्त्रता संग्राम

5.7.3 मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगज़ेब की दक्षिण नीति का दायित्व

5.8 सारांश

5.9 पारिभाषिक शब्दावली

5.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

5.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.13 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

बादशाह के रूप में शाहजहां ने अपने लगभग 30 वर्ष के शासनकाल में इतिहास के पन्नों में एक अमिट छाप छोड़ी है। शाहजहां ने दक्षिण भारत में साम्राज्य विस्तार करने में सफलता प्राप्त की किन्तु मध्य एशिया व उत्तर-पश्चिम में उसे असफलता मिली। उसके शासनकाल में मुगल समृद्धि तथा वैभव की पराकाष्ठा पर पहुंच गए थे किन्तु इसका मूल्य उसकी प्रजा को बढ़े हुए करों द्वारा चुकाना पड़ा था। शाहजहां का शासनकाल मुगल काल का स्वर्णयुग था या नहीं, यह विवादास्पद है किन्तु अपने जीवन में ही अपने पुत्रों के मध्य उत्तराधिकार का युद्ध होते हुए देखना, अपदस्थ होकर स्वयं को बन्दी होते हुए देखना और अपने तीन पुत्रों की मृत्यु देखना, उसके शासनकाल को स्वर्णयुग मानने के मार्ग में बाधक हैं।

औरंगज़ेब ने इस्लाम के संरक्षक के रूप में उत्तराधिकार के युद्ध में सफलता प्राप्त कर सिंहासन प्राप्त किया था। हनाफ़ी सम्प्रदाय के कट्टर मुसलमान के रूप में उसने इस्लाम को राज-धर्म घोषित कर उसके विकास हेतु निरन्तर प्रयास किए किन्तु गैर-मुस्लिमों के प्रति उसकी असहिष्णुता की नीति साम्राज्य में अशान्ति और अनवरत संघर्ष का कारण बनी।

उसकी धार्मिक उत्पीड़न की नीति ने मुगलों के परम्परागत स्वामिभक्त राजपूतों को उनका शत्रु बना दिया और शान्तिप्रिय सिक्खों को एक लड़ाकू कौम बना दिया। मराठों का उत्कर्ष मुख्यतः उसी की अव्यावहारिक दक्षिण नीति

का कुपरिणाम था। औरंगज़ेब की दक्षिण नीति उसके लिए विनाशकारी सिद्ध हुई और मुगल साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण बनी।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको शाहजहां व औरंगज़ेब की मुख्य उपलब्धियों तथा असफलताओं से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- शाहजहां की दक्षिण भारत, मध्य-एशिया तथा उत्तर-पश्चिम में साम्राज्य विस्तार की नीति।

2. शाहजहां के शासनकाल को मुगलकाल के स्वर्णयुग कहलाने का औचित्य।

3. शाहजहां के काल में उत्तराधिकार का युद्ध।

4. औरंगज़ेब की धार्मिक नीति और उसके परिणाम।

5. औरंगज़ेब की दक्षिण नीति तथा उसका मुगल साम्राज्य के पतन में दायित्व।

5.3 बादशाह शाहजहां

5.3.1 साम्राज्य विस्तार की नीति

5.3.1.1 दक्षिण–भारत अभियान

बादशाह जहांगीर के काल में दक्षिण भारत के प्रारम्भिक अभियानों में मिली सफलता का श्रेय मुख्यतः शहज़ादे खुर्रम को जाता है। शहज़ादे के रूप में शाहजहां वर्षों तक मुगल-दक्षिण का सूबेदार रहा था। इस कारण उसे दक्षिणी भारत की भौगोलक, सैनिक तथा कूटनीतिक स्थिति की भलीभांति जानकारी थी। मलिक अम्बर की मृत्यु के बाद की राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर वह अहमदनगर पर मुगल प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था और बीजापुर व गोलकुण्डा के शिया राज्यों की ईरान के शाह के प्रति निष्ठा के कारण वह उनका भी दमन करना चाहता था।

अहमदनगर के सुल्तान मुर्तज़ा निज़ाम शाह ने मुगलों के विद्रोही खानेजहां को शरण दी थी। अहमदनगर राज्य के वकील तथा पेशवा फ़तेह खाँ ने मुर्तज़ा निज़ाम शाह की हत्या कर उसके अल्पवयस्क पुत्र हुसेन शाह को सुल्तान बनाकर मुगलों की आधीनता स्वीकार कर ली। सन् 1633 तक मुगल सेनापति महाबत खाँ के नेतृत्व में अहमदनगर पर मुगल विजय अभियान आंशिक रूप से सम्पन्न हो गया परन्तु अगले तीन वर्ष तक शाहजी भोंसले के नेतृत्व में अहमदनगर का प्रतिरोध जारी रहा। अन्त में सन् 1636 में शाहजहां के व्यक्तिगत दक्षिण अभियान द्वारा अहमदनगर को पूरी तरह मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। अपने दक्षिण अभियान के दौरान शाहजहां ने सन् 1636 में गोलकुण्डा तथा बीजापुर के शासकों पर सैनिक व कूटनीतिक दबाव डालकर उनको मुगल आधीनता स्वीकार कर खिराज देने के लिए विवश किया। सन् 1656 में मुगल दक्षिण के सूबेदार औरंगज़ेब ने बीजापुर को मुगल साम्राज्य में मिलाने के लिए

सैनिक अभियान किया किन्तु शाहजहां की बीमारी के बाद उत्तराधिकार के युद्ध में सम्मिलित होने के कारण वह बीजापुर विजय का अभियान अधूरा छोड़कर ही उत्तर भारत की ओर चल पड़ा।

5.3.1.2 मध्य–एशिया तथा उत्तर–पश्चिम सीमा पर अभियान

1. अपने पूर्वजों की जन्मभूमि मध्य-एशिया के बल्ख तथा बदख्शाँ पर अधिकार करने के लिए शाहजहां ने सन् 1639 में काबुल से सैनिक अभियान की तैयारी की। 1640-41 में मध्य-एशिया की राजनीतिक अराजकता की स्थिति का लाभ उठाकर बल्ख पर अधिकार कर लिया किन्तु उज़बेग प्रतिरोध और मध्य-एशिया की विषम परिस्थितियों के कारण सन् 1647 में मुगलों को अपना मध्य-एशिया अभियान पूरी तरह समाप्त करना पड़ा। इस असफल अभियान में जान-माल के भारी नुक्सान के साथ-साथ मुगलों की सैनिक प्रष्ठिा पर भी गहरा आघात लगा।

2. सन् 1622 में जहांगीर के शासनकाल में कान्धार मुगलों के हाथ से निकल कर ईरान के शाह के अधिकार में आ गया था। सन् 1634 में कान्धार के ईरानी सूबेदार अलीमर्दान खाँ को अपनी ओर कर मुगल सेनापति सईद खाँ ने कान्धार पर अधिकार कर लिया किन्तु मुगलों के मध्य-एशिया अभियान की असफलता का लाभ उठाकर सन् 1648 में ईरानियों ने कान्धार पर फिर से अधिकार कर लिया। सन् 1652 तथा 1653 में कान्धार पर पुनर्विजय के दो मुगल अभियान ईरान-उज़बेग सहयोग तथा उस क्षेत्र की दुर्गमता के कारण असफल रहे। इस प्रकार शाहजहां की मध्य-एशिया तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा पर मुगल अधिकार करने के अभियान पूर्णतया असफल रहे।

5.4 मुगल काल का स्वर्ण युग कहलाए जाने का औचित्य

5.4.1 स्वर्ण युग कहलाए जाने के पक्ष में तर्क

1. शाहजहां ने अपने दरबार को अनुपम वैभव प्रदान किया। दिल्ली के लाल किले के दीवान-ए-खास में रत्नजटित तख्त-ए-ताऊस पर आसीन शाहजहां की शान-ओ-शौकत देखकर विदेशों से आने वाले राजदूत और यात्री आदि सभी अभिभूत हो जाते थे। ट्रेवर्नियर, बर्नियर तथा मनूची जैसे विदेशी यात्रियों ने अपने वृतान्तों में इस वैभव का उल्लेख किया है। नहर-ए-बहिश्त से सज्जित उद्यान से घिरे, सफ़ेद संगमरमर से बने, सोने-चाँदी व रत्नों और कीमती पत्थरों से जड़ित तथा चित्रों से शोभित, दीवान-ए-खास का दरबार पृथ्वी पर जन्नत का नज़ारा माना जाता था। दीवान-ए-खास में अमीर खुसरो का काश्मीर के लिए कहा गया यह फ़ारसी शेर अंकित था -

अगर फ़िरदौस बर रूए ज़मींनस्त।

हमीनस्तो, हमींनस्तो, हमींनस्त।।

(पृथ्वी पर यदि कहीं स्वर्ग है, तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।)

बादशाह के अतिरिक्त शाही परिवार के अन्य सदस्यों तथा अमीरों का जीवन भी ऐश्वर्य से भरपूर था। शहज़ादा दाराशिकोह के विवाहोत्सव पर आतिशबाज़ी पर करोड़ों रुपये खर्च किए गए थे। जहांनारा के जन्मदिन पर भी जश्न और खैरात में करोड़ों का व्यय किया गया था।

2. दिल्ली का लाल किला, दिल्ली और आगरा की जामा मस्जिद, आगरा के लाल किले का दीवान-ए-खास और आगरा में स्थित मुमताज महल का मक़बरा ताजमहल, स्थापत्य कला के चरमोत्कर्ष के जीवन्त प्रमाण हैं। ताजमहल में कलाकारों ने स्थापत्य कला के सभी श्रेष्ठ तत्वों का समावेश किया है।

3. शाहजहां के शासनकाल के अन्तिम वर्षों को छोड़कर साम्राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित रही और कोई भी बड़ा विद्रोह नहीं हुआ। उद्योग एवं व्यापार की उन्नति के लिए भी परिस्थितियां अनुकूल रहीं। सत्रहवीं शताब्दी के चौथे दशक में अकाल की स्थिति में राज्य की ओर से व्यापक स्तर पर राहत का कार्यक्रम चलाया गया था।

4. शाहजहां के काल में दक्षिण भारत में अहमदनगर को जीत कर मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया था और गोलकुण्डा व बीजापुर को मुगलों की आधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा था।

5.4.2 स्वर्ण युग कहलाए जाने के विरोध में तर्क

1. प्रजा के अनवरत शोषण के बल पर ही शाहजहां ने ऐश्वर्य तथा वैभव के नए मापदण्ड स्थापित किए थे। अकेले ताजमहल के निर्माण पर उस समय 3.2 करोड़ रुपये का खर्च आया था। राज्य के बढ़े हुए खर्चों की भरपाई के लिए उसने न केवल भूमि कर कुल उत्पाद के तीसरे भाग से बढ़ाकर कुल उत्पाद का आधा कर दिया था अपितु अनेक अबवाब भी लगाए थे।

2. शाहजहां ने यद्यपि जज़िया का स्थगन कायम रखा था किन्तु उसकी धार्मिक नीति गैर-मुस्लिमों व मुसलमानों में शियाओं के प्रति असहिष्णुतापूर्ण थी। उसने नए मन्दिरों के निर्माण व पुराने मन्दिरों की मरम्मत पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। ईसाई धर्म प्रचारकों के साथ उसका व्यवहार निर्ममतापूर्ण था।

3. दक्षिण भारत में शिवाजी के नेतृत्व में नवोदित मराठा शक्ति के दमन में शाहजहां असफल रहा। उसकी इस गल्ती की सज़ा औरंगज़ेब तथा उसके परवर्ती बादशाहों को भुगतनी पड़ी। मध्य एशिया पर अधिकार करने की उसकी असफल योजना ने राज्य पर भारी आर्थिक बोझ तो डाला ही, साथ ही साथ अजेय कहलाने वाली मुगल सेना इन अभियानों में बार-बार पराजित होकर अपनी प्रतिष्ठा भी खो बैठी। इस काल में मुगलों के हाथ से कान्धार निकल गया था।

4. शाहजहां के काल में जागीरदारी प्रथा के विस्तार से मनसबदारी व्यवस्था चरमरा गई थी और राजपूतों की साम्राज्य के प्रति निष्ठा में कमी आ गई थी। रिश्वतखोरी एक आम बात हो गई थी। दलगत और गुटबन्दी की राजनीति ने निष्ठा और स्वामिभक्ति जैसे शब्दों को बेमानी कर दिया था। साम्राज्य को एकसूत्र में बांधने वाली कड़ियां कमज़ोर हो गई थी।

5. साहित्य-सृजन तथा इतिहास लेखन की दृष्टि से पूर्व की तुलना में अवनति दृष्टिगोचर हो रही थी। अब रामचरितमानस और अकबरनामा जैसे महान ग्रंथों की रचना का युग समाप्त हो गया था। चित्रकला के क्षेत्र में भी

प्राकृतिक रंगों में अभिव्यक्त जहांगीर के युग की मौलिक कल्पनाशीलता का स्थान तैलीय चित्रकला ने ले लिया था जिसमें ऊपरी तड़क-भड़क पर अधिक ध्यान दिया जाता था।

6. बादशाह शाहजहां के जीवित रहते हुए भी उत्तराधिकार के युद्ध की घटना और इससे भी अधिक इसमें बादशाह का अपदस्थ होने के बाद कैद किया जाना, और उसके द्वारा घोषित उत्तराधिकारी दारा शिकोह की पराजय के बाद गिरफ़्तारी, फिर उसको प्राणदण्ड दिया जाना उसके शासनकाल को स्वर्ण युग न कहे जाने के लिए पर्याप्त कारण हैं।

5.5 उत्तराधिकार का युद्ध

5.5.1 शाहजहां की बीमारी के समय उसके पुत्रों की स्थिति

इस्लाम के अन्तर्गत कोई भी शारीरिक व बौद्धिक दृष्टि से स्वस्थ मुसलमान शासक बनने की योग्यता रखता है। इसी कारण मुस्लिम शासकों को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने का वैधानिक अधिकार नहीं था। मुगलों में उत्तराधिकार के नियमो का सुनिश्चित न होना प्रायः शासक की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार हेतु युद्ध का कारण बनता रहा था परन्तु मुगल इतिहास में पहली बार बादशाह के जीवित रहते ही उसके सभी पुत्रों के मध्य उत्तराधिकार का युद्ध, सितम्बर, 1657 में शाहजहां के गम्भीर रूप से बीमार पड़ने के बाद हुआ। शाहजहां की बीमारी के समय उसका परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र, घोषित उत्तराधिकारी तथा पंजाब, उत्तर-पश्चिम प्रान्त का सूबेदार शाह बुलन्द इक़बाल दाराशिकोह उसके पास दिल्ली में था। शाह शुजा बंगाल और उड़ीसा का, औरंगज़ेब दक्षिण का तथा मुराद गुजरात का सूबेदार था।

5.5.2 शहज़ादों के मध्य युद्ध

शाहजहां की बीमारी का समाचार सुनकर दाराशिकोह पर उसके भाइयों ने यह आरोप लगाया कि उसने बादशाह की मृत्यु का समाचार छुपाकर सत्ता अपने हाथों में कर ली है। तीनों भाइयों ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और बादशाहत के लिए अपनी-अपनी दावेदारी पेश की। बादशाह द्वारा उनको अपने-अपने स्थानों पर ही रुके रहने के आदेश को उन्होंने अनसुना कर दिया और इस प्रकार चारों शहज़ादों के मध्य उत्तराधिकार का युद्ध प्रारम्भ हो गया। चारों भाइयों में मुख्य प्रतिद्वन्दी उदारपंथी दाराशिकोह तथा कट्टरपंथी औरंगज़ेब थे। दाराशिकोह को बादशाह शाहजहां का पूर्ण समर्थन प्राप्त था जब कि औरंगज़ेब की ताकत उसकी अपनी सैनिक व कूटनीतिक प्रतिभा तथा उसको कट्टरपंथी मुसलमानों से मिलने वाला समर्थन था। औरंगज़ेब ने मुराद को भी राज्य का आपस में बंटवारा करने का आश्वासन देकर अपनी ओर मिला लिया था और उसने शुजा से भी पत्र व्यवहार कर दारा के विरुद्ध एक समझौता कर लिया था।

1. 14 फ़रवरी, 1658 को पूर्व की ओर से बढ़ रहे शाह शुजा को सुलेमानशिकोह के नेतृत्व में शाही सेना ने बहादुरगढ में पराजित किया।

2. 25 अप्रैल, 1658 को औरंगज़ेब व मुराद की संयुक्त सेना ने राजा जसवंत सिंह के नेतृत्व वाली शाही सेना को धरमत में पराजित किया।

3. धरमत के युद्ध में विजयी होने के बाद औरंगज़ेब की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हो गई। उसके द्वारा इस्लाम की रक्षार्थ युद्ध करने की घोषणा ने अनेक मुस्लिम अमीरों को उसका समर्थक बना दिया था। शाहजहां द्वारा समझौते के सभी प्रस्तावों को औरंगज़ेब ने ठुकरा दिया। शाही सेना औरंगज़ेब की सेना को चम्बल पार करने से नहीं रो सकी। 8 जून, 1658 को फ़तेहपुर सीकरी के निकट सामूगढ़ के निर्णायक युद्ध में औरंगज़ेब की सेना ने दाराशिकोह की सेना को पराजित किया। पराजित दारा शिकोह आगरा पहुंचकर दिल्ली चला गया। औरंगज़ेब ने आगरा के किले पर अधिकार कर लिया और शाहजहां को बन्दी बना लिया।

4. दारा का पीछा करते समय औरंगज़ेब ने धोखा देकर मुराद को कैद करवा दिया। मुराद पर अलीनकीं खाँ की हत्या का आरोप सिद्ध कर उसे प्राणदण्ड दे दिया गया। शुजा को शाही सेना ने खनवा के युद्ध में पराजित कर दिया था और वहां से बंगाल, फिर बंगाल से अराकान भागते समय उसकी हत्या कर दी गई। औरंगज़ेब ने दारा का दिल्ली से लेकर लाहौर, मुल्तान, सिंध, कच्छ और गुजरात तक पीछा किया और जसवंत सिंह व मिर्ज़ा राजा जयसिंह को अपनी ओर कर लिया। 12 मार्च, 1659 को अजमेर के निकट देवरई में दारा शाही सेना द्वारा पराजित हुआ। विश्वासघाती शरणदाता मलिक जीवन ने दारा को बन्दी बनाकर औरंगज़ेब को सौंप दिया। दाराशिकोह पर इस्लाम के शत्रु होने का आरोप सिद्ध कर अगस्त, 1659 में धार्मिक अदालत ने उसे प्राण दण्ड दिया।

5.5.3 औरंगज़ेब का राज्यारोहण

अपने तीनों भाइयों को परास्त कर औरंगज़ेब ने शानदार जुलूस के साथ दिल्ली में प्रवेश किया और 15 मई, 1659 को वहां उसका राज्याभिषेक हुआ। अपदस्थ बादशाह शाहजहां को आजीवन आगरा के लाल किले के मुसम्मन बुर्ज मे कैद रखा गया।

3.5.4 उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगज़ेब की सफलता के कारण

1. औरंगज़ेब ने प्रारम्भ में शुजा और मुराद को अपनी ओर मिलाकर दारा शिकोह के विरुद्ध एक सफल मोर्चा खोल लिया था।

2. स्वयं को इस्लाम का संरक्षक घोषित कर उसने प्रभावशाली मुस्लिम अमीरों तथा उलेमा वर्ग का समर्थन प्राप्त कर लिया था।

3. औरंगज़ेब ने मिर्ज़ा राजा जयसिंह और जसवंत सिंह को भी अपनी ओर करने में सफलता प्राप्त की थी।

औरंगज़ेब ने मौका पाकर अपने तीनों भाइयों को मरवा दिया और शाहजहां के विरुद्ध अपने विद्रोह तथा अपने राज्यारोहण को इस्लाम के संरक्षण हेतु अभियान के रूप में प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की। शाहजहां ने औरंगज़ेब की किसी भी चाल को नाकाम करने में सफलता प्राप्त नहीं की। बागी शहज़ादों के प्रति कठोर कार्यवाही

करने में देर करना उसे बहुत भारी पड़ा। लम्बी बीमारी के बाद अशक्त शाहजहां के जीवन ही में हुए इसः उत्तराधिकार के युद्ध में सबसे योग्य प्रतिभागी होने के कारण औरंगज़ेब का सफल होना कोई आश्चर्य नहीं था।

5. दारा शिकोह की उदारवादी विचारधारा, उसकी हीन सैन्य प्रतिभा और उसकी कूटनीतिक विफलता उसके पतन का मुख्य कारण बनीं। शुजा की विलासिता और मुराद की मानसिक अपरिपक्वता व अनियन्त्रित क्रोधी स्वभाव उनके लिए घातक सिद्ध हुए। कूटनीतिक एवं सैनिक प्रतिभा की दृष्टि से औरंगज़ेब अपने भाइयों में सबसे योग्य था अतः उसके द्वारा मुगलों के तख्त पर अधिकार कर लेना अपने पिता के साथ अन्याय करने व अपने भाइयों की निर्मम हत्या करने के कारण भले ही अनैतिक कहा जा सकता हो किन्तु उसे अस्वाभाविक एवं अप्रत्याशित नहीं कहा जा सकता।

5.6 इस्लाम के संरक्षक के रूप में बादशाह औरंगज़ेब

5.6.1 साम्राज्य में इस्लाम के आदर्शों तथा परम्पराओं की पुनर्स्थापना

उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगज़ेब ने स्वयं को इस्लाम के संरक्षक के रूप में प्रस्तुत कर उलेमा वर्ग तथा मुस्लिम अमीरों का समर्थन प्राप्त किया था और वह उनके सहयोग से अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सफल रहा था। बादशाह बनने के बाद भी उसे इस्लाम के संरक्षक के रूप में अपनी छवि को पूर्ववत बनाए रखना आवश्यक हो गया था।

सिद्धान्ततः वह हिन्दुस्तान जैसे दारुल हर्ब (विधर्मियों का देश) को दारुल इस्लाम (इस्लाम के अनुयायियों का देश) में परिवर्तत करने के लिए वचनबद्ध था। उसके शासन में इस्लाम को राज-धर्म घोषित किया गया। औरंगज़ेब हनाफ़ी सम्प्रदाय का कट्टर सुन्नी मुसलमान था अतः उसने इसी सम्प्रदाय की आस्थाओं व परम्पराओं को अपने राज्य में प्रतिष्ठित करना अपना कर्तव्य समझा। औरंगज़ेब ने अपने दरबार की गैर-मुस्लिम तथा हनाफ़ी मत के प्रतिकूल परम्पराओं को हटा दिया।

1. उसने अपने दरबार में रंग-बिरंगे तथा रेशमी वस्त्रों के पहनने पर पाबन्दी लगा दी।

2. औरंगज़ेब ने संगीत, इतिहास तथा चित्रकला को इस्लाम में वर्जित मानकर उनको राज्य की ओर से दिया जाने वाला संरक्षण समाप्त कर दिया। उसने होली, दिवाली, वसन्त, नौरोज़ जैसे गैर-मुस्लिम उत्सवों का राज्य की ओर से मनाया जाना समाप्त कर दिया। झरोखा दर्शन, तुलादान, पैबोस तथा सिजदा करने जैसी गैर-मुस्लिम परम्पराओं का भी परित्याग कर दिया गया।

3. औरंगज़ेब ने अपने सिक्कों पर कल्मा का अंकित किया जाना समाप्त करा दिया क्योंकि ये सिक्के विधर्मियों के हाथ में भी जाते थे।

4. अपने राज्य में मुसलमानों के धार्मिक व नैतिक जीवन में सुधार लाने के उद्देश्य से उसने मुहतसिबों की नियुक्ति की।
5. औरंगज़ेब ने हज-यात्रा के लिए अपनी मुस्लिम प्रजा को विशेष सुविधाएं दीं। मक्का-मदीना के लिए उसने निरन्तर उपहार भेजे। दीनी तालीम के प्रसार व मुसलमानों के अनाथ, बेसहारा बच्चों और विधवाओं के पालन हेतु उसने विशेष व्यवस्था कराई।

5.6.2 धार्मिक उत्पीड़न की नीति

1. औरंगज़ेब ने सन् 1659 में दाराशिकोह को धार्मिक अदालत से इस्लाम-विरोधी होने के कारण प्राणदण्ड दिलवाया। सन् 1661 में औरंगज़ेब ने दारा के मित्र और प्रसिद्ध शायर व सूफ़ी साधक सरमद को भी उसके उन्मुक्त विचारों के कारण धार्मिक अदालत द्वारा प्राणदण्ड दिलवाया गया। अपने उस्ताद रह चुके मुल्ला शाह क़ादरी को भी उसने उनकी उदार विचारधारा के लिए प्रताड़ित किया।
2. सिक्खों के नवें गुरु तेगबहादुर को बादशाह की धर्म-परिवर्तन की नीति की आलोचना करने और स्वयं धर्म परिवर्तन कर मुसलमान न बनने पर दिल्ली की कोतवाली में प्राणदण्ड दिया गया।
3. औरंगज़ेब जब दक्षिण का सूबेदार था तभी से बीजापुर और गोलकुण्डा के शिया राज्यों के प्रति उसके हृदय में वैमनस्य का भाव था। सन् 1686 में बीजापुर तथा सन् 1687 में गोलकुण्डा पर मुगलों का अधिकार होने के बाद उसने वहां प्रचलित सभी शिया परम्पराओं को समाप्त कर दिया।
4. औरंगज़ेब ने अकबर के मकबरे में बने चित्रों पर चूना पुतवा दिया क्योंकि इस्लाम में चित्रकला का निषेध बताया गया है।
5. मारवाड़ के शासक जसवंत सिंह की सन् 1678 में जमरूद में हुई मृत्यु में औरंगज़ेब का हाथ था। इस शक्शिाली राजपूत शासक की मृत्यु के बाद औरंगज़ेब की धार्मिक उत्पीड़न की नीति और अधिक उग्र हो गई। उसने जसवंत सिंह के नवजात पुत्रों को बलात् मुसलमान बनाने का असफल प्रयास किया जो कि राजपूत स्वतन्त्रता संग्राम का मुख्य कारण बना। सन् 1679 में औरंगज़ेब ने 115 साल के बाद गैर-मुस्लिमों पर लगाया जाने वाला धार्मिक कर जज़िया फिर से लागू कर दिया।
6. औरंगज़ेब ने बलात् एवं धन व पदोन्ति का लालच देकर धर्म परिवर्तन की नीति को प्रोत्साहन दिया। उसने मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियों को सार्वजनिक रूप से अपना धर्म पालन करने तथा त्यौहार मनाने की अनुमति नहीं दी। उसने गैर-मुस्लिमों के विरुद्ध सैनिक अभियानों को जिहाद का नाम दिया और अपने तथाकथित जिहाद के बाद उसने हर बार उनके पूजास्थलों का विध्वंस किया। काशी विश्वनाथ के मन्दिर और मथुरा में कृष्ण-जन्म मन्दिरों के प्रांगण में उसने मस्जिदों का निर्माण कराया। उसने राजपूतों के अतिरिक्त सभी हिन्दुओं के पालकी या घोड़े पर बैठने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। औरंगज़ेब ने मुसलमानों की तुलना में गैर-मुस्लिमों पर जज़िया लगाने के अतिरिक्त

व्यापारिक करों का भी अधिक बोझ डाला। उसके काल में राजपूत मनसबदार तो उच्च पदों पर बने रहे किन्तु मध्यम स्तर के प्रशासनिक पदों पर मुसलमानों का वर्चस्व स्थापित हो गया।

5.6.3 धार्मिक उत्पीड़न की नीति का विरोध

5.6.3.1 जाट प्रतिरोध

औरंगज़ेब ने अपने शासनकाल के पहले दस वर्षों में धार्मिक उत्पीड़न की नीति को सीमित क्षेत्र में ही लागू किया किन्तु इसके बाद बढ़ते हुए हिन्दू प्रतिरोध की प्रतिक्रिया में वह अपने दमन चक्र में और भी निर्मम हो गया। सन् 1669 में मथुरा के फ़ौजदार अब्दुन नबी की धार्मिक उत्पीड़न की नीति के विरोध में तिलपट के गोकुल जाट के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। अब्दुन नबी मारा गया। जाट विद्रोह का दमन करने के बाद केशव राय मन्दिर को ध्वस्त कर दिया गया। गोकुल जाट के दमन के बाद भी राजा राम तथा चूरामन जाट के नेतृत्व में जाट प्रतिरोध अगले 40 वर्षों तक जारी रहा।

5.6.3.2 सतनामी प्रतिरोध

नारनौल के कृषक समुदाय सतनामियों ने अपने धार्मिक अधिकारों की रक्षार्थ मुगल सत्ता का विरोध किया और उनके विरुद्ध कई मोर्चों पर सफलता भी प्राप्त की। बड़ी कठिनाई से मुगलों को सतनामियों का दमन करने में सफलता मिल सकी।

5.6.3.3 सिक्खों का प्रतिरोध

सन् 1675 में गुरु तेगबहादुर द्वारा अपने धर्म की रक्षार्थ बलिदान के लगभग दो दशक बाद उनके पुत्र गुरु गोविन्द ने खालसा की स्थापना कर शान्तिप्रिय सिक्खों को एक लड़ाकू और जुझारू कौम में परिवर्तित कर दिया। उन्होंने आजीवन मुगलों का विरोध किया और पंजाब पर उनकी पकड़ को कमज़ोर किया।

5.6.3.4 राजपूत प्रतिरोध

सन् 1678 में जोधपुर के शासक राजा जसवंत सिंह की मृत्यु के बाद औरंगज़ेब द्वारा उनके मरणोपरान्त पुत्रों को इस्लाम धर्म में दीक्षित करने के प्रयास को राजपूतों ने अपने धर्म पर आघात मानकर मुगलों के विरुद्ध अपना स्वतन्त्रता अभियान छेड़ दिया। धीरे-धीरे विद्रोह की आग पूरे राजपूताना में फैल गई। औरंगज़ेब द्वारा सन् 1679 में जज़िया का फिर से लगाया जाना राजपूतों को स्वीकार्य नहीं था। मेवाड़ के राणा राजसिंह तथा मारवाड़ के दुर्गादास राठौड़ के नेतृत्व में राजपूत स्वतन्त्रता आन्दोलन ने मुगलों की शक्ति को क्षीण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

5.6.3.5 बुन्देला राजपूतों का प्रतिरोध

बुन्देला शासक छत्रसाल ने मुगलों की धार्मिक उत्पीड़न की नीति का विरोध करने तथा अपने धर्म की रक्षार्थ बुन्देलों को संगठित किया और दक्षिण में औरंगज़ेब की व्यस्तता का लाभ उठाकर मुगलों के विरुद्ध मोर्चा खोल दिया। छत्रसाल को बुन्देलखण्ड में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करने में सफलता मिली।

5.6.3.6 मराठा प्रतिरोध

शिवाजी द्वारा प्रतिपादित 'हिन्द स्वराज्य' की अवधारणा का मुख्य आधार अपने धर्म व राजनीतिक हितों की रक्षा करना था। इस विषय पर औरंगज़ेब की दक्षिण नीति तथा ब्लाक पॉच की इकाई चार - 'मराठों के उत्थान के कारण तथा पेशवाओं के अंतर्गत मराठा प्रशासन' के अन्तर्गत विस्तार से चर्चा की जाएगी।

5.6.3.7 औरंगज़ेब की धार्मिक नीति का आकलन

औरंगज़ेब ने अपने राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए मुस्लिम उलेमाओं, अमीरों तथा आम मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं का लाभ उठाया था किन्तु बादशाह बनने के बाद इस्लाम के संरक्षक की उसकी छवि स्वयं उसके लिए और उसके साम्राज्य के लिए सबसे बड़ी समस्या के रूप में उभर कर सामने आई थी। औरंगज़ेब की धार्मिक उत्पीड़न की नीति के देश-व्यापी विरोध ने औरंगज़ेब के लिए मुसीबतों का पहाड़ खड़ा कर दिया था। डॉक्टर अतहर अली और ज़ेड0 ए0 फ़ारूकी जैसे विद्वानों ने औरंगज़ेब द्वारा धार्मिक उत्पीड़न करने के आरोपों को अतिशयोक्तिपूर्ण माना है किन्तु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि मुगल साम्राज्य की आर्थिक अवनति, उसके विघटन और पतन के लिए औरंगज़ेब की धार्मिक उत्पीड़न की नीति काफ़ी हद तक ज़िम्मेदार थी।

5.7 औरंगज़ेब की दक्षिण नीति

5.7.1 औरंगज़ेब का दक्षिण भारत का अभियान और प्रारम्भिक सफलताएं

शाहजहां के शासनकाल में औरंगज़ेब दो बार दक्षिण सूबेदार रह चुका था। सन् 1656 में वह बीजापुर और गोलकुण्डा पर विजय प्राप्त कर उनको मुगल साम्राज्य में मिलाने के लिए प्रयत्नशील था किन्तु उत्तराधिकार के युद्ध में कूद पड़ने के कारण उसे अपना विजय-अभियान अधूरा ही छोड़ना पड़ा था। परन्तु उत्तर भारत में अपनी व्यस्तताओं के कारण वह दक्षिण-विजय के अपने पुराने स्वप्न को साकार करने के लिए समय नहीं निकाल सका था। शिवाजी के अयोग्य उत्तराधिकारी छत्रपति शम्भाजी ने बागी शहज़ादे अकबर को शरण देकर औरंगज़ेब के दक्षिण अभियान के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न कर दी थीं। औरंगज़ेब ने सन् 1682 में दक्षिण के लिए अभियान किया। इस अभियान के मुख्य उद्देश्य थे -

1. बागी शहज़ादे अकबर को कैद करना।
2. बीजापुर तथा गोलकुण्डा के शिया राज्यों पर अधिकार कर वहां पर सुन्नी परम्पराओं का प्रचलन करना तथा मुगल साम्राज्य का विस्तार करना।
3. मराठों की शक्ति का दमन करना।

अगले सात वर्षों में अपने उपरोक्त लक्ष्यों को प्राप्त करने में औरंगज़ेब को ऊपरी तौर पर पर्याप्त सफलता मिली -

1. शम्भाजी के साथ 5 वर्ष बिताकर शहज़ादा अकबर भारत छोड़कर ईरान चला गया।

2. सन् 1686 में मुगलों ने बीजापुर पर तथा सन् 1687 में गोलकुण्डा पर अधिकार कर औरंगज़ेब ने दक्षिण में मुगल साम्राज्य के विस्तार के स्वप्न को साकार किया।

3. सन् 1689 में संगामेश्वर में छत्रपति शम्भाजी को मुगलों द्वारा गिरफ़्तार कर लिया गया और बाद में उसकी निर्ममतापूर्वक हत्या कर दी गई।

इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार के शब्दों में - ऐसा प्रतीत होता था कि औरंगज़ेब ने दक्षिण में वह सब पा लिया जिसके लिए कि वह वहां पर पहुंचा था, किन्तु वास्तव में यह उसके अन्त की शुरुआत थी।

5.7.2 मराठा स्वतन्त्रता संग्राम

1. संगमेश्वर में छत्रपति शम्भाजी अपनी गिरफ्तारी के बाद एक नायक के रूप उभर कर सामने आया। अपनी जान बचाने के लिए न तो वह अपना धर्म परिवर्तित करने के लिए तैयार हुआ और न ही मुगलों की आधीनता स्वीकार करने को। एक अयोग्य शासक के रूप में कुख्यात शम्भाजी अपनी निर्भीक मृत्यु के बाद एक शहीद का सम्मान प्राप्त करने का अधिकारी बन गया। उसकी निर्मम हत्या कर औरंगज़ेब ने अपने लिए मुश्किलों का पहाड़ खड़ा कर दिया।

2. मराठों ने अपने छत्रपति के बलिदान को व्यर्थ न जाने देने के लिए शम्भाजी के छोटे भाई राजाराम के नेतृत्व में छापामार युद्ध नीति का आश्रय लेकर स्थानीय निवासियों के सहयोग से अपना स्वतन्त्रता आन्दोलन छेड़ दिया। धानाजी जाधव और सन्ताजी घोरपड़े ने मुगलों पर अनेक सफल हमले किए। उन्होंने औरंगज़ेब के शिविर तक पर हमले किए। मुगलों को अनेक बार मराठों के विरुद्ध सफलताए मिलीं किन्तु उनमें स्थायित्व नहीं रहा। विख्यात मुगल सेनानायक ज़ुल्फ़िकार खाँ ने जिन्जी के प्रसिद्ध किले पर अनेक बार विजय प्राप्त की परन्तु हर बार मराठों ने उसे वापस जीत लिया। मराठों ने मुगल सेना की रसद सामग्री को लूटकर अपने संसाधन बढ़ा लिए तथा मुगलों का जीवन दूभर कर दिया। मराठा छापामारों से अपनी जान बचाने के लिए अनेक बार मुगलों को उन्हें रिश्वत तक देनी पड़ती थी। रुस्तम खाँ, इस्माइल खाँ और अलीमर्दान खाँ जैसे अनेक मुगल सेनापतियों को मराठों ने कैद किया और भारी जुर्माना लेकर ही उनको मुक्त किया।

3. औरंगज़ेब को यह समझ आ गई कि साम्राज्य विस्तार हेतु उसने मराठों की गतिविधियों पर नियन्त्रण रखने वाले गोलकुण्डा तथा बीजापुर के राज्यों को समाप्त कर अपनी मुश्किलें बढ़ा ली हैं। राजाराम की सन् 1700 में मृत्यु के बाद भी औरंगज़ेब की कठिनाइयों का अन्त नहीं हुआ। राजाराम की विधवा ताराबाई के कुशल नेतृत्व में मराठा सव्तन्त्रता संग्राम पूर्ववत जारी रहा। औरंगज़ेब ने तोरना के किले को छोड़कर मराठों के सभी किलों पर अधिकार तो किया किन्तु उन पर उसकी पकड़ कभी मज़बूत नहीं हो सकी।

दूसरी ओर मराठों द्वारा दक्षिण के छहो मुगल सूबों पर छापे डाले जाते रहे और व्यावहारिक दृष्टि से इन क्षेत्रों पर मराठों का ही अधिकार हो गया।

5.7.3 मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगज़ेब की दक्षिण नीति का दायित्व

1. औरंगज़ेब ने सन् 1686 में बीजापुर तथा सन् 1687 में गोलकुण्डा को मुगल साम्राज्य में मिलाकर दक्षिण में मुगल साम्राज्य का व्यापक विस्तार किया था किन्तु कुछ वर्षों के दक्षिण प्रवास में उसको यह समझ आ गई कि साम्राज्य विस्तार हेतु उसने मराठों की गतिविधियों पर नियन्त्रण रखने वाले इन स्वतन्त्र राज्यों को समाप्त कर अपनी मुश्किलें बढ़ा ली हैं। अब मराठों की शक्ति से उसको अकेले अपने दम पर ही निपटना था।

2. लगातार अपने घरों से दूर रहकर अनजान, दुर्गम एवं अभावग्रस्त क्षेत्र में जन-समर्थन प्राप्त मराठा शत्रुओं की छापामार युद्धनीति का मुगल सेना के पास कोई जवाब नहीं था। सन् 1707 में अपनी मृत्यु से पूर्व औरंगज़ेब दक्षिण में 26 वर्ष बिता चुका था किन्तु इतने समय में उसने केवल निराशा, हताशा, धन-जन तथा प्रतिष्ठा की अपरिमित हानि ही अर्जित की थी।

3. लगातार 26 वर्ष तक दक्षिण में रहने के कारण अपने साम्राज्य के अन्य क्षेत्रों पर औरंगज़ेब की पकड़ अत्यन्त शिथिल हो गई थी। राजपूताना, बुन्देलखण्ड, पंजाब, उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त आदि क्षेत्र व्यावहारिक दृष्टि से मुगलों के अधिकार से निकल गए थे। औरंगज़ेब मुगल साम्राज्य के विघटन का एक मूक दर्शक बनकर रह गया था।

4. दक्षिण में लगातार युद्धों में व्यस्त रहने के कारण धन-जन की अपार हानि के बाद भी मुगल अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सके थे।

5. औरंगज़ेब की असफल दक्षिण नीति प्रशासनिक भ्रष्टाचार, अशान्ति, राजनीतिक अराजकता, गुटबन्दी, षडयन्त्र, आर्थिक संकट, कृषि, उद्योग एवं व्यापार के विकास में बाधा, साहित्य, कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में अवनति के लिए ज़िम्मेदार थी। सर जदुनाथ सरकार ने औरंगज़ेब की दक्षिण नीति और नैपोलियन के स्पेन अभियान (स्पेन के नासूर) के विनाशकारी परिणामों में बहुत समानता पाई है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि औरंगज़ेब ने अपने दक्षिण अभियान से अपने साम्राज्य की कब्र खुद अपने हाथों से खोदी थी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. शाहजहां की दक्षिण नीति।
2. शाहजहां का मध्य-एशिया अभियान।
3. उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगज़ेब की सफलता के कारण।
4. इस्लाम के संरक्षक के रूप में बादशाह औरंगज़ेब।
5. औरंगज़ेब की सिक्खों के प्रति नीति।
6. औरंगज़ेब तथा छत्रपति शम्भाजी।

5.8 सारांश

बादशाह शाहजहां के काल में मुगल समृद्धि तथा वैभव की पराकाष्ठा पर पहुंच गए थे। उसके शासनकाल के अन्तिम वर्षों को छोड़कर साम्राज्य में प्रायः शान्ति बनी रही। अनेक विदेशी यात्रियों तथा इतिहासकारों ने उसके शासनकाल को मुगलकाल का स्वर्णयुग माना है किन्तु दक्षिण भारत छोड़कर शाहजहां को मध्य-एशिया तथा उत्तर-पश्चिम में साम्राज्य विस्तार करने में असफलता का सामना करना पड़ा था। शाहजहां के काल में प्रजा का आर्थिक शोषण बढ़ गया था तथा उत्तराधिकार के युद्ध ने तथा औरंगज़ेब द्वारा उसको अपदस्थ किए जाने की त्रासदी ने उसके शासनकाल की कमियों व दुर्बलताओं को उजागर कर दिया था।

औरंगज़ेब ने इस्लाम के सरक्षक के रूप में उत्तराधिकार के युद्ध में सफलता प्राप्त कर सिंहासन प्राप्त किया था। उसने इस्लाम को राज-धर्म घोषित कर उसके विकास हेतु निरन्तर प्रयास किए किन्तु गैर-मुस्लिमों के प्रति उसकी असहिष्णुता की नीति साम्राज्य में अशान्ति और अनवरत संघर्ष का कारण बनी। उसकी धार्मिक उत्पीड़न की नीति ने मुगलों के परम्परागत स्वामिभक्त राजपूतों व बुन्देलों को उनका शत्रु बना दिया और शान्तिप्रिय सिक्खों को एक लड़ाकू कौम बना दिया। मराठों का उत्कर्ष मुख्यतः उसी की अव्यावहारिक दक्षिण नीति का कुपरिणाम था। औरंगज़ेब की दक्षिण नीति उसके साम्राज्य केलिए एक नासूर बन गई और मुगल साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण बनी।

5.9 पारिभाषिक शब्दावली

तख्त-ए-ताऊस - मयूर सिंहासन।

शान-ओ-शौकत - वैभव, तड़क-भड़क।

नहर-ए-बहिश्त - स्वर्ग की नहर।

अबवाब - अतिरिक्त कर, उपकर।

दारुल इस्लाम - आस्तिकों अर्थात् मुसलमानों का देश।

दारुल हर्ब - विधर्मियों का देश।

पैबोस - चरण चूमना।

सिजदा - साष्टांग प्रणाम।

मुहतसिब - मुसलमानों के धार्मिक एवं नैतिक जीवन के निरीक्षक।

5.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 5.3.3.1.1 दक्षिण-भारत अभियान।

2. देखिए 5.3.3.1.2 मध्य-एशिया तथा उत्तर-पश्चिम सीमा पर अभियान का बिन्दु 1।

3. देखिए 5.3.5.4 उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगज़ेब की सफलता के कारण।

4. देखिए 5.3.6.1 साम्राज्य में इस्लाम के आदर्शों तथा परम्पराओं की पुनर्स्थापना।

5. देखिए 5.3.6.2 धार्मिक उत्पीड़न की नीति का बिन्दु 2 तथा 4.3.6.3.3 सिक्खों का प्रतिरोध।

6. देखिए 5.3.7.1 औरंगज़ेब का दक्षिण भारत का अभियान और प्रारम्भिक सफलताएं का बिन्दु 3 तथा 5.3.7.2 मराठा स्वतन्त्रता संग्राम का बिन्दु 1

5.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Saxena, B. P. – *Shah Jahan of Delhi*

2. Sarkar, Jadunath – *Short History of Arangzeb*

3. Faruki, Z. A. – *Auranzeb and Hus Times*

4. Sardesai, G. S. - *The New History of the Marathas*

5. Sarkar, Jadunath – *Fall of the Mughal Empire*

5.12 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Sarkar, Jadunath – *Studies in Mughal India*

2. Qanungo, K. R. – *Dara Shikoh*

3. Lane Poole, S. – *Medieval India*

4. Sarkar, Jadunath – *Shivaji*

5. Lane Poole, S. - *Aurangzeb*

5.13 निबंधात्मक प्रश्न

उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगज़ेब की सफलता के कारणों का परीक्षण कीजिए।

इकाई छह- मुगलकालीन अर्थव्यवस्था का विकास एवं विस्तार

6.1 प्रस्तावना

6.2 स्रोत

6.3 उद्देश्य

6.4मुगल काल में कृषिअर्थव्यवस्था

6.4.1 मुग़ल कालीन भू-राजस्व व्यवस्था

6.4.1.1 भूमि का वर्गीकरण

6.4.1.2 भू-राजस्व का निर्धारण

6.5 मुग़ल काल में वाणिज्य एवं व्यापार का विकास एवं विस्तार

6.5.1 आंतरिक व्यापार को प्रेरित करने वाले कारक

6.5.2 विदेशी व्यापार को प्रेरित करने वाले कारक

6.5.3 आंतरिक व्यापार संबंधित सामग्रियाँ

6.5.4 विदेश व्यापार संबंधित सामग्रियाँ

6.5.5 व्यापारिक मार्ग

6.5.7 व्यापारी वर्ग एवं समुदाय

6.5.8 शिल्प उत्पादन

6.5.9 मुगल कारखाना

6.6 सारांश

6.7 तकनीकी शब्दावली

6.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न

6.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भारत में मुगलों से पूर्व की तीन शताब्दियों के मुस्लिम शासन के अंतर्गत आर्थिक स्थिति में अनेक मूलभूत परिवर्तन आए थे। परिवर्तन की इन मूलभूत प्रक्रियाओं को मुगलों के आगमन के पश्चात् तीव्रता मिली। 16वीं तथा 17 वीं शताब्दी में आर्थिक गतिविधियों को प्रेरित करने वाले दो महत्वपूर्ण कारक थे। प्रथम, मुगल साम्राज्य की स्थापना तथा दूसरे, यूरोपीय कंपनियों का आगमन। एक वृहद् मुगल साम्राज्य की स्थापना का अर्थ था राज्य द्वारा संसाधनों की मांग में वृद्धि। फिर यूरोपीय कंपनियों के आगमन ने वाणिज्य-व्यापार तथा मुद्रा अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन दिया। उपर्युक्त कारकों का प्रभाव अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में देखा जा सकता है। कृषि के क्षेत्र में नकदी फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहन मिला। गैर-कृषि उत्पादन के क्षेत्र में खनिक उद्योग को बल मिला। आंतरिक एवं विदेश व्यापार के प्रसार ने शिल्प गतिविधियों को गति प्रदान की। इसके परिणामस्वरूप कई क्षेत्र दस्तकारी केंद्रों के रूप में विकसित हुए एवं नगरीकरण की प्रक्रिया को भी बलमिला।

6.2 स्रोत

मुगल काल की अर्थव्यवस्था के अध्ययन के लिए फारसी, राजस्थानी, मराठी तथा दूसरी भाषाओं में सामग्रियाँ उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए मलिकजादा द्वारा लिखित निगार-नामा-ए-मुंशी, अबुल फजल की आईन-ए-अकबरी, युसुफ मीरक की मज़हरे-शाहजहानी, गुजरात के लिए अली मुहम्मद खान कृत मिरआते अहमदी हैं। फिर विदेशी यात्रियों में डच यात्री फ्रांसिस्को पेल्सार्ट की रचना रेमुन्स्ते ऑफ फ्रांसिस्को पेल्सार्ट (जहाँगीरस इण्डिया) तथा बर्नियर की फ्रांसीसी रचना ट्रैवेल्स विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अबुल फजल की आईन-ए-अकबरी फारसी दस्तावेजों की पूरी धरोहर में एक मील का पत्थर है क्योंकि वह आर्थिक महत्व के अनेकों आंकड़े प्रस्तुत करता है। इस प्रकार सल्तनत काल की तुलना में मुगल काल के आर्थिक इतिहास के अध्ययन में बेहतर रूप में स्रोत सामग्री उपलब्ध है। दूसरे भारत में ब्रिटिश शासन के प्रभाव के मुद्दे को लेकर राज के पक्षधरों और राष्ट्रवादियों के बीच चली बहस ने भी मुगल भारत के आर्थिक इतिहास पर राष्ट्रवादियों का ध्यान आकर्षित किया । मोरलैंड की रचना इंडिया ऐट द डेथ आफॅ अकबर इस क्षेत्र में एक अग्रगामी कृति है।

6.3 उद्देश्य

इसइकाईकेअध्ययनकेबाद:

- मुगल काल में कृषि अर्थव्यवस्थाकेबारेमेंजानपाएँगे।
- मुग़ल काल में वाणिज्य के विकास एवं विस्तार के महत्त्व कोसमझपाएँगे।
- मुग़ल काल में व्यापार के विकास एवं विस्तार कीसीमाओंऔरविशिष्टताओंकोसमझपाएँगे।

6.4मुगल काल में कृषि अर्थव्यवस्था

अगर हम मुगलकालीन कृषि अर्थव्यवस्था पर दृष्टिपात करते हैं तो ज्ञात होता है कि सत्रहवीं सदी के आरंभ में भारत विश्व के सबसे आबाद क्षेत्रों में एक था। भारत के विस्तृत भू-भाग, विभिन्न प्रकार की मिट्टियों और पर्यावरणीय स्थिति के कारण यहां कई प्रकार के कृषि उत्पादों का उत्पादन होता था। इनमें प्रथम था खाद्यान्न उत्पादन। यूरोप में जहाँ एक फसल पर आधारित कृषि अर्थव्यवस्था थी वही यूरोप के विपरीत भारत में दो फसलों पर आधारित कृषि अर्थव्यवस्था थी। उत्तर भारत की अधिकांश मौसमी फसलें दो प्रमुख फसल ऋतुओं खरीफ और रबी में उगायी जाती थी। इस काल में जागीरदार तथा 'मदद-ए-माश' प्राप्तकर्त्ता से भी यह अपेक्षा की जाती थी कि वे कृषि के विकास में सक्रिय योगदान दें। अबुल फजल की आइन-ए-अकबरी में रबी (19-21) और खरीफ (17-21) फसलों की एक लंबी सूची दी गयी है। कुछ किसान इनके बीच की लघु अवधि में फसलें उगाकर कभी-कभी तीन फसलें भी उपजा लिया करते थे। बढ़ते हुए नगरीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप इस काल में खाद्यान्नों की मांग बढ़ी।

उसी प्रकार इस काल में नकदी फसल के उत्पादन को भी प्रोत्साहन मिला। फारसी विवरणों में नकदी फसलों को **जिन्स-ए-कामिल** या जिन्स-ए-आला कहा गया है । 16वीं-17वीं शताब्दी की नकदी फसलों में गन्ना, कपास, नील और अफीम प्रमुख थे। एक नवीन नकदी फसल के रूप में तंबाकू को पुर्तगाली अपने साथ लाए थे। शीघ्र ही उसकी खेती देश के लगभग सभी भागों में होने लगी। लगभग 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कॉफी का उत्पादन भी भारत में शुरू हो गया था। इसके साथ ही बंगाल, असम, कश्मीर और पश्चिमी तटीय प्रदेशों में रेशम का उत्पादन होता था, जिनमेंबंगाल मुख्य उत्पादन क्षेत्र था। रेशम के कीड़ो का पालन बंगाल में 15वीं सदी से ही प्रारंभ हो चुका था। 17वीं सदी में एक नई फसल के रूप में मक्का का प्रचलन आरंभ हुआ। इस काल में फलों के नए-नए किस्म विकसित हुए क्योंकि कलम लगाने की पद्धति का विकास हुआ। मुगलों के अधीन राजाओं और राजकुमारों के निजी बगीचे होते थे। उनसे उन्हें आर्थिक लाभ प्राप्त होता था। नकदी फसलों की खेती के कारण कृषि अर्थव्यवस्था का मौद्रीकरण हुआ।यद्यपि किसान अपने खेतों में उत्तम किस्म की खाद्यान्न फसलें तथा नकदी फसलें उपजाते थे परंतु ये फसलें उनके स्वयं के प्रयोग के लिए नहीं होती थीं वरन् भू-राजस्व चुकाने के लिए होती थीं। उनका अपना सामान्य भोजन तो मोटा अनाज था।

मुग़ल काल में कृषि अर्थव्यवस्था का आधार थी। अतः राजकीय आमदनी में वृद्धि के लिए कृषि का विकास आवश्यक था।मुग़ल काल में जनसंख्या कम थी तथा कृष्य भूमि की व्यापक उपलब्धता थी इसलिए राज्य का बल होता था कि किसान भूमिसे बंधे रहें। औरंगजेब के काल के एक फरमान से, जो रसिकदास के नाम से जारी किया गया था, यह ज्ञात होता है कि राज्य की यह चिंता थी कि जिस भूमि को किसान खाली कर गए हैं नए किसानों की सहायता से उसे आबाद किया जाए। राज्य की ओर से अमालगुजारों को यह निर्देश होता था कि वे किसानों को सहायता प्रदान करें तथा फिर राज्य की ओर से किसानों के लिए कृषि ऋण की भी सुविधा थी।

यद्यपि इस काल में खेती के तौर तरीकों में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ परंतु खेतिहर उत्पादन स्थिर नहीं रहा। इस समयपर्याप्त मात्रा में परती जमीन उपलब्ध थी। इसका एक भाग आबाद किया गया तथा अधिक उपजाऊ भूमि को काश्त के तहत पहले लाया गया। फसलों को बदल-बदल कर लगाना तथा बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप नकदी फसल की खेती करना इस युग की खास विशेषताएं है। कृषि मुख्य रूप से वर्षा के जल पर निर्भर थी परंतु कृत्रिम सिंचाई के तरीके भी अपनाए जाते थे। कुओं से पानी निकालने के लिए ब्रेकली, चरस और साकिय जैसी प्रविधि को अपनाया जाता था । तालाब और जलाशयों के अतिरिक्त कुछ सीमा तक नहर सिंचाई के प्रमुख स्त्रोत थे। साथ ही मुगल काल में पशु और पशुधन की प्रति व्यक्ति जनसंख्या भी काफी अच्छी थी।

राज्य कृषि के विस्तार में स्वयं रूचि लेता था। उपज का अतिरिक्त भाग शासक तथा कुलीन वर्ग की आय का मुख्य साधन था। कृषि में अवनति का परिणाम स्वाभाविक रूप में सरकारी आय में कमी होना था। अतः मुगलकालीन ऐतिहासिक साहित्य में इस बात पर बार-बार बल दिया गया कि कृषि उन्नत रहे तथा कृषि उत्पादन में गिरावट नही आ पाए। आईन-ए-अकबरी में अमाल गुजार को खेतिहर का मित्र रहने तथा दरिद्र किसान को अग्रिम धनराशि देकर सहायता करने का निर्देश दिया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मुगल शासक कृषि की उन्नति तथा किसानों की समस्याओं के निवारण के इच्छुक थे, यद्यपि इसमें राजकोष की वृद्धि की भावना प्राथमिक थी। परंतु किसानों के हित में जारी किए गए फरमान स्वाभाविक रूप से एक ओर जमींदार, जागीरदार तथा इजारेदारों तथा दूसरी ओर स्थानीय भू-राजस्व कर्मचारियों के निजी स्वार्थों से टकराते थे। अतः शाही फरमान अप्रभावी सिद्ध हुए तथा व्यावहारिक रूप में पूर्णतया कार्यान्वित नहीं हो सके।

अबुल फजल ने अपने ग्रन्थ'आईन-ए-अकबरी' में मुग़ल कालीन अर्थव्यवस्था पर विस्तार से चर्चा करने के क्रम में ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर भी निगाह डाली है। इसने राज्य की उस चिंता को भी व्यक्त किया है कि किस प्रकार मुग़ल शासक अपनी आमदनी बढ़ाने के लक्ष्य से ग्रामीण जमींदारों पर नियंत्रण कर अधिक-से-अधिक अधिशेष केन्द्रीय खजाने में सुनिश्चित करना चाहतेथे । इस क्रम में किसानों की भी चर्चा हुई है फिर भी आईन-ए-अकबरी में अबुल फ़जल किसानों से संबंधित राजकीय दृष्टिकोण ही व्यक्त करता है।इसलिए किसानों के विषय में अधिक जानकारी के लिए वैकल्पिक स्रोत के रूप में राजस्थान, महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों से प्राप्त भूमि दस्तावेजो का महत्त्व बढ जाता है । फिर हमें पूर्वी भारत की भूमि व्यवस्था के विषय में ब्रिटिश दस्तावेजों से भी सूचना मिलती है।

मुगल अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि एवं कृषको द्वारा निर्मित अर्थव्यवस्था थी। अतः तत्कालीन समय में जनसंख्या का लगभग 85 प्रतिशत हिस्सा गाँवों में निवास करता था, परंतु जैसाकि हम वर्तमान में देखते हैं कि कृषक समूह भी कोई एकाश्म नहीं था बल्कि इनके भी कई स्तर मौजूद थे। मुगलकालीन कृषक समुदाय स्पष्ट रूप से तीन वर्गों में विभाजित था **खुदकाश्त, पाहिकाश्त** तथा **मुज़ारियान**।कृषकों में सबसे प्रभावी समूह स्थानीय किसानों का होता था। ये गाँव के स्थायी वशिंदे होते थे। इनके अतिरिक्त भूमिहीन कृषकों का एक वर्ग भी प्रत्येक गांव में पाया जाता था।

1. स्थानिक समूह में **खुदकाश्त** एवं **रियायती** होते थे। खुदकाश्त स्वामी किसानों का वर्ग था। खुदकाश्त किसान विशेषाधिकार समूह का प्रतिनिधित्व करते थे। खुदकाश्त राजस्व तो रियायती दर से चुकाते थे, साथ ही ये विवाह कर एवं अन्य प्रकार के शुल्कों से भी मुक्त होते थे।खुदकाश्त किसान को मुगल सरकारी दस्तावेजों में **मालिक-ए-जमीन** अर्थात् भूमि का स्वामी भी कहा गया है। वे मुगल साम्राज्य के विभिन्न भागों में विभिन्न नामों से जाने जाते थे। उत्तर भारत में इन्हें खुदकाश्त, महाराष्ट्र में मिरासदार तथा राजस्थान मे घरहुल कहा जाता था। प्राथमिक जमींदार को भी खुदकाश्त किसान को अपनी संपत्ति बेचने का अधिकार था |फिर 'रियायती समूह' में खुदकाश्त समेत कुछ अन्य तत्व भी शामिल थे। इनमें कुछ अन्य ऊँची जाति के लोग यथा ब्राह्मण. राजपूत, महाजन, पटेल, चौधरी, कानूनगो वगैरह स्थानीय अधिकारी भी शामिल थे। रियायती समूह को कर में छूट मिलती थी। दस्तावेजों के अनुसार, राजस्थान में इन वर्गों के लोग पैदावार का चौथाई भाग मालगुजारी के रूप में देते थे।

2. समकालीन स्रोतों से खुदकाश्त किसान के सामानान्तर पाहिकाश्त किसानों का भी विवरण प्राप्त होता था।**पाहिकाश्त** किसानों से तात्पर्य उन कृषकों से था जो दूसरे गांवों में जाकर कृषि कार्य करते थे तथा वहां उनकी अस्थायी झोपड़ियां होती थी। दूसरे शब्दों में पाहिकाश्त किसानों की जोत उस गांव में नहीं होती थी, जिसमें उनका स्थायी निवास था बल्कि वे दूसरे गांव में अस्थायी निवास ग्रहण करके खेती करते थे। चूंकि ये नए गाँव को बसाने के कार्य से जुड़े हुए थे अतः अनेक अवसरों पर इन्हें रियायती दर पर पट्टे मिलते थे जिन्हें संपूर्ण दर पर तीसरे अथवा पाँचवे साल या उसके बाद अदायगी करना पड़ती थी। पाहिकाश्त समूह में दलित अथवा निम्न जाति के लोग भी शामिल होते थे। चूंकि इन जातियों को भूमि पर नियंत्रण नहीं दिया जाता, ये श्रमिक के रूप में कार्य करने पर मजबूर होते। अतः वे बंजर भूमि अथवा उजड़े गाँव को आबाद करने जैसे कार्य में भूमिका निभाकर भूमि पर अपने नियंत्रण को स्थापित करना चाहते थे ।

3. फिर किसानों का एक अन्य वर्ग भी मौजूद था। इन्हें रैयती किसान कहा जाता। इनके लिए प्रयुक्त फारसी शब्द **'मुजारियान'**है। राजस्थान में इन्हें 'पालती' तथा महाराष्ट्र में उन्हें 'कुन्बी' कहा जाता था । रैयती किसानों के समूह में सामान्यतः मध्यवर्ती जातियाँ होती थीं। इन किसानों पर मालगुजारी रैयती दस्तूर के आधार पर लगाया जाता था। अर्थात् इसकी दर अधिक होती थी।मुज़ारियान किसान वे किसान होते थे जिनके अधिकार में इतनी कम भूमि होती थी कि वह भूमि उनके परिवार के संपूर्ण श्रम को काम में लाने के लिए अपर्याप्त थी। अतः वे अपनी भूमि पर खेती करने के अतिरिक्त खुदकाश्त किसानों से किराए पर जमीन लेकर भी उस पर खेती करते थे।

किसानों के उपर्युक्त विभिन्न वर्गों के अतिरिक्त गाँव की जनसंख्या में भूमिहीन श्रमिकों एवं मजदूरों का एक बड़ा वर्ग भी शामिल था। भूमिहीन एवं सेवक वर्गों में अधिकतर 'कमीन' अथवा निम्न श्रेणी के लोग शामिल होते थे तथा एक अच्छा-खासा भाग दलितों का होता था। इनके अलावा गाँव में अन्य सेवा वर्ग के लोग यथा लुहार, बढ़ई, कुम्हार, चर्मकार, नाई, धोबी आदि भी शामिल थे।यह वर्ग स्पष्टतः स्वयं किसान तो नहीं था परंतु किसानों के साथ

मिलकर कृषि श्रमिक जनसंख्या की रचना करता था।बाजार के लिए वस्तु उत्पादन के फलस्वरूप कृषक वर्ग के भीतर आर्थिक वर्गीकरण को प्रोत्साहन मिला तथा ग्रामीण जनसंख्या धनी, मध्यम, निर्धन आदि वर्गों में विभाजित होने लगी।

इस प्रकार ग्रामीण जनसख्या के कई स्तर विद्यमान थे। इस काल में ग्रामीण क्षेत्र में नये तत्वों का प्रवेश हुआ तथा इन तत्वों ने स्वनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को गहरा धक्का पहुँचाया। इनमे एक थे मुगल अमीर एवं अधिकारी जो ग्रामीण भूमि का लेखा-जोखा कर भूराजस्व का आकलन करते तथा राजस्व की वसूली जीन्स के साथ-साथ नकद के रूप में करते थे । साथ ही वे राजकीय आय में वृद्धि के लिए गैर-आबाद भूमि को आबाद करने में रूची लेते थे । दूसरी तरफ किसान भूराजस्व के अधिभार को पूरा करने तथा नवीन सुविधाओं का लाभ उठाने (राज सहायता) के उद्देश्य से नकदी फसल (जिन्स-ए-कामिल) की ओर आकर्षित हुए। इस कारण ग्रामीण क्षेत्र में व्यापारी एवं मौद्रिक संबंधों का प्रवेश हुआ। अब किसान एवं शिल्पी बाजार के लिए भी उत्पादन करने लगे। इस कारण कृषि एवं शिल्पों की जो परस्पर निर्भरता थी वह भंग हुई।

6.4.1 मुग़ल कालीन भू-राजस्व व्यवस्था

मुग़ल काल में सम्राट अकबर ने भू-राजस्व सुधार की प्रक्रिया को बढावा दिया,जिसका आरंभ सल्तनत काल में ही हो चुका था। यद्यपि भारत में भूमि पैमाईश की पद्धति बहुत पहले से ही प्रचलित रही थी परंतु एक लंबे अंतराल के पश्चात अलाउद्दीन खिलजी ने इस पद्धति को पुनर्जीवित किया। फिर आगे शेरशाह के अंतर्गत यह पद्धति सुधार की प्रक्रिया से गुजरती रही। अपने शासन के आरंभिक दस वर्षों में अकबर ने शेरशाह की पद्धति को ही जारी रखा। किंतु फिर क्रमिक भूल और सुधार की प्रक्रिया से गुजरते हुए उसके शासन के 24वें वर्ष में (1579 में) दहसाला नामक प्रणाली का विकास हुआ।

अकबर के अंतर्गत भू-राजस्व सुधार की प्रक्रिया के क्रम में निम्नलिखित परिवर्तन देखे जा सकते हैं। सर्वप्रथम हम भूमि पैमाइशके पैमाने में अंतर पाते हैं। शेरशाह के अंतर्गत भूमि की पैमाईश में पटुए की रस्सी से बनी ज़रीब का प्रयोग होता था परंतु अकबर ने उसके बदले नये जरीब में बाँस से जुड़े हुए लोहे के छल्ले का प्रयोग आरंभ किया। इस नये जरीब की मानकता बेहतर थी क्योंकि पटुए की रस्सी की वह पुरानी जरीब भीग जाने पर सिकुड़ जाती थी तथा इस कारण से इसका कही दुरूपयोग होता था। उसी प्रकार शेरशाह के अंतर्गत भूमि की पैमाईश के लिए गज-ए-सिकंदरी का प्रयोग होता रहा परंतु अकबर ने उसे छोड़कर माप का एकनया पैमाना गज-ए-इलाही लागू किया। यह तैंतीस इंच का था। इस प्रकार यह पिछले गज से 14 प्रतिशत बड़ा था।

6.4.1.1 भूमि का वर्गीकरण

भूमि की पैमाईश के पश्चात् आवश्यक चरण था भूमि का वर्गीकरण। इस दिशा में भी अकबर के अंतर्गत परिवर्तन लाया गया। शेरशाह ने भूमि के वर्गीकरण में उत्पादकता को आधार बनाया तथा इस आधार पर भूमि की तीन कोटियाँ निर्धारित की गई- उत्तम, मध्यम और निम्न। फिर उन तीनों का औसत उत्पादन निकाल कर राज्य की दर निर्धारित की

गई। परंतु इस पद्धति में एक दोष था। भूमि की कुछ ऐसी भी किस्में थीं जो उत्पादकता की दृष्टि से बेहतर थीं परंतु इनमें उत्पादन की निरंतरता नहीं थी। यही वजह है कि अकबर ने भूमि के वर्गीकरण में पहला आधार उत्पादन की निरंतरता को बनाया तथा इस आधार पर भूमि की चार किस्में निर्धारित की गई- **पोलज, परती, चाचर और बंजर**।

1. जिस जमीन पर प्रत्येक वर्ष खेती होती थी, उसे पोलज कहा जाता था।
2. जिस जमीन पर एक वर्ष खेती होती थी परंतु दूसरे वर्ष खाली छोड़ दिया जाता था उसे परती कहते थे।
3. जो जमीन बाढ़ वगैरह के कारण तीन-चार सालों से पड़ी हुई थी उन्हें चाचर कहा जाता था। उसमें खेती आरंभ करने पर मालगुजारी की दर कम होती थी, जो क्रमिक रूप से बढ़कर तीसरे साल पूरी दर पर पहुँच जाती थी।
4. खेती न करने लायक परती जमीन बंजर कहलाती थी। इस पर खेती को प्रोत्साहन देने के लिए मालगुजारी की दर पाँचवें साल में लागू करने की व्यवस्था की गई।

इसके अतिरिक्त भूमि वर्गीकरण का दूसरा आधार उत्पादकता को भी बनाया गया। इस आधार पर भूमि की तीन किस्में निर्धारित की गई **अच्छी, मध्यम और बुरी**।

6.4.1.2 भू-राजस्व का निर्धारण

फिर भू-राजस्व के निर्धारण में भी एक व्यावहारिक युक्ति अपनायी गई। पहले भू-राजस्व केनिर्धारण में एक वर्ष के उत्पादन को आधार बनाया जाता था। परंतु अब अधिक स्पष्ट उत्पादन के आंकड़े प्राप्त करने के लिए प्रत्येक परगने में पिछले दस सालों के दौरान जोते और बोए गए क्षेत्रों तथा फसलों के उत्पादन का पता लगाया गया और उसके दसवें हिस्से पर सालाना राजस्व निर्धारित किया गया। उसी तरह राज्य के द्वारा मांगी गई भू-राजस्व की रकम को नकद में बदलने के लिए भी अधिक व्यावहारिक युक्ति अपनायी गई। शेरशाह के काल में भू-राजस्व का नकद में परिवर्तन के लिए राजधानी तथा आसपास के क्षेत्र में प्रचलित मूल्य को आधार बनाया जाता था और फिर इसी दर पर नकद राशि निर्धारित की जाती थी। अतः इसका एक स्वाभाविक दुष्परिणाम यह था कि किसानों को नकद भूराजस्व के रूप में उनके अंश से ज्यादा देना पड़ता था। यही वजह है कि अकबर के काल में निर्धारित क्षेत्र को विभिन्न दस्तूरों में विभाजित करदिया गया। दस्तूर के विभाजन का आधार यह था कि जहाँ मूल्य की प्रवृत्ति एक जैसी रही हो। फिर प्रत्येक दस्तूर में दस वर्षों के मूल्यों का औसत निकाला गया और फिर इसी के आधार पर राज्य का अंश निर्धारित किया गया। यही वजह है कि यह व्यवस्था **आईन-ए-दहसाला** के नाम से जानी जाती है। यह व्यवस्था दस वर्षों की औसतन पैदावार और कीमतों के आधार पर तय किया गया बंदोबस्त था। राज्य की इस व्यवस्था से यह लाभ हुआ कि जैसे ही फसलों की रोपाई बुआई पूरी होती और जोते बोए गये क्षेत्र की पैमाईश संपन्न होती थी वैसे ही उसे अपनी संभावित आय का एक मोटा अंदाजा हो जाता था। एक हद तक यह व्यवस्था किसानों के लिए भी लाभदायक थी। लेकिन इसका मतलब यह भी था कि खेती बाड़ी में नुकसान होने का खतरा मुख्य रूपसे किसानों को झेलना पड़ता था।

जब्त पर आधारित दहसाला व्यवस्था लाहौर से इलाहाबाद के विस्तृत क्षेत्र में तथा साथ ही गुजरात, मालवा एवं बिहार और मुल्तानके कुछ हिस्सों में लागू की गई। जब्त के अलावा कुछ अन्य प्रकार की पद्धतियाँ भी प्रचलित थीं। जैसे - **कनकूत, नस्क और बटाई**। कनकूत अनुमान पर आधारित एक पद्धति थी। कनकूत पद्धति में जरीब से या कदमों से पूरी जमीन माप ली जाती थी और खड़ी फसलों को देखकर पैदावार का अंदाजा लगाया जाता था। नस्क के स्वरूप के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। एक दृष्टिकोण के अनुसार यह संपूर्ण गाँव पर सामूहिक रूप से लगाया गया राजस्व निर्धारण था परंतु इस संबंध में मान्य दृष्टिकोण यह है कि यह पिछले राजस्व निर्धारण पर लगाया गया एक अनुमान था। किसानों को जब्त या बटाई किसी भी पद्धति से किए गए पिछले राजस्व निर्धारण पर आधारित अनुमान के आधार पर मालगुजारी बता दी जाती थी। इस पद्धति के अधीन सालाना पैमाईश या मूल्य निर्धारण से बचा जा सकता था। ऐसा प्रतीत होता है किधीरे-धीरे जब्त पर आधारित नस्क मानक पद्धति बन गया, लेकिन विकल्प के रूप में बटाई पद्धति हमेशा मौजूद रही। बटाई तीन प्रकार की होती थी। एक प्रकार की बटाई 'भावली', कहलाती थी। इसमें फसलों को काट कर ढेर लगा दिया जाता था और फिर इसे राज्य और किसान के बीच बाँट लिया जाता था। दूसरी किस्म थी खेत बटाई। इसमें खेतों को जोतने-बोने के बाद बाँट लिया जाता था। तीसरी थी लांग बँटाई। इसमें अनाज तैयार करके उसके ढेर लगा दिए जाते थे और फिर उसे बाँट लिया जाता था। इस पद्धति के सुचारू रूप से काम करने के लिए बहुत से समझदार निरीक्षकों की जरूरत होती थी। अन्यथा धोखाधड़ी की गुंजाईश होती थी।

जैसाकि हम जानते हैं कि भू-राजस्व प्रणाली राज्य की वित्त व्यवस्था का आधार स्तंभ थी। अतः ऐसा माना गया कि सभी मध्यकालीन शासकों का प्रयत्न भू-राजस्व की वसूली में यथासंभव अधिक से अधिक वृद्धि करने का ही रहा। परंतु वास्तविकता यह है कि मुहम्मद बिन तुगलक के काल से ही बार-बार जोरदार शब्दों में कहा गया कि भू-राजस्व की मांग अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है और इसलिए भू-राजस्व में और वृद्धि तभी संभव है जब खेती का विस्तार हो और उसमें सुधार किए जाएँ। कृषि का विस्तार एवं सुधार मुगल शासन का एक प्रमुख उद्देश्य था। उदाहरण के लिए राज्य बंजर जमीन पर कृषि को प्रोत्साहन देता था। जब बंजर जमीन पर कृषि शुरू की जाती थी तो चार साल तक उस पर रियायती दरों से मालगुजारी ली जाती थी। आईन-ए-अकबरी के अनुसार अमालगुजार नामक अधिकारी को बंजर भूमि में कृषि को प्रोत्साहन देने का आदेश जारी किया गया था। अमालगुजार को यह निर्देश दिया गया था कि सूखा तथा बंजर जमीन में खेती करने के लिए बीज, खेती के औजार वगैरह के लिए कृषि ऋण या तकावी देने की व्यवस्था की जाए। कुएँ खोदने और उसकी मरम्मत के लिए भी इस प्रकार का ऋण सुलभ था। श्रेष्ठ या नकदी फसलों की अभिवृद्धि के लिए भी रियायतें दी जाती थीं। इस प्रकार राज्य कृषि के विस्तार और सुधार को बढ़ावा देता था और उससे प्रतिफलित लाभ मेंहिस्सेदारी करता था।

अब अगर हम इस काल में भू-राजस्व प्रशासन पर दृष्टिपात करते हैं तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि भू-राजस्व निर्धारण प्रत्येक किसान के साथ होता था अथवा संपूर्ण गाँव के साथ। यह एक विवादास्पद मुद्दा है परंतु इस संबंधों में

मान्य विचार यह है कि राज्य का बल इस बात पर था कि भू-राजस्व का निर्धारण अलग-अलग किसानों के द्वारा की गई वास्तविक खेती के आधार पर किया जाए। इसकेअलावा राज्य ने किसानों को सीधे राज्य की अदायगी करने के लिए प्रोत्साहित किया। परंतु यहाँ राज्य का उद्देश्य किसानों का कल्याणकरना कम तथा राज्य के अंश में वृद्धि करना अधिक था। प्रत्येक किसान पर निर्धारण से राज्य को उत्पादन की वास्तविक स्थिति कीसूचना मिल जाती जबकि सामूहिक मालगुजारी निर्धारण से गांव की कृषि की सच्ची स्थिति पर पर्दा पड़ जाता था। फिर भी जमींदारी तत्वों को दबाना पूरी तरह संभव नहीं हुआ। काफी बड़ा क्षेत्र जमींदारों तथा स्थानीय राजाओं के नियंत्रण में था और ये लोग पेशकश के तौर पर केवल निर्धारित रकम अदा किया करते थे। अकबर जमींदारों का सहयोग प्राप्त करने में बहुत हद तक सफल रहा लेकिन यह बात मुख्य रूप से लाहौर से लेकर इलाहाबाद तक के सुदृढ़ नियंत्रण वाले क्षेत्र पर ही लागू होती थी। जमींदारों का सहयोग प्राप्त करने के लिए अकबर ने उन्हें उनके नियंत्रण वाले इलाकों में पारंपरिक कर वसूलने की छूट दे दी और साथ ही मालगुजारी कर वसूली का काम भी उन्हें सौंप दिया जिसके लिए उन्हें उगाही की राशियों का अंश दिया जाता था। इस प्रकार भू-राजस्व का निर्धारण यद्यपि अलग-अलग किसानों के साथ किया गया परंतु उसकी वसूली का अधिकार गांव के मुखिया, जमींदार या दोनों को दे दिया गया।

6.5 मुग़ल काल में वाणिज्य एवं व्यापार का विकास एवं विस्तार

मुगल शासन ने भारत में कुछ ऐसे कारकों को जन्म दिया, जिसके परिणामस्वरूप आंतरिक एवं बाह्य व्यापार दोनों को प्रोत्साहन मिला।

6.5.1 आंतरिक व्यापार को प्रेरित करने वाले कारक

1. साम्राज्य निर्माण के परिणामस्वरूप भारतीय उपमहाद्वीप का एक बड़ा क्षेत्र मुगल साम्राज्य के अंतर्गत संगठित होना ।

2. कानून व्यवस्था की सुदृढ़ स्थिति।

3 . महत्वपूर्ण मार्गों का विकास।

4. शेरशाह के अंतर्गत मुद्रा का मानकीकरण।

5. मुगल शासकों, विशेषकर जहाँगीर, द्वारा व्यापारियों को सुरक्षा प्रदान करना ।

6. अनेक उत्पादन केन्द्रों का विकास, गुजरात तथा बंगाल में सूतीवस्त्र तथा मलमल का उत्पादन, कश्मीर, बंगाल, बनारस में रेशमी वस्त्रों का उत्पादन, कपड़ों की रंगाई एवं छपाई का विकास, लाहौर, आगरा तथा सीकरी में कालीन निर्माण को प्रोत्साहन।

7. एक विकसित वित्त व्यवस्था (हुण्डी व्यवस्था) तथा 'बीमा पद्धति' का विकास।

6.5.2 विदेशी व्यापार को प्रेरित करने वाले कारक

1. एक लंबे काल के बाद काबुल और कंधार का भारतीय साम्राज्य से जुड़ जाना।

2. यूरोपीय कंपनियों की भूमिका तथा भारत का एक वृहद व्यापारिक नेटवर्क से जुड़ना।

3. मुगल शासकों के द्वारा वाणिज्य-व्यापार में व्यक्तिगत रूचि लेना। (कुछ मुगल शासकों, राजकुमारों तथा अमीरों के निजीजहाज चलते थे।)

4. इस काल में मुगल साम्राज्य, सफवी साम्राज्य, ओटोमन और मंचू साम्राज्य द्वारा अपने-अपने क्षेत्र में वाणिज्य व्यापार को प्रोत्साहन दिया गया।

परंपरागत रूप में ऐसा माना जाता था कि मुगल मध्य एशिया से आए थे इसलिए वे व्यापार के प्रति उदासीन थे। परंतु हाल के अनुसंधान में यह स्थापित होता है कि मध्य एशियाई राज्य घास से भरे वृक्षहीन विस्तृत मैदान (स्टेप) में पड़ते थे, जिसमें कृष्य भूमि का अभाव था इसलिए उनसे होकर पूरब से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण जाने वाली सड़कों के उस जाल के महत्व के प्रति वे और भी जागरूक थे जिन पर व्यापारिक समूहों का आवागमन होता था। यही वजह है कि मुगल शासकों ने वाणिज्य-व्यापार के विकास में व्यक्तिगत रूचि दिखायी। उदाहरण के लिए जहाँगीर के द्वारा व्यापारियों को अतिरिक्त सुरक्षा प्रदान की गई। फिर यातायात तथा संचारव्यवस्था के विकास ने भी व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया। आंतरिक व्यापार को सड़कों का एक जाल सुगम बनाता था। शेरशाह के पश्चात् लगभग सभी महत्वपूर्ण शासकों ने यातायात सुविधाओं को बढ़ाने का प्रयत्न किया। भारत में परिवहन का प्रबंधनउस काल के यूरोप की तुलना में बेहतर था। मुख्य सड़कों पर आठ-आठ या दस-दस मीलों की दूरी पर सराय बने हुए थे। उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त एक ऐसी वित्त व्यवस्था के विकास से भी माल के संचालन में सुविधा हुई जिसके अधीन धन को एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से पहुँचाया जा सकता था।

मुद्रा प्रणाली, बैंकिंग एवं बीमा के विकास को कृषि अर्थव्यवस्था तथावाणिज्य व्यापार में होने वाले परिवर्तनों के साथ जोड़कर देखाजा सकता है । अब चूंकि राज्य ने भू-राजस्व की वसूली में नकद वसूली पर विशेष बल दिया। इसलिए मुद्रा प्रचलन को प्रोत्साहन मिला। शेरशाह के काल में मानक मुद्रा के रूप में चांदी का सिक्का रूपया तथा तांबे का सिक्का दाम स्थापित हो गया था। किंतु मुद्रा व्यवस्था को वास्तविक रूप में स्थायित्व अकबर के काल में मिला। इस काल में तांबे, चांदी एवं सोने की मानक मुद्रा स्थापित हुई लेकिन चांदी का सिक्का रूपया और तांबे का सिक्का दाम का ही अधिक प्रचलन था। अबुल फजल यह सूचित करता है कि सिक्कों को टंकन के लिए राज्य द्वारा टकसाल स्थापित थे। सोने चांदी एवं तांबे की मुद्रा की टंकन के लिए क्रमशः 4, 14 और 42 टकसाल कार्यरत थे। मुद्राओं के प्रचलन के विषय में एक विदेशी यात्री विलियम हॉकिन्स का यह आकलन था कि जहांगीर के शासन के आरंभ लगभग ढाई सौ करोड़रूपये प्रचलन में थे। मुगलकालीन मुद्रा अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी सफलता यह थी कि शासन के आरम्भ से लेकर अंत तक चांदी की मानक मुद्रा में स्थिरता बनी रही।

विकसित मुद्रा व्यवस्था ने बैंकिंग पद्धति को भी प्रोत्साहन दिया उस काल में बैंकिग व्यवस्था का संचालन सर्राफों के अधीन होता था। सर्राफ लोगों से पैसे लेते थे तथा उधार ब्याज भी देते थे फिर सर्राफ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में

मुद्रा के आवगमन को हुण्डी व्यवस्था के माध्यम से सुरक्षा भी देते थे। हुण्डी व्यवस्था एक प्रकार से आधुनिक चेक प्रणाली (ड्राफ्ट) पर आधारित थी अर्थात् व्यापारी सर्राफा के पास अपनी रकम जमा करवाते थे तथा बदले में हुण्डी प्राप्त करते थे। हुंडी में प्रायः बीमें का भी समावेश होता था, जो माल की कीमत, गंतव्य, परिवहन की किस्म आदिके अनुसार अलग-अलग होती थी। हुण्डी के बदले उन्हें थोड़ा भुगतान करना होता था फिर वे दूर-दराज के क्षेत्रों में नकद के बदले हुण्डी का ही उपयोग करते थे। ऐसा माना जाता है कि इस काल में अहमदाबाद में व्यापारीअधिकांशतः हुण्डियों के माध्यम से ही भुगतान करते थे।सिपाहियों के वेतनों के भुगतान के लिए अमीर भी हुडियों का प्रयोग करते थे।

फिर इस काल में मुद्रा अर्थव्यवस्था के विकास के साथ बीमा व्यवस्था को भी प्रोत्साहन मिला। मुगलकाल के एक लेखक सुजानराय खत्री इस काल में विकसित बीमा व्यवस्था की ओर संकेत करता है। बीमा के माध्यम से व्यापारिक वस्तुएं तथा नकद दोनों की सुरक्षा प्रदान की जाती थी। फिर वे सर्राफ जो हुण्डी जारी करते थे नकद एवं वस्तुओं पर बीमा के माध्यम से सुरक्षा प्रदान करते थे।

6.5.3 आंतरिक व्यापार संबंधित सामग्रियाँ

इस काल में खाद्य पदार्थों तथा तरह-तरह के वस्त्र उत्पादों का व्यापार अंतक्षेत्रीय व्यापार का मुख्य घटक था। बंगाल शक्कर और चावल के साथ-साथ बेहतर किस्म के मलमल तथा रेशम का भी निर्यात करता था। कोरोमंडल तट वस्त्र उत्पादन का एक केंद्र था तथा गुजरात एवं दक्कन से उसका व्यापार चलता था। गुजरात विदेशी माल का प्रवेश द्वार था। वहां से बेहतरीन सूती वस्त्र और रेशमी कपड़ा उत्तर भारत को भेजा जाता था। उसे खाद्यान्न तथा रेशमी कपड़ा बंगाल से मिलता था तथा मालाबार से काली मिर्च का आयात करता था। उत्तर भारत विलासिता की सामग्री का आयात करता था तथा नील और खाद्यान्नों का निर्यात करता था। हस्त शिल्प उत्पादन का एक और केंद्र लाहौर था। वह कश्मीर की विलासिता की सामग्री, शालों, गलीचों आदि का वितरण केंद्र भी था। पंजाब और सिंध के उत्पाद सिंध नदी से होकर बाहर ले जाए जाते थे। एक ओर तो उसका व्यापारिक संबंध काबुल और कंधार से था और दूसरी ओर दिल्ली तथा आगरा से। इस प्रकार हम देखते है कि उस काल में अंतक्षेत्रीय व्यापार के मुख्य घटक में खाद्य सामग्रियां तथा विलासितापूर्ण वस्तुएं दोनों शामिल थीं

6.5.4 विदेश व्यापार संबंधित सामग्रियाँ

काबुल का संपर्क मध्य एशिया से तथा कंधार का संपर्क पश्चिम एशिया से था। 17वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक भारतमें आयात के प्रमुख मद घोड़े थे । इनका भुगतान नील एवं वस्त्र से किया जाता था। वहीं निर्यात की प्रमुख मद मसाले तथा नील थीं। किंतु 17वीं सदी के उत्तरार्द्ध में आयात तथा निर्यात की संरचना में परिवर्तन आ गया। निर्यात की प्रमुख मद बन गए -वस्त्र, जबकि आयात की प्रमुख मद के रूप में चाँदी स्थापित हुई । इस काल में यूरोपीय कंपनियों ने आयात तथा निर्यात की संरचना में परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। पुर्तगाली कंपनी ने मसालों के निर्यात पर ही

बल दिया था किंतु ब्रिटिश तथा डच कंपनियों ने भारतीय सूती वस्त्र के लिए एक बड़ा बाजार तलाशा। डच कंपनी कोरोमंडल तट से बड़ी मात्रा में वस्त्रों का निर्यात करती थी

6.5.5 व्यापारिक मार्ग

16वीं सदी तथा 18वीं सदी के बीच का काल विदेश व्यापार के विकास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण काल है। इस काल में कतिपय कारकों ने विदेश व्यापार को भी प्रोत्साहन दिया। मुगलों के अंतर्गत काबुल तथा कंधार भारतीय साम्राज्य के अंग बन गए थे। ये दोनों क्षेत्र क्रमशः पश्चिम एशिया तथा मध्य एशिया के महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे। इस काल में स्वयं शाही घराना तथा कुछ महत्वपूर्ण कुलीनों के द्वारा वाणिज्य व्यापार के विकास में विशेष रूचि ली गई। प्रमुख अमीरों के भी अपने जहाज होते थे, जो लाल सागर के बंदरगाहों और दक्षिण पूर्व एशिया की नियमित यात्रा करते थे उदाहरण के लिए जहाँगीर, नूरजहां तथा शाहजादा खुर्रम के पास अपने जहाज थे, जो सूरत और लाल सागर के बंदरगाहों के बीच चलते थे। व्यापार के विकास का एक कारण इस काल में तीन शक्तिशाली एशियाई राज्यों-तुर्की, सफवी और मुगल राज्यों का उदय था। चीन के मिंग साम्राज्य की भूमिका की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इन साम्राज्यों ने न केवल कानून और व्यवस्था स्थापित करके वाणिज्य-व्यापार तथा वस्तु निर्माण के अनुकूल अवस्था उत्पन्न की, बल्कि शहरीकरण तथा अपनी-अपनी अर्थव्यवस्था के मौद्रीकरण में भी सहायता दी। उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त यूरोपीय कंपनियों के आगमन ने विदेश व्यापार को गति प्रदान की।

स्थल मार्ग से भारत का विदेश व्यापार मुख्यतः अफगानिस्तान के रास्ते होता था। मध्य एशिया से होने वाले व्यापार पर काबुल कातथा ईरान से होने वाले व्यापार पर कंधार का नियंत्रण था। भारत के स्थल मार्गी आयातों में घोड़ों का भाग बहुत अधिक था तथा उनकीअदायगी मुख्यतः कपड़ों तथा नील से की जाती थी। भारत में गुलामों का निर्यात 16वीं सदी के आरंभिक भाग तक तो महत्वपूर्ण रहा परंतु 1560 के दशक के आरंभिक वर्षों में अकबर की सख्त पाबंदी के कारण यह लगभग बंद हो गया। 17वीं सदी में हर साल ईरान से बड़े-बड़े कारवाँ, ईरानी, आर्मेनियाई और बनिया सौदागरों के माल लादकर आते थे। सोलहवीं सदी के मध्य से लेकर अठारहवीं सदी के मध्य तक भारत का समुद्री व्यापार धीरे-धीरे फैलता चला गया। लाल सागर का मार्ग 17वीं सदी के अंत तक यूरोप के साथ एशिया के व्यापार का प्रमुख मार्ग बना रहा और इस मार्ग पर भारतीय जहाजरानी का वर्चस्व बना रहा। यूरोप के लिए भारतीय निर्यातों की संरचना भी 17वीं सदी के दौरान बदली। कुल निर्यात में सूती कपड़ो तथा बंगाल के रेशमी कपड़ों के भाग बढ़े जबकि काली मिर्च तथा नील के भाग घटे। आयातों की सबसे बड़ी मद के रूप में चांदी की स्थिति बनी रही।

6.5.6 व्यापारी वर्ग एवं समुदाय

भारत का व्यापारिक समुदाय किसी एक जाति अथवा धर्म का नहीं था। गुजराती व्यापारियों में हिंदू, जैन तथा मुसलमान सभी शामिल थे। राजस्थान में ओसवाल, माहेश्वरी और अग्रवाल मारवाड़ी कहलाने लगे। मध्य एशिया के साथ थल-मार्ग से चलने वाला व्यापार मुल्तानियों, अफ्गानों तथा खत्रियों के हाथों में था। अठारहवीं सदी में मारवाड़ी

महाराष्ट्र और बंगाल में फैल गये। कोरोमंडल तट के चेट्टी और मालाबारके मुसलमान व्यापारी, जिनमें हिंदुस्तानी और अरब दोनों शामिल थे, दक्षिण भारत के सबसे महत्वपूर्ण व्यापारिक समुदाय थे। जैसा कि हम जानते हैं कि 17वीं सदी में विदेश व्यापार की संरचना को आकार देने में यूरोपीय कंपनियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। सर्वप्रथम 16वीं सदी के आरंभ में पुर्तगाली मालाबार तट पर स्थापित हुए। परंतु उनकी मुख्य दिलचस्पी चुंगी की वसूली एवं भारतीय समुद्र पर नियंत्रण बनाए रखने में रही तथा भारत से निर्यात की जाने वाली मुख्य वस्तु मसाला ही बनी रही। अतः जैसा कि फ्रांसीसी विद्वानबोदेल का मानना है कि पुर्तगाली तटकर अधिकारी बन गए तथा तटकर से होनेवाली आय पुर्तगाली उद्यम का मुख्य स्रोत बन गई।

किन्तु डचों तथा ब्रिटिश के आगमन ने इस स्थिति में तेजी से परिवर्तन लाया। राज्य नियंत्रित पुर्तगाली कंपनी के विपरीत ये स्वतंत्र रूपसे स्थापित कंपनियाँ थीं। किंतु गहराई से देखने पर हमें ज्ञात होता है कि उपर्युक्त कंपनियों के बीच भेद भी महज ऊपरी स्तर पर था क्योंकि इन कंपनियों को भी सरकारों का संरक्षण प्राप्त था तथा इन्हें भी अपनी सरकारों से सैनिक सहायता प्राप्त होती थी। डचों ने भारतीय सूती वस्त्र का उपयोग दक्षिण पूर्व एशिया के साथ व्यापार में किया। उसी तरह ब्रिटिश कंपनी ने भारत से मसाले के बजाए कुछ अन्य वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन दिया यथा, सूती वस्त्र, कच्चे रेशम तथा शोरा। इस तरह यूरोपीय बाजार में इन वस्तुओं की मांग बढ़ गई। प्रारंभ में गुजरात से यूरोप के सस्ते कपड़े भेजे जाते थे। यह तथ्य दर्शाता है कि उस समय भारतीय कपड़ो का उपभोक्ता यूरोपीय समाज के निचले तबके के लोग थे किंतु आगे चलकर बंगाल तथा कोरोमंडल तट से उत्तम कोटि के सूती तथा रेशमी वस्त्र भेजे जाने लगे और 1660 तक कोरोमंडल तट का निर्यात गुजरात के निर्यात से चार गुणा अधिक हो गया।

हिंद महासागरीय व्यापार में यूरोपीय कंपनियों की भूमिका हमेशा विवाद का विषय रही है। यह तर्क दिया जाता है कि उनकी सफलता उनके बड़े आकार और संगठन का परिणाम थी जिसके कारण वे समुचित गुप्त सूचनाएं प्राप्त करने में भी समर्थ हुए तथा आपूर्ति के प्रवाह को नियंत्रित करने में सफल हुए। इसके विपरीत एशियाई सौदागर बहुत छोटी इकाइयों के रूप में काम करते थे और एक विशाल, संगठित तथा सूचनाओं से बुरी तरह वचित समूह थे जो बहुतायात और दुर्लभता के बीच पिसते रहते थे। परंतु पूंजीवाद के विकास का परीक्षण करते हुए ब्रॉदेल ने पाया कि यह परिकल्पना संतोषजनक नहीं है। उन्होंने वीरजी वोहरा तथा अब्दुल गफूर जैसे भारतीय सौदागरों की भारी पूंजी और संसाधनों का खासतौर पर जिक्र किया है। लाल सागर का मार्ग 17वीं सदी के अंत तक यूरोप के साथ एशिया के व्यापार का प्रमुख मार्ग बना रहा और इस मार्ग पर भारतीय जहाजरानी का वर्चस्व रहा। यह तथ्य साबित करता है कि भारत की व्यापारिक पूंजी इतनी कारगर जरूर थी कि यूरोपीय कंपनी का मुकाबला कर सके बशर्ते स्वच्छ प्रतियोगिता का वातावरण मौजूद हो। यह स्थिति कुछ राजनीतिक तथा सैनिक घटनाओं के कारण बदल गई। इनमें मुगल साम्राज्य का पतन तथा मध्य 18वीं सदी के कर्नाटक युद्धों और प्लासी के युद्ध के साथ उपनिवेशी विजय के काल का आरंभ प्रमुख है।

6.5.7 शिल्प उत्पादन

मुगल काल में शिल्प उत्पादन का स्तर काफी ऊँचा था। यह शिल्प उत्पादन वाणिज्य व्यापार की पद्धति से जुड़ा हुआ था। यूरोपीय यात्रियों के वृतांतों और दस्तावेजों से शिल्पों के विकास के संबंध में व्यापक सूचना प्राप्त होती है। शिल्प उत्पादन मूल रूप से घरेलू बाजार की मांग तथा खपत से निर्देशित होता था। 17वीं शताब्दी में विदेशी बाजारों में मांग बढ़ने लगी और यहां की उत्पादन गतिविधि प्रभावित होने लगी।वस्त्र उद्योग के अंतर्गत इस काल में मुख्य रूप से सूती, रेशमी और ऊनी वस्त्रों के उत्पादन को प्रोत्साहन मिला। गुजरात वस्त्र उत्पादन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में एक था। यहां अहमदाबाद, भड़ौच, बड़ौदा, कैम्बे, सूरत आदि जैसे प्रमुख उत्पादन केंद्र थे। दक्कन में बरहानपुर और औरंगाबाद में उत्तम कोटि के सूती वस्त्र निर्मित किए जाते थे। सूत की कताई में स्त्रियों के श्रम का भी व्यापक उपयोग किया जाता था। कपड़ो की कई कोटियाँ उपलब्ध थीं। हमीदा नकवी ने मुगल साम्राज्य के पांच प्रमुख उत्पादन केंद्रों में उत्पादित उनचास प्रकार के कपड़ो का नामोल्लेख किया है। यूरोपीय दस्तावेज में एक सौ से अधिक नामों का उल्लेख है। इस काल में रंगाई और छपाई भी विशीषीकृत व्यवसाय हो गये थे। सूती वस्त्रों के अतिरिक्त रेशमी वस्त्र के उत्पादन को भी प्रोत्साहन मिला। अबुल फजल कहता है कि कश्मीर में बड़ी मात्रा में रेशम के कपड़े बनाए जाते थे। बनारस का भी इस क्षेत्र में नाम था। सत्रहवी शताब्दी में बंगाल में रेशम का सबसे ज्यादा उत्पादन हुआ, जिसे विदेश तथा भारत के विभिन्न हिस्सों में निर्यातित किया गया। वस्तुतः 17वीं शताब्दी के दौरान दो महत्वपूर्ण तकनीकी विकास की चर्चा की जा सकती है। प्रथम लाहौर, आगरा और फतेहपुर सीकरी में अकबर के संरक्षण में कालीनों की बुनाई। दूसरे, बड़े पैमाने पर रेशम तथा रेशम के धागों का उत्पादन। दिल्ली, मिर्जापुर, वारंगल तथा मसुलीपट्टम भी कालीन निर्माण के अन्य केंद्रों के रूप में विकसित हुए। फिर विभिन्न प्रकार के कपड़ों की सूती, रेशमी या चांदी और सोने के धागे से कढ़ाई भी कपड़ा उद्योग से जुड़ा एक शिल्प था। काफी संख्या में शिल्पियों ने इस शिल्प को अपना रखा था।

मुगल काल में भारत में कारीगरों के व्यक्तिगत प्रयास से लेकर कारखाने तक की व्यवस्था मौजूद थी। शिल्प की जरूरतों और आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न शिल्पों और उद्योगों में उत्पादन के संगठन में विभिन्नताएं थी। गांवों की जरूरतों को पूरा करने वाली वस्तुओं का निर्माण कारीगर करता था और वह जजमानी व्यवस्था नामक ग्रामीण व्यवस्था का एक नियमित अंग था। सामान्यतः उन्हें सेवाके बदले अनाज दिया जाता था। दक्कन तथा महाराष्ट्र में यह व्यवस्था ज्यादा संगठित थी। फिर ग्रामीण इलाकों में मुद्रा अर्थव्यवस्था के प्रवेश और इसकी बढ़ती हुई मांग के कारण जीवन यापन संबंधी दृष्टिकोण में अंतर आ गया। आरंभ में ग्रामीण शिल्पी यजमानी पद्धति में संगठित थे। अब वे अपना सामान नकद में बेचने लगे तथा अतिरिक्त काम के लिए अलग से नकद तथा वस्तुओं के रूप में भुगतान लेने लगे। संभवतः 18वीं शताब्दी के मध्य तक लंबी तथा मध्यम दूरी के व्यापार के लिए खास उत्पादन इन कारीगरों पर निर्भर था जो जजमानी व्यवस्था में पूरी तरह गुंथे हुए थे। ग्रामीण कारीगरों के अतिरिक्त वैसे कारीगर भी थे, जो बाजार के लिए उत्पादन करते थे। पेल्सार्ट के अनुसार विभिन्न शिल्पों से जुड़े कारीगरों की लगभग सौ विशेषीकृत श्रेणियाँ थीं।

उत्पादन की स्थानीयता भी एक महत्वपूर्ण विशेषता थी। व्यापारियों को अलग-अलग सामान लेने के लिए अलग-अलग जगह जाना पड़ता था। फिर कारीगर व्यक्तिगत स्तर पर उत्पादन करने के लिए कच्चा माल खुद प्राप्त करता था और बने माल को खुद बेचने की भी व्यवस्था करता था। कारीगर या शिल्पी अपने ही घर में निर्माण कार्य करता था। इन कारीगरों के पास पूंजी कम होती थी। अतः व्यक्तिगत तौर पर वे कम माल तैयार कर पाते थे और व्यापारियों को इनसे माल लेने के लिए काफी प्रयास करना पड़ता था। माल की गुणवत्ता का भी अंतर होता था। इन समस्याओं के कारण उत्पादन के नये तरीके दादनी का जन्म हुआ। इसमें व्यापारी कारीगरों को अग्रिम राशि दिया करते थे और कारीगर एक निश्चित तिथि का माल देने का वादा करता था। **दादनी व्यवस्था** में उत्पादित वस्तु की गुणवत्ता और मात्रा निर्धारित करने में खरीददार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। कारीगरों को कच्चा माल खरीदने के लिए पर्याप्त पूंजी मिल जाती थी। उनके माल की बिक्री का भी आश्वासन मिल जाता था परंतु बिक्री पर उनका नियंत्रण नहीं रह जाता। इस प्रकार मुगल काल में शिल्प तथा उद्योग बेहतर स्थिति में थे तथा एक निश्चित ढांचे में गठितथे।

6.5.8 मुगल कारखाना

सामान्यतः कारखाना का शाब्दिक अर्थ होता है ऐसे उत्पादन केंद्र जहां जन सामान्य के द्वारा उत्पादन किया जाता है और यह उत्पादन बहुतायत में होता है, किंतु मुगलकाल में कारखाना शब्द को दूसरे अर्थ में लिया गया है। ये वे उत्पादन केंद्रथे जहां शाही आवश्यकता को पूरा करने के लिए उत्पादन किया जाता था फिर इसमें उत्पादन केंद्र ही शामिल नहीं होते अपितु शाही घुड़सवार, हाथीसाल तथा शाही पड़ाव सभी इसके अंतर्गत शामिल होते थे।के. एम अशरफ ने मुगल कारखाना को फारसी मॉडल से प्रेरित माना है। किंतु अन्य शोधों से यह ज्ञात होता है कि इस प्रकार के कारखानों को मौर्य शासक, अलाउद्दीन खिलजी तथा फिरोजशाह तुगलक जैसे शासकों के अंतर्गत भी तैयार किया गया था। फिरोजशाह तुगलक के अंतर्गत इस प्रकार के 36 कारखाने कार्यरत थे जिनमे उसने अपने 12 हजार दासों को कार्य पर लगाया था।

मुगलकाल में इन कारखानों को **बयुतत** कहा जाता था। यह एक अधिकारी **दीवान-ए-बयुतत** के अंतर्गत कार्य करता था। किंतु सर्वोच्च अधिकारी **मीर-ए-समाँ** होता था जो सभी प्रकार के राजकीय आपूर्ति के लिए उत्तरदायी था। वस्तुतः इन कारखानों की स्थापना का सबसे प्रबल कारण था उस काल के बाजार के द्वारा राजकीय आपूर्ति को पूरा किये जाने में अक्षमता। दूसरे शब्दों में, शाही घरानों एवं उनके अमीरों को जिन बेहतरीन उत्पादों की जरूरत होती उनकी आपूर्ति तात्कालिक बाजार नहीं कर सकता था क्योंकि बाजार में इतनी बड़ी मात्रा में गुणवत्तापूर्ण सामग्रियां उपलब्ध नहीं थीं। इन राजकीय कारखानों को चलाने के लिए कुशल कारीगरों की जरूरत होती थीं। इसलिए राज्य की ओर से कुशल कारीगरों को ढूंढने और प्राप्त करने का प्रयास किया जाता और फिर उन्हें राजकीय कारखानों में लगाया जाता।

राजकीय कारखानों में मुगल काल में उत्पादन का उच्च मानक निश्चित किया। इससे साम्राज्य में उत्पादन को भी प्रोत्साहन मिला इतना ही नहीं इसने बाजार को प्रतिस्पर्द्धा देकर गुणवत्तापूर्ण उत्पादन को प्रोत्साहन दिया। मुगल कारखानों ने विश्व मानक पर आधारित उत्पादन को बनाये रखा।

6.6 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुगलकाल में कृषि एवं वाणिज्य-व्यापार का विकास बेहतर स्थिति में था। कृषि के क्षेत्र में राज्य के द्वारा दिये गये प्रोत्साहन एवं नकदी फसलों के प्रचलन के कारण नवीन कृषि संरचना का विकास हुआ। उसी प्रकार इस काल में नवीन तकनीकी के सूत्रपात के कारण कुछ नये उत्पादन केन्द्रों का विकास हुआ। वस्त्र उत्पादन के क्षेत्र में नवीन विकास ने ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्र में सामाजिक संबंधों को भी प्रभावित किया।

साथ ही इस समय तक भारतीय अर्थव्यवस्थाका पर्याप्त मौद्रीकरण हो चुका था। भारत में गुजरात, कोंकण, कोरोमंडल तट तथा बंगाल जैसे समृद्ध तटीय क्षेत्र अस्तित्व में आ चुके थे। भारतीय सूती वस्त्र, रेशमी वस्त्र, मलमल, आदि वस्तुओं का भारत से बाहर एक बड़ा बाजार विकसित हो चुका था। व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में था तथा बड़ी मात्रा में भारत में पश्चिमी विश्व से कीमती धातुओं का आगमन हो चुका था। बर्नियर कहता है संपूर्ण विश्व से चक्कर काटती हुई चाँदी भारत आती है तथा सोने-चाँदी के दलदल भारत में दफन हो जाते हैं। इस प्रकार 16वीं एवं 17वीं सदी में व्यावसायिक क्रांति के आधार पर होने वाले वैश्वीकरण के केन्द्र में भारत अवस्थित था। अतः यह अपरिहार्य हो जाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के भावी स्वरूप पर विचार किया जाए कि अगर भारतीय अर्थव्यवस्था में ब्रिटिश औपनिवेशिक हस्तक्षेप नहीं हुआ होता तो क्या यह भी व्यावसायिक पूँजीवाद से औद्योगिक पूँजीवाद की ओर उन्मुख हो सकती थी।

6.7 तकनीकी शब्दावली

इजारा–विशेष रूप से भूमि का ठेका देना |

जिन्स-ए-कामिल- नकदी फसल जैसे- कॉफ़ी, तम्बाकू, अफ़ीम, मक्का, रेशम इत्यादि |

हुण्डी-बैंकर द्वारा व्यापारियों को जारी किया गया भुगतान पत्र, जिसके आधार पर एक स्थान के व्यापारी को रुपए देकर दूसरे स्थान के व्यापारी से रुपए ले लिए जाते थे ।

ज़रीब– एक मापक उपकरण, जिसके माध्यम से भूमि की माप की जाती थी |

बयूतात– गृहस्थी और खास तौर से सरकारी कारखानों के खर्चे |

दादनी– व्यापारियों द्वारा कारीगरों को दि जाने वाली अग्रिम राशि |

6.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. शेरशाह द्वारा प्रचलित सिक्का दाम किस धातु का था |

(अ). सोना (ब). चाँदी

(स). तांबा (द). पीतल

2.एक नवीन नकदी फसल के रूप में तंबाकू को कौन से विदेशी व्यापारी अपने साथ भारत लाए थे।

(अ). डच (ब). पुर्तगाली

(स). ब्रिटिश (द). फ्रांसिसी

3. अकबर द्वारा भू-राजस्व सुधार की नवीन पद्धति **'आइन- ए- दहशाला'** व्यवस्था कितने वर्ष के लिए निर्धारित की गई थी |

(अ). पांच वर्ष (ब). चार वर्ष

(स). आठ वर्ष (द). दस वर्ष

6.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (स), (ब), (द)

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, हरिश्चंद्र., मध्यकालीन भारत, भाग-2, 1993, 28 वां पुनर्मुद्रण – 2017, नई दिल्ली.

2. चन्द्र, सतीश., मध्यकालीन भारत सल्तनत से मुग़ल काल तक (दिल्ली सल्तनत 1526-1761).

3. हबीब, इरफ़ान., मध्यकालीन भारत, भाग 1-12, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.

4. Habib, Irfan., The Agrarian system of Mughal India(1556-1707), Delhi, 1963.

5. मोरलैंड, डब्ल्यू. एच., अकबर से औरंगजेब तक,

6. मोरलैंड, डब्ल्यू. एच., द एग्रीगेरियन सिस्टम ऑफ़ मुस्लिम इंडिया, लन्दन, 1920.

7. सरकार, जे. एन., मुग़ल प्रशासन, बोम्बे, 1982.

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में 16 वीं एवं 17 वीं शताब्दियों के दौरान कृषि अर्थव्यवस्था के प्रमुख अभिलक्षणों की रुपरेखा प्रस्तुत कीजिए |

2. मुग़ल कालीन भारत में विकसित भू-राजस्व प्रणाली के स्वरुप का विश्लेषण कीजिए एवं उसकी विशेषताओं की समीक्षा कीजिए |

3. मुग़ल कालीन भारत में वाणिज्य एवं व्यापार के विकास की विवेचना कीजिए |

4. वाणिज्य तथा व्यापार को बढावा देने में मुग़ल शासकों के प्रयासों व् नीतियों की समीक्षा कीजिए |

इकाई सात- मुगलों की उत्तर-पश्चिमी एवं मध्य एशिया की नीति

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 बाबर की उत्तर-पश्चिमी नीति

7.4 बाबर की मध्य एशियाई नीति

7.5 हुमायूं की उत्तर-पश्चिमी नीति

7.6 अकबर के अधीन मुगलों की विदेश नीति

7.7 जहाँगीर और उसके अधीन मुगलों के विदेशी संबंध

7.8 शाहजहाँ और उसकी नीतियां

7.9 औरंगजेब और उत्तर-पश्चिम

7.10 सारांश

7.11 तकनीकी शब्दावली

7.12 स्वमूल्यांकित प्रश्न

7.13 संदर्भग्रंथसूची

7.14 निबंधात्मकप्रश्न

7.1 प्रस्तावना

1526 में बाबर द्वारा स्थापित मुगल साम्राज्य, दक्षिण एशियाई इतिहास में सबसे दुर्जेय और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध साम्राज्यों में से एक है। मुगलों को अक्सर उनकी भव्य वास्तुकला, प्रशासनिक नवाचारों और सांस्कृतिक योगदानों के लिए जाना जाता है, जबकि उनकी विदेश नीति-विशेष रूप से उत्तर-पश्चिमी और मध्य एशियाई क्षेत्रों के संबंध में; ने सम्पूर्ण मुग़ल साम्राज्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह अध्याय इन रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण क्षेत्रों के संबंध में मुगल कूटनीति और सैन्य रणनीति की जटिल गतिशीलता पर प्रकाश डालता है।

उत्तर-पश्चिमी और मध्य एशियाई सीमाएँ मुगलों के लिए सर्वोपरि थीं, यह सीमावर्ती क्षेत्र न केवल भारतीय उपमहाद्वीप के प्रवेश द्वार थे, बल्कि मुगलों के लिए अपने प्रभुत्व का दावा करने और अपने साम्राज्य की सीमाओं को सुरक्षित करने के लिए भी महत्वपूर्ण थे। उत्तर-पश्चिमी सीमा, जिसमें वर्तमान पाकिस्तान और अफ़गानिस्तान के कुछ हिस्से शामिल हैं, पूरे इतिहास में कई आक्रमणों और भारत में आने वाले कई आततायियों का प्रवेश बिंदु रहा है। मुगलों के लिए, यह क्षेत्र अपने सामरिक सैन्य लाभों और भारत को मध्य एशिया और उससे आगे के क्षेत्रों से जोड़ने वाले व्यापार मार्गों में अपनी भूमिका निभाने हेतु अति आवश्यक था। मध्य एशियाई क्षेत्र, विशेष रूप से आधुनिक उज्बेकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान और कजाकिस्तान इत्यादि, मुगलों के लिए ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व रखते थे। ये क्षेत्र मुगल वंश की जन्मभूमि थे और इनका प्रतीकात्मक महत्व था जिसने मुगल नीतियों और महत्वाकांक्षाओं को प्रभावित किया।

इन सीमाओं के प्रति मुगल दृष्टिकोण रक्षात्मक और आक्रामक दोनों रणनीतियों द्वारा निर्धारित होता था। बाबर और हुमायूँ के अधीन शुरुआती मुगलों को स्थानीय अफगान शासकों और फारसी शक्तियों से महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ा। तीसरे मुगल सम्राट अकबर ने इन नीतियों को और अधिक परिष्कृत दृष्टिकोण के साथ आगे बढ़ाया। राजनयिक गठबंधनों, सैन्य अभियानों और प्रशासनिक सुधारों के माध्यम से उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों को एकीकृत करने के उनके प्रयासों ने एक केंद्रीकृत साम्राज्य के उनके दृष्टिकोण को रेखांकित किया। राजपूत राज्यों के साथ अकबर की भागीदारी और उत्तर-पश्चिमी सीमा पर उनके अभियानों का उद्देश्य मुगल आधिपत्य को सुरक्षित करना और क्षेत्र को स्थिर करना था।बाद के मुगल सम्राटों, विशेष रूप से औरंगजेब को उत्तर-पश्चिमी और मध्य एशियाई क्षेत्रों में नई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। औरंगजेब के मराठों के साथ लंबे समय तक संघर्ष, क्षेत्रीय शक्तियों का उदय और मध्य एशियाई सरदारों से लगातार खतरों ने साम्राज्य की लचीलापन और रणनीतिक क्षमताओं का परीक्षण किया। मध्य एशिया के राजनीतिक विखंडन और क्षेत्र में बदलते गठबंधनों ने मुगल नीति को प्रभावित किया और साम्राज्य के अंतिम पतन में अपना योगदान दिया।

7.2 उद्देश्य

इस अध्याय के पश्चात आप विभिन्न मुग़ल शासकों द्वारा उत्तर-पश्चिमी तथा मध्य एशियाई क्षेत्रों में अपनाई गई नीतियों का मूल्यांकन कर सकेंगे, साथ ही यह भी समझ सकेंगे की किस प्रकार यह सीमाएं मुगलों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी और इनका भारतीय मुग़ल साम्राज्य पर क्या प्रभाव पड़ा।स्रोतों और ऐतिहासिक घटनाओं की जांच करके, यह अध्याय मुगलों की रणनीतिक और कूटनीतिक चालों को भी स्पष्ट करेगा, जिनसे मुगलों ने अपने उत्तर-पश्चिमी और मध्य एशियाई पड़ोसियों के साथ संबंधों को परिभाषित किया है।

7.3 बाबर की उत्तर-पश्चिमी नीति

भारत में मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर ने अपनी उत्तर-पश्चिम नीति के साथ इस क्षेत्र के राजनीतिक परिदृश्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। उत्तर-पश्चिम (वर्तमान अफगानिस्तान और पाकिस्तान) के प्रति बाबर की नीतिमें रणनीतिक और व्यक्तिगत दोनों तरह के विचारों से प्रेरित थी।जब बाबर ने हिंदुस्तान पर फतह हासिल की तब वह अपने साथ सीमा पार की समस्याएं भी लाया। क्योंकि उसे अपना देश छोड़ना पड़ा इसलिए भारत पर अधिकार पाने के बाद उसने अपने देश को पाने के लिए पुनः असफल प्रयास किये। मुगलों की सीमा संबंधी नीति इन सभी घटनाओं से जुड़ी हुई है। वस्तुत: बाबर की सीमा संबंधी समस्याएं तब प्रारंभ होती हैं जब उजबेक शासक शैबानी खां ने फरगना और समरकंद को जीतकर काबुल पर अधिकार कर लिया था। बाबर ने कई बार अपने राज्य को वापस पाने हेतु प्रयत्न किया परंतु वह असफल ही रहा। वर्ष 1528 में बाबर ने पुनः बदख्शां को अपना सैन्य अड्डा बनाकर बल्ख और समरकंद को जीतने का प्रयास किया, और इस हेतु उसने अपने पुत्र हुमायूं को इस सैन्य अभियान की कमान सौंपी, साथ ही कामरान को उसकी सहायता के लिए भेजा। परंतु जब हुमायूं इस कार्य में असफल रहा, उसके बावजूद भी बाबर ने अपना इरादा नहीं बदला। हुमायूं को लिखे एक पत्र में उसने स्वयं उत्तरी प्रदेश में जाने की योजना की सूचना दी। हालांकि बाबर का स्वप्न पूरा नहीं हुआ और वह हुमायूं के लिए भारतीय राज्य की बाह्य सीमाओंकी जिम्मेदारी छोड़कर 1530 में स्वर्गवासी हो गया।

बाबर की उत्तर-पश्चिम नीति काफी हद तक क्षेत्र के रणनीतिक महत्व से प्रभावित थी। तात्कालिक समय में उत्तर-पश्चिमी सीमा मुगल साम्राज्य की सीमाओं को सुरक्षित रखने और स्थिरता बनाए रखने के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था। यह क्षेत्र मुगल साम्राज्य और मध्य एशिया से संभावित खतरों, जिसमें उज्बेक और अन्य खानाबदोश समूह शामिल हैं, के बीच एक बफर ज़ोन के रूप में भी कार्य करता था। इस क्षेत्र पर नियंत्रण करके, बाबर का उद्देश्य अपने साम्राज्य को बाह्य आक्रमणों से बचाना और सुरक्षित व्यापार मार्ग को संचालित रखना था।

उत्तर-पश्चिम में बाबर के शुरुआती सैन्य अभियान उसकी शक्ति को मजबूत करने और उसके अधिकार को स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण थे। भारत में अपने सफल अभियानों से पहले, बाबर ने सत्ता का एक मजबूत आधार बनाने के लिए उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित किया। इसमें क्षेत्रीय प्रतिद्वंद्वियों को हराना और उन क्षेत्रों को सुरक्षित करना शामिल था जो बाद में भारत में उसके अभियानों के लिए आर्थिक और सैन्य सहायता प्रदान कर सकते थे।उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में बाबर की उल्लेखनीय उपलब्धियों में से एक खैबर दर्रे पर उसका नियंत्रण था, जो भारतीय उपमहाद्वीप को मध्य एशिया से जोड़ने वाला एक महत्वपूर्ण रणनीतिक दर्रा या मार्ग था। खैबर दर्रा व्यापार और सैन्य अभियानों के कुशल संचलन हेतु एक महत्वपूर्ण मार्ग था, और इसे सुरक्षित करने से बाबर को इस क्षेत्र पर प्रभाव डालनेऔर सैन्य बलों की आवाजाही को नियंत्रित करने में सहायता प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त बाबर ने उत्तर-पश्चिम में विभिन्न जनजातियों और क्षेत्रीय शक्तियों के साथ संबंधों को प्रबंधित करने के लिए कूटनीतिक प्रयास भी किए। उसने क्षेत्र को स्थिर करने और अपने साम्राज्य के हितों को सुरक्षित करने के लिए गठबंधन बनाए और संधियाँ की। यह कूटनीतिक

दृष्टिकोण शांति बनाए रखने और संघर्षों को रोकने की उसकी व्यापक रणनीति का हिस्सा था जो उसकी स्थिति को कमजोर कर सकते थे।संक्षेप में, बाबर की उत्तर-पश्चिम नीति एक बहुआयामी दृष्टिकोण था जिसका उद्देश्य अपने साम्राज्य की सीमाओं को सुरक्षित करना, अपनी शक्ति को मजबूत करना और एक महत्वपूर्ण क्षेत्र पर रणनीतिक नियंत्रण स्थापित करना था। उत्तर-पश्चिम में उनके प्रयासों ने भारतीय उपमहाद्वीप में मुगल साम्राज्य के विस्तार और स्थायित्व के लिए आधार तैयार किया।

7.4 बाबर की मध्य एशियाई नीति

बाबर की मध्य एशियाई नीति उसकी रणनीति सोच और राजनीतिक कूटनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू थी, जो उसकी महत्वाकांक्षाओं और उसके सामने आने वाली चुनौतियों को दर्शाती है। मध्य एशिया के प्रति उसका दृष्टिकोण व्यक्तिगत आकांक्षाओं और व्यावहारिक विचारों दोनों से प्रेरित था।

व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएँ: मध्य एशिया बहुत ही रणनीतिक महत्व का क्षेत्र था, जिसमें कई शक्तिशाली जनजातीय संघ थे। इस क्षेत्र में आधुनिक उज्बेकिस्तान, कजाकिस्तान और अफगानिस्तान के कुछ हिस्से जैसे क्षेत्र शामिल थे। इस क्षेत्र की विशेषता स्थानीय शासकों के बीच बदलते गठबंधन और लगातार संघर्ष थे, जिनसे बाबर को सावधानीपूर्वक निपटना था।चगताई राजवंश से सम्बंधित होने के कारण बाबर का मध्य एशिया से गहरा व्यक्तिगत संबंध था। उसके पूर्वजों ने इस क्षेत्र के कुछ हिस्सों पर शासन किया था, और वह स्वयं खुद इन पैतृक क्षेत्रों को पुनः प्राप्त करने और उनका विस्तार करने का महत्वाकांक्षीथा।

अपने शुरुआती दिनों में, बाबर ने मध्य एशिया में अपने पैतृक क्षेत्रों पर फिर से नियंत्रण पाने का प्रयास किया था। उसने समरकंद और बुखारा जैसे शहरों को पुनः प्राप्त करने के लिए कई अभियान चलाए। हालाँकि उसे कुछ अस्थायी सफलताएँ मिलीं, लेकिन स्थानीय शासकों के कड़े प्रतिरोध और क्षेत्र में बदलते गठबंधनों के कारण उसके प्रयास अंततः विफल हो गए। मध्य एशिया में अपनी शुरुआती विफलताओं के बाद, बाबर ने अपना ध्यान भारतीय उपमहाद्वीप की ओर केंद्रित किया। यह रणनीतिक मोड़ इस बात से प्रेरित था कि भारत में अपनी स्थिती मजबूत कर लेने से उसे एक अधिक स्थिर और समृद्ध आधार मिलेगा जहाँ से वह शक्ति का प्रयोग कर सकेगा। भारत में उसका सफल अभियान, जिसकी परिणति मुगल साम्राज्य की स्थापना में हुई, उसके जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ था।भारत पर अपना प्राथमिक ध्यान केंद्रित करने के बावजूद, बाबर ने मध्य एशिया के साथ कूटनीतिक और सैन्य जुड़ाव को काफी हद तक बनाए रखा। उसने विभिन्न मध्य एशियाई शक्तियों के साथ गठबंधन पर बातचीत की और उनके साथ संबंधों को प्रबंधित किया ताकि वे उसके साम्राज्य के लिए खतरा न बन जाएँ। उसने इस क्षेत्र पर नज़र भी रखी, ताकि उसके साम्राज्य की सीमाएँ संभावित आक्रमणों या व्यवधानों से सुरक्षित रहें।हालाँकि बाबर मध्य एशिया पर दीर्घकालिक नियंत्रण हासिल नहीं कर सका, लेकिन उसकी नीतियों और कार्यों के प्रभाव स्थायी थे। भारत में एक स्थिर साम्राज्य स्थापित करने की दिशा में अपने प्रयासों को अनुकूलित और पुनर्निर्देशित करने की उसकी क्षमता

अंततः सफल साबित हुई। बाबर द्वारा स्थापित मुगल साम्राज्य भारतीय उपमहाद्वीप में एक प्रमुख शक्ति बन गया, और उसके वंशजों ने कूटनीतिक और व्यापारिक संबंधों के माध्यम से मध्य एशियाई मामलों पर एक हद तक प्रभाव बनाए रखा।

7.5 हुमायूं की उत्तर-पश्चिमी नीति

दूसरे मुगल बादशाह हुमायूं का अपने साम्राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमा के साथ चुनौतीपूर्ण और कुछ हद तक उथल-पुथल भरा रिश्ता था। हुमायूं के शासनकाल में लगभग राजनयिक संबंध समाप्त हो चुके थे। इसका पहला कारण था कि उसका भाई कामरान पंजाब और काबुल का शासक बन गया था और हुमायूं के लिए कठिनाइयां खड़ी कर रहा था। दूसरा कारण हुमायूं के सामने हिंदुस्तान में भी कई समस्याएं खड़ी हो गई थी। उसे लगातार गुजरात और बंगाल से कड़े विरोध का सामना करना पड़ रहा था, जिस कारण उसे उत्तर पश्चिम और मध्य एशिया के संबंध में सोचने की फुरसत ही नहीं मिली। कुल मिलाकर इस क्षेत्र के प्रति उसकी नीतियाँ, इस क्षेत्र के सामरिक महत्व और उनके शासनकाल के दौरान उसके सामने आई कठिनाइयों दोनों से प्रभावित थीं।

साम्राज्य की सुरक्षा के चलते खैबर दर्रे जैसे क्षेत्रों सहित उत्तर-पश्चिमी सीमा, मध्य एशिया और फारस से होने वाले आक्रमणों के खिलाफ बफर जोन के रूप में महत्वपूर्ण थी। हुमायूं के लिए, मुगल साम्राज्य की सीमाओं को सुरक्षित रखने और स्थिरता बनाए रखने के लिए इस क्षेत्र पर नियंत्रण रखना आवश्यक था। साथ ही यह क्षेत्र भारतीय उपमहाद्वीप और मध्य एशिया के बीच व्यापार और सैन्य अभियानों के लिए भी एक प्रमुख मार्ग था। इन मार्गों पर नियंत्रण सुनिश्चित करना आर्थिक और रणनीतिक दोनों कारणों से महत्वपूर्ण था।अपने शासनकाल के शुरुआती वर्षों में, हुमायूँ ने उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों पर मुग़ल नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास किए। हालाँकि, उनके अभियान अक्सर स्थानीय प्रतिरोध और क्षेत्र के जटिल राजनीतिक परिदृश्य से बाधित होते थे। हुमायूँ को उत्तर-पश्चिमी सीमांत क्षेत्र में अफ़गान सरदारों और कबायली नेताओं से काफ़ी विरोध का सामना करना पड़ा। चौसा की निर्णायक लड़ाई (1539) और कन्नौज की लड़ाई (1540) में, हुमायूँ को शेर शाह सूरी ने के हाथों पराजय झेलनी पड़ी। इन पराजयों के कारण हुमायूँ का मुगल साम्राज्य पर अस्थायी नियंत्रण समाप्त हो गया और उसे निर्वासन में जाना पड़ा। भारत से निर्वासन के बाद हुमायूं ने सफवी शासक शाह तहमास्प के दरबार में शरण ली। ईरानी शाह ने भी हुमांयू को इस शर्त पर मदद की थी कि हुमांयू अपने भाई कामरान से कंधार छीनकर उसे वापस लौटा देगा। फारस के शाह की मदद के बल पर 1547 में उसने बदख्शां पर कब्जा कर लिया। हालांकि राजनीतिक आवश्यकताओं के चलते उसने सुलेमान मिर्जा को उसका राज्य वापस सौंप दिया जो आगे चलकर उसका वफादार मित्र बना रहा। इसके बाद उसने बदख्शां को आधार बनाकर बल्ख विजय करने का प्रयत्न किया, हालांकि कामरान ने उसे यहाँ धोखा दिया और काबुल पर अधिकार कर लिया। इस कारण हुमायूं को बल्ख अभियान को मध्य में ही छोड़ कर लौटना पड़ा और उसने पुनः काबुल पर कब्जा कर लिया। अब तक भारत में भी परिस्थितियाँ बदल चुकी थी, शेरशाह सूरी की मृत्यु हो जाने के बाद अब हुमायूँ को

अपना ध्यान उत्तर-पश्चिमी सीमा से हटाकर निर्वासन से खोये अपने साम्राज्य को पुनः प्राप्त करने के प्रयासों पर केन्द्रित करना आवश्यक हो गया था। उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों को सुरक्षित करने में उनकी असमर्थता ने उनकी स्थिति को काफी कमजोर कर दिया और उनके शासनकाल के दौरान उनके सामने आने वाली चुनौतियों में योगदान दिया। हालाँकि हुमायूँ अपने फारसी सहयोगियों और सैन्य समर्थन की सहायता से मुगल सिंहासन को पुनः प्राप्त करने में सफल रहा। कंधार को जीत लेने के पश्चात हुमांयू ने इस प्रांत को अपने पास बनाये रखने का बहाना ढूंढ निकाला था, और ईरानी शाह कंधार पर पुनः अधिकार उसकी मृयु के बाद पैदा हुई अनिश्चितता का लाभ उठाकर ही कर सका।

7.6 अकबर के अधीन मुगलों की विदेश नीति

तीसरे मुगल सम्राट अकबर महान ने अपने साम्राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमा के प्रति एक प्रभावी नीति लागू की। वर्तमान अफगानिस्तान और पाकिस्तान के कुछ हिस्सों को शामिल करने वाला यह क्षेत्र अपने सामरिक महत्व और विभिन्न शक्तिशाली आदिवासी और क्षेत्रीय संस्थाओं की उपस्थिति के कारण महत्वपूर्ण था। हुमायूं की मृत्यु के बाद जब अकबर ने शासन संभाला, उस वक्त अब्दुल्ला खान के अधीन उजबेकों का प्रादेशिक विस्तार अत्यधिक तेजी से हुआ। अकबर के शासनकाल के दौरान मुगल-उजबेक संबंधों को हम तीन चरणों में बांटकर पढ़ सकते हैं। पहला चरण 1572 से 1577,दूसरा चरण 1583 से 1589 और तीसरा चरण 1589 से 1598 तक।

पहला चरण: वर्ष 1572-73 के दौरान अब्दुल्ला खान द्वारा बल्ख तथा बदख्शां पर अधिकार कर लिया गया था। यह प्रदेश इसलिए भी महत्वपूर्ण था क्योंकि यह मुगलों और उज़्बेकों के मध्य एक रोधी पट्टिका के रूप में कार्य करता था। इस विजय के उपरांत अब्दुल्ला खान द्वारा 1572 और 77 में दो दूत मंडलों को मुगल दरबार में भेजा गया। इन दूत मंडलों का उद्देश्य मुगलों से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करना तथा ईरान तथा कंधार के प्रति अकबर के दृष्टिकोण का आकलन करना था। उधर उत्तर पश्चिमी सीमा पर बदलते समीकरणों ने भी अकबर को इस दिशा में सोचने के लिए मजबूर किया, मिर्जा हकीम जो कि काबुल का शासक था उसका विद्रोह और उसकी ईरान के शासक शाह ईस्माइल के साथ मित्रता, और साथ ही यह भय कि कहीं अब्दुल्ला खान कोई त्रिपक्षीय गठबंधन न बना ले, यह सोचकर भी अकबर ने अब्दुल्ला खान के प्रति मित्रवत दृष्टिकोण अपनाया। इसके अलावा भी अकबर स्वयं को बाह्य मामलों में उलझाना नहीं चाहता था। साल 1578 में अब्दुल्ला ने एक बार पुनः अकबर के पास अपना दूत मंडल भेजा और ईरान पर संयुक्त आक्रमण का प्रस्ताव रखा, हालांकि अकबर ने इस प्रस्ताव को मानने से इनकार कर दिया।

द्वितीय चरण: 1586 में अब्दुल्ला खान ने पुनः एक बार एक नया दूत मंडल अकबर के दरबार में भेजा, जिस दूत मंडल से अकबर ने अटक में सिंधु नदी के किनारे मुलाकात करी। इस दूत मंडल को भेजने का उद्देश्य अब्दुल्ला खान का सफावियों के खिलाफ खुरासान पर आक्रमण करने की योजना बनाना और यह चाहत थी की अकबर इस मामले में तटस्थ या निष्क्रिय रहे। 1575 में शाह तहमास्प की मृत्यु के बाद फारस में फैली राजनीतिक व्यवस्था के दौर में उस्मानली सुल्तानों ने उत्तरी ईरान को जीत लिया था और उजबेक शासक खुरासान और हेरात पर आक्रमण करना

चाहते थे। इस पत्र के प्रति उत्तर में अकबर ने भी एक लंबा पत्र भेजा और ईरान की सहायता के लिए शाही परिवार के किसी सदस्य के नेतृत्व में एक सेना भेजने की मंशा व्यक्त की। हालांकि अकबर ने सैन्य कार्रवाई के लिए कोई गंभीर तैयारी नहीं की, और वैसे भी उसका पत्र पहुंचने से पहले ही अब्दुल्ला खान खुरासान पर आक्रमण कर उसे जीत चुका था। इस परिस्थिति में अकबर ने बुद्धिमानी दिखाते हुए अपने हकीम हुमां को एक पत्र और मौखिक संदेश के साथ अब्दुल्ला खान के पास भेजा। संभवतःइस बातचीत के बाद हिंदुकुश को दोनों राज्यों की सीमा मानकर इनके मध्य एक समझौता हो गया।

तृतीय चरण: अब तक अकबर अब्दुल्ला खान के आक्रामक इरादों को लेकर सजग हो चुका था, इसी कारण अपने साम्राज्य की भीतरी सीमा को सुरक्षित करने के लिए उसने 1585 में रावलपिंडी में डेरा डाला और लगभग 13 वर्षों तक वहां रहा। अकबर इस बात से भली-भांति परिचित था की उजबेक लोग उत्तर पश्चिमी सीमा के कबीलों को मुगल साम्राज्य की प्रति भड़का रहे थे और विरोध को बनाए रखने के लिए उन्हें धन के रूप में भी सहायता प्रदान कर रहे थे। साल 1589 से अकबर कंधार पर अधिकार करने की योजना को बनाने लगा था। और कंधार को जीतने से पूर्व ही उसने यूसुफजई क्षेत्र और कश्मीर पर धावा बोलकर उन्हें अपने क्षेत्र में शामिल कर लिया था। कश्मीर और बलूचिस्तान पर विजय प्राप्त करने के बाद वर्ष 1595 तक अकबर ने अपनी भीतरी सीमा को पूर्णतया सुरक्षित कर लिया था और वर्ष 1595 में अकबर ने कंधार को भी जीत लिया। अकबर द्वारा कंधार जीत लेने के बावजूद ईरानी शासकों और मुगलों के बीच संबंधों में कटुता का भाव नहीं उपजा, इसके पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि कंधार पर मुगलों का नियंत्रण होना उजबेकों की अपेक्षा एक छोटी बुराई थी। क्योंकि यह प्रदेश यदि उजबेकों के हाथ में चला गया होता तो खुरासान में उजबेकों की स्थिति और अधिक मजबूत हो जाती, और यही कारन था कि ईरानी शासक शाह अब्बास ने अकबर की कंधार विजय के उपरान्त भेजे जाने वाले दूत मंडल की बहलाई जाने वाली सफाई पर कोई आपत्ति अभिव्यक्त नहीं की। कंधार विजय के बाद अकबर ने अब्दुल्ला खान के साथ अपने संबंधों को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। परंतु 1598 में अब्दुल्ला खान की मृत्यु हो गई और उसकी मृत्यु के साथ ही उजबेकों की शक्ति भी क्षीण हो गई, साथ ही शाह अब्बास ने भी खुरासान पर पुनः अधिकार कर लिया था। इसके साथ अकबर भी आगरा लौट आया, परंतु इतनी उपलब्धियां और प्रतिभा होते हुए भी वह बल्ख़ और बदख्शां पर आक्रमण करने का प्रयत्न न कर सका। इस तरह अकबर ने मुग़ल साम्राज्य की भीतरी सीमा को तो सुरक्षित कर लिया परंतु अभी भी बाह्य सीमा पर मुगल साम्राज्य को खतरा बना रहा।

हालाँकि अपने साम्राज्य को भविष्य में होने वाले संभावित आक्रमणों से बचाने और व्यापार मार्गों को सुरक्षित करने के लिए, अकबर ने उत्तर-पश्चिम में किलेबंदी और बुनियादी ढाँचे में निवेश किया। उन्होंने महत्वपूर्ण खैबर दर्रे जैसे रणनीतिक स्थानों पर किले बनाए और उन्हें सुदृढ़ किया, जो भारतीय उपमहाद्वीप और मध्य एशिया के बीच आवागमन को नियंत्रित करने के लिए महत्वपूर्ण था। इसके साथ ही अकबर ने उत्तर-पश्चिमी सीमा पर आवागमन

और वाणिज्य को सुविधाजनक बनाने के लिए सड़कों और व्यापार मार्गों सहित बुनियादी ढांचे के विकास पर भी ध्यान केंद्रित किया। इससे न केवल सैन्य रसद में मदद मिली, बल्कि आर्थिक एकीकरण को भी बढ़ावा मिला।अकबर ने मध्य एशियाई शक्तियों के साथ संबंधों को प्रबंधित करने के लिए एक कूटनीतिक दृष्टिकोण अपनाया। उसने उजबेकों और अन्य मध्य एशियाई खानों के साथ सीधे टकराव से बचने की कोशिश कीतथा उनसे मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। इस कूटनीतिक रुख का उद्देश्य उन संघर्षों को रोकना था जो भारत में अपने साम्राज्य को मजबूत करने और विस्तार करने के उनके प्राथमिक ध्यान से विचलित कर सकते थे। कुल मिलाकर कहा जाए तो अकबर की उत्तर-पश्चिमी नीति सैन्य, कूटनीतिक और प्रशासनिक रणनीतियों के माध्यम से मिश्रित थी, जो इस संवेदनशील क्षेत्र को सुरक्षित और स्थिर करने के लिए महत्त्वपूर्ण थी, जिसने मुगल साम्राज्य की समग्र ताकत और सुसंगतता में योगदान दिया।

7.7 जहाँगीर और उसके अधीन मुगलों के विदेशी संबंध

जहाँगीर के उजबेकों से संबंध: अब्दुल्ला खान की मृत्यु के बाद कुछ उज्बेकों की शक्ति क्षीण हो गई और उनमें आपसी फूट भी पड़ गई। इस प्रकार मुगलों को उनसे कोई खतरा नहीं रहा। उजबेक के मध्य लगभग 10 वर्ष तक चले गृहयुद्ध के बाद इमाम कुली को बुखारा का नया शासक चुन लिया गया, और उसने अपने छोटे भाई नजर मोहम्मद को बल्ख़ का शासन सौंप दिया। एक महत्वपूर्ण बात यह की तूरान के साथ जहांगीर के संबंध मुख्यतः उसके ईरान के साथ संबंधों द्वारा सुनिश्चित होते थे। 1621 ई तक मध्य एशिया और भारत के बीच कोई संबंध नहीं रहा, जहांगीर स्वयं मध्य एशिया को जीतना चाहता था इसलिए भी उसने वहां कोई राजदूत भेजना जरूरी नहीं समझा। वही इमाम कुली को भी मुगलों के दरबार में राजदूत भेजने का कोई लाभ नजर नहीं आ रहा था और उसका छोटा भाई नजर मोहम्मद भी अपने छोटे राज्य से खुश नहीं था, इस कारण दोनों साम्राज्य के बीच किसी ने भी संबंध स्थापित करने की पहल नहीं की। लेकिन साल 1621 में इमाम कुली ने फारस के डर से जहांगीर से संपर्क साधा। जहांगीर ने भी यह महसूस किया था कि कंधार को फारस से खतरा हो सकता है इसलिए उसने भी इमाम कुली के आमंत्रण का स्वागत किया। हालांकि यह संपर्क केवल दूतों की अदला-बदली तक ही सीमित रहा। नजर मोहम्मद जहांगीर के प्रति द्वेष रखता था और जब फारस ने कंधार पर आक्रमण किया तब उसने भी मुगल क्षेत्र हजरत में अपनी सेना को युद्ध के लिए उतार दिया। हालाँकि मुगल सेनापति खंजर खान ने उजबेक सेनापति का वध कर दिया और जब नजर मोहम्मद युद्ध के मैदान में उतरा तो उसने उसे भी सरक दर्रा में पराजित किया। कंधार के पतन के बाद नजर मोहम्मद ने जहांगीर से संपर्क कर उसे फारसियों के विरुद्ध सहायता देने का प्रस्ताव किया हालांकि जहांगीर की अकाल मृत्यु हो जाने पर यह योजना पूरी ना हो सकी।

जहाँगीर के ईरान से संबंध: अकबर के शासनकाल में ही शहजादा सलीम (जहांगीर) के विद्रोह के कारण फैली अव्यवस्था का लाभ उठाते हुए ईरान ने कंधार पर कब्जा करने के दो बार विफल प्रयास किए थे। और अकबर की मृत्यु

के पश्चात लगभग 1 साल तक उन्होंने कंधार पर घेरा डाले रखा, लेकिन मुगल सैन्य दल के पहुंचने से पहले ही घेरा उठा लिया गया। इसका एक बहुत बड़ा कारण यह भी था की शाह अब्बास समझ चुका था की अभी कंधार को जीतने का समय नहीं आया और साथ ही वह जहांगीर से भी अपने मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखना चाहता था। साल 1611 में उसने जहांगीर के दरबार में बधाई एवं शोक संदेश के साथ अपना एक दूत मंडल भेजा जो अपने साथ विभिन्न प्रकार के तोहफे जैसे गिलान नस्ल के घोड़े, रेशमी कपड़े, गलीचे इत्यादि चीज लेकर गया था। इस दूत मंडल के माध्यम से ईरान के शासक ने जहांगीर से स्थायी और घनिष्ठ संबंध बनाने की इच्छा अभिव्यक्त की। इसके प्रति उत्तर में जहांगीर ने खान आलम के अधीन एक जवाबी दूत मंडल ईरान के दरबार में भेजा। इसके साथ ही शाह अब्बास ने दक्कनी शासकों से अपनी पुरानी मित्रता को मजबूत करने हेतु भी प्रयास किया और यह बात मुगलों को पसंद नहीं थी। वर्ष 1620 में पुनः ईरानी शासन द्वारा जैनुल बेग के नेतृत्व में एक दूत मंडल जहांगीर के दरबार में भेजा गया, जिसने कंधार समस्या के प्रश्न को पुनर्जीवित किया। हालांकि जहांगीर ने इस और कोई ध्यान नहीं दिया और ईरानियों को कंधार सौंपने से मना कर दिया। उसके ऐसा करने के पीछे यह भी एक प्रमुख कारण था कि यदि वह ईरान की बात मानकर कंधार उन्हें सौंपता तो वह उसकी कमजोरी का प्रतीक माना जाता। जहांगीर शाह अब्बास के साथ अपनी दोस्ती के कारण यह समझने में भूल कर गया की शाह अब्बास कंधार पर कभी हमला भी कर सकता है। मुगलों की बढ़ती लापरवाही और जहांगीर के विश्वास का नाजायज फायदा उठाकर शाह अब्बास ने 11 जून 1622 को कंधार पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार क्षेत्र में शामिल कर लिया। हालांकि जहांगीर को अपनी बाह्य सीमाओं पर होने वाले षड्यंत्र की जानकारी थी किंतु वह अपने अंदरूनी मामलों में उलझा होने के कारण कंधार को सुरक्षित ना रख सका। कुछ समय पश्चात शाह अब्बास ने कंधार के प्रश्न पर उपजी कटुता को मिटाने की कोशिश करते हुए अपना दूत मंडल भेज कर उस कटुता को शांत करने का प्रयास किया, और जहांगीर ने संभवत: इसे औपचारिक रूप से स्वीकार भी कर लिया। परंतु एक बात तो तय थी कि अब ईरान और मुगलों के संबंधों के बीच वह पहली सी मिठास शेष न रही।

संक्षेप में, ईरान के प्रति जहाँगीर की नीति कूटनीतिक जुड़ाव और रणनीतिक गठबंधनों की विशेषता से विशेषित थी, जिसका उद्देश्य क्षेत्रीय शक्ति-गतिशीलता को संतुलित करना और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देना था। उनकी उत्तर-पश्चिमी नीति में सीमा को सुरक्षित और स्थिर करने के लिए सैन्य अभियान, प्रशासनिक सुधार और कूटनीतिक प्रयासों का संयोजन शामिल था, हालाँकि स्थानीय प्रतिरोध की चुनौतियाँ उनके पूरे शासनकाल में बनी रहीं।

7.8 शाहजहाँ और उसकी नीतियां

शाहजहां, उजबेक और ईरान सम्बन्ध: शाहजहां के मुगल सत्ता पर काबिज होने के पश्चात मुगल और उजबेक संबंधों में एक नया बदलाव आया। शाहजहां की विदेशनीति मुख्यतः तीन तत्वों पर आधारित थी। पहली उसकी कंधार को पुनः प्राप्त करने की इच्छा दूसरी उसके पूर्वजों की भूमि को पुनः प्राप्त करने की अभिलाषा और तीसरा दक्कन भारत

पर पूर्ण नियंत्रण को स्थापित करने की उसकी इच्छा। अपनी इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए शाहजहां ने ईरान और ट्रांसाक्सियाना दोनों से मित्रता साधने का प्रयास किया। ताकि जब वह कंधार से युद्ध करें तब उसे ट्रांसाक्सियाना की मित्रता का लाभ हो सके, और जब वह ट्रांसाक्सियाना से युद्ध करे तो उसे ईरान का सहयोग प्राप्त हो सके।

कंधार पर ईरानियों के कब्जा कर लेने के पश्चात उजबेक में बेचैनी पैदा हो गई, और उन्होंने ईरान के खिलाफ उजबेक मुगल और उसे उस्मानली शक्तियों के त्रिपक्षी गठबंधन बनाने का विचार को पुनर्जीवित किया। इस दौरान शाहजहां और इमाम कुली के बीच कूटनीतिक आदान-प्रदान भी काफी जोर-जोर से प्रारंभ हो गए। साल 1636 में शाहजहां ने उसे उस्मानली सुल्तान मुराद चतुर्थ को पत्र के माध्यम से कंधार को वापस पाने की अपनी योजना के बारे में अवगत करवाया, साथ ही ईरान पर भारत तुर्की और तूरान से तीतरफा हमले की योजना का प्रस्ताव रखा। हालांकि वह ईरान के खिलाफ उजबेक की मदद पर भरोसा नहीं करता था, साथ ही उस्मानली शक्ति भी इतनी दूर बैठे थे कि उनका प्रभाव भी नगण्य था। शाहजहां ने कूटनीति का सहारा लिया और कंधार के ईरानी शासन अधिकारी अली मर्दन खान को अपनी तरफ कर लिया। इस प्रकार 1638 में कंधार विजय प्राप्त कर लेने के बाद अब शाहजहां का लक्ष्य अपने पूर्वजों की भूमि ट्रांसाक्सियाना को विजित करना रह गया। हालांकि कंधार पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद उसने भी शाह अब्बास की ही भांति अपना एक दूत मंडल ईरान भेजा, और यह आशा व्यक्त की कि इससे ईरान और मुगलों के बीच संबंधों में खटास पैदा नहीं होगी। साथ ही उसने यह भी प्रस्ताव रखा कि वह कंधार से होने वाली आमदनी के बराबर रकम ईरान को अदा करता रहेगा, लेकिन ईरान का शासक शाह सफी कंधार पर पुनः नियंत्रण के लिए आतुर था। अतः उसने उसे उस्मानली शासक से एक समझौता कर लिया, जिसमें वह ईरान की मदद पर मुआवजे के रूप में उन्हें बगदाद सौंपने पर तैयार हो गया। इस खतरे के मुकाबले हेतु शाहजहां ने भी कंधार की रक्षा हेतु काबुल को अपना गढ़ बना लिया। और एक बहुत बड़े तोप खाने के साथ उसने अपने पुत्र दारा शिकोह को यह दायित्व सौंपा कि वह कंधार की रक्षा करे। हालांकि जब 1642 में शाह सफी कंधार विजय के लिए निकला तो रास्ते में ही बीमार होकर उसकी मृत्यु हो गई और ईरान में अव्यवस्था फैल गई। अब मुगलों को ईरान की ओर से लगभग खतरा टल गया और शाहजहां अपनी अन्य महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए प्रयास करने हेतु मुक्त हो गया।

शाजहाँ का बल्ख अभियान: यह अभियान मध्य एशिया में मुगल प्रभाव को सुरक्षित और विस्तारित करने की शाजहाँ की व्यापक रणनीति का हिस्सा था। इस अभियान की शुरुआत शाहजहां द्वारा 1646 में की गई। इतिहासकारों द्वारा शाहजहां के इस अभियान को मुगल विदेश नीति के इतिहास में उच्चतम शिखर पर माना गया है, हालांकि उसकी विफलता को कभी कभी मुगल सैन्य शक्ति के ह्रास के रूप में चित्रित किया जाता रहा है।

वस्तुत: जब 1638 में शाहजहां का कंधार पर पुनः अधिकार हो गया तो वह अपनी आगे की योजनाएं बनाने लगा। 1639 में ही इमाम कुली अंधा हो गया और नजर मोहम्मद ने इसका फायदा उठाते हुए उजबेक राज्य को हथिया लिया। इमाम कुली ने भाग कर ईरान में शरण ले ली और बाद में वह मक्का चला गया। नजर मोहम्मद एक

महत्वाकांक्षी और निरंकुश शासक था जिसने प्रादेशिक विस्तार की नीति को अमली जामा पहनाया। जब वह अपने ख्वारिज्म अभियान में व्यस्त था, तभी ताशकंद में विद्रोह भड़क उठा और उसने वहां विद्रोह शांत करने हेतु अपने पुत्र अब्दुल अजीज को भेजा। लेकिन उसका पुत्र विद्रोहियों से मिल गया और उसे बुखारा का खान घोषित कर दिया गया। इसके उपरांत नजर मोहम्मद अपने शरणस्थल बल्ख को लौटा परंतु उसके पुत्र ने यहां भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। साल 1645 में नजर मोहम्मद ने शाहजहां से मदद मांगी, और शाहजहां ने तत्परता से उसका अनुरोध स्वीकारते हुए अपने पुत्र मुराद के नेतृत्व में एक बड़ी फौज तैयार कर नजर मोहम्मद की सहायता के लिए काबुल रवाना कर दी। शाहजहां ने मुराद को कहा था कि वह नजर मोहम्मद से विनम्रता और आदर के साथ पेश आए। इसके पीछे यह भी कारण था कि शाहजहां बल्ख और बुखारा में एक दोस्ताना शासन चाहता था जो कि भविष्य में भी उसके सहायक और समर्थक के रूप में उपलब्ध रहे। हालांकि मुराद की जल्दबाजी के चलते उसके सारे मंसूबों पर पानी फिर गया और नजर मोहम्मद को बल्ख से भागना पड़ा। अब मुगलों को स्थानीय जनता के प्रतिरोध के बावजूद बल्ख पर कब्जा करना पड़ा। इसी बीच नजर मोहम्मद के पुत्र अब्दुल अजीज ने माउरा उन नहर के उजबेक कबीलों को मुगलों के खिलाफ भड़का दिया और आमू दरिया पर 120000 की सेना लेकर वह खड़ा हो गया। इसी बीच घर की याद में बैचैन और मध्य एशिया की कठोर जलवायु से परेशान शहजाद मुराद ने भी शाहजहां से वापस लौटने की इजाजत मांगी, शाहजहां उसकी इस बात से काफी नाराज हुआ और दंड के रूप में उसने उसे जागीर से भी वंचित कर दिया। इसके पश्चात बल्ख की समस्या के समाधान के लिए शाहजहां ने अपनी अमीर अली मर्दान खान और अपने पुत्र औरंगजेब को तैनात किया। बल्ख विजय के बाद शाहजहां चाहता तो वह समरकंद और बुखारा पर भी आक्रमण कर सकता था परंतु मालूम पड़ता है की स्थानीय आबादी के विरोध एवं मुगल तथा राजपूत सरदारों की बल्ख में टिके रहने की अनिच्छा के कारण शाहजहां ने बल्ख में एक दोस्ताना शासक को पदास्थापित करने की अपनी पुरानी नीति को ही अमलीजामा पहनाया जाना उचित समझा। शाहजहां ने नजर मोहम्मद को उसका राज्य लौटने का फैसला किया और उसे औरंगजेब की खिदमत में पेश होने का फरमान सुनाया। ऐसा उसने इसलिए भी किया क्योंकि वह जानता था कि लंबे समय तक बल्ख में टिके रहना संभव नहीं है। नजर मुहम्मद का कुछ समय तक इन्तजार करने और उसके हाजिर न् होने के पश्चात अक्टूबर 1647 में मुग़ल सेना बल्ख से वापस लौट गई। ठन्डे मौसम, रसद पहुँचने की कठिनाई और उजबेक सैनिकों के अचानक हमलों ने मुग़ल सेना की वापसी को लगभग शिकस्त में परिवर्तित कर दिया। संक्षेप में, शाहजहाँ का बल्ख अभियान मध्य एशिया में मुगल नियंत्रण का विस्तार करने के लिए एक महत्वपूर्ण लेकिन अंततः असफल सैन्य प्रयास था। इसने इस क्षेत्र में सैन्य अभियानों की दुर्जेय चुनौतियों को प्रदर्शित किया, जिसमें रसद संबंधी कठिनाइयाँ और स्थानीय शक्तियों का कड़ा प्रतिरोध शामिल था। अभियान की विफलता ने मुगल प्रभाव की सीमाओं को प्रदर्शित किया और शाहजहाँ को अपना ध्यान आंतरिक समेकन और सांस्कृतिक उपलब्धियों की ओर पुनर्निर्देशित करने के लिए प्रेरित किया।

7.9 औरंगजेब और उत्तर-पश्चिम

छठे मुगल बादशाह औरंगजेब का उत्तरपश्चिमी और मध्य एशियाई क्षेत्रों के प्रति जटिल और बहुआयामी दृष्टिकोण था। इन क्षेत्रों में उनकी नीतियाँ मुगल साम्राज्य को मजबूत करने और उसका विस्तार करने, आंतरिक और बाहरी खतरों से निपटने और साम्राज्य के रणनीतिक हितों का प्रबंधन करने की उनकी इच्छा से प्रभावित थीं। बल्ख अभियान की सफलता के बाद एक बार पुनः काबुल क्षेत्र में उजबेकों ने उपद्रव मचाना प्रारंभ कर दिया था। इसी समय ईरान ने भी कंधार पर आक्रमण कर 1649 में उस पर अधिकार कर लिया। यह हार शाहजहां के लिए भी अस्मिता का प्रश्न बन चुकी थी। शाहजहां ने कंधार पर पुनः कब्जा करने के लिए एक के बाद एक अपने शहजादों के नेतृत्व में तीन हमले किए। पहला आक्रमण औरंगजेब ने 50000 की सेना के साथ किया, हालांकि वह किले को जीतने में असफल रहा। 3 साल बाद औरंगजेब ने दोबारा कंधार को जीतने का प्रयत्न किया। उसके बाद तीसरे प्रयास में दाराशिकोह ने इस अभियान का नेतृत्व किया, हालाँकि वह भी कांधार को जीतने में असफल रहा। आगे जब औरंगज़ेब सत्ता के शीर्ष पर काबिज हुआ तब उसने कंधार को लेकर चल रही इस स्पर्धा को आगे न बढ़ने का फैसला किया। उसने ईरान से अपने कूटनीतिक संबंध स्थापित कर लिए। परंतु 1664 में जब शाह अब्बास द्वितीय ने औरंगजेब के दूत के साथ अपमानजनक व्यवहार किया, तब औरंगजेब ने पंजाब और काबुल में पुनः मुगल सक्रियता को शुरू कर दिया। हालांकि जब तक औरंगज़ेब कुछ कार्रवाई करता तब तक शाह अब्बास द्वितीय की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी अयोग्य साबित हुए, और अब भारतीय सरहद के लिए ईरान का खतरा लगभग समाप्त हो गया। इस प्रकार हम पाते हैं की मुगलों ने उत्तर पश्चिम में एक वैज्ञानिक सीमा को कायम रखने में कामयाबी हासिल कर ली थी। औरंगजेब ने उत्तरपश्चिमी क्षेत्रों में, विशेष रूप से अब पाकिस्तान और अफ़गानिस्तान में कई सैन्य अभियान चलाए। उनका मुख्य उद्देश्य गक्खर और यूसुफजई सहित पश्तून जनजातियों को वश में करना और खैबर दर्रे को सुरक्षित करना था, जो एक महत्वपूर्ण रणनीतिक और व्यापार मार्ग था। औरंगजेब ने किलेबंदी कर इन अस्थिर क्षेत्रों पर मुगल नियंत्रण को मजबूत करने का प्रयास किया। इसका उद्देश्य संभावित आक्रमणों और विद्रोहों के खिलाफ साम्राज्य की उत्तरपश्चिमी सीमा को सुरक्षित करना था। इन क्षेत्रों को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने के लिए, औरंगज़ेब ने प्रशासनिक परिवर्तन किए और सेना को पुनर्गठित किया। उसने व्यवस्था बनाए रखने और मुगल अधिकार को बनाए रखने के लिए वफादार अधिकारियों को नियुक्त किया और सैन्य चौकियाँ स्थापित कीं।अपने प्रयासों के बावजूद, औरंगज़ेब को स्थानीय जनजातियों और सरदारों से महत्वपूर्ण प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। बीहड़ इलाके और इन जनजातियों की स्वतंत्रता ने मुगल नियंत्रण के लिए चुनौतियाँ खड़ी कीं। इस प्रतिरोध के कारण अक्सर लंबे और महंगे सैन्य अभियान होते थे। वर्ष 1707 में औरंगजेब की मृत्यु हो गई और आगे अयोग्य शासकों के सत्ता में अधिकार पाने के कारण मुग़ल साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त हो गया।

7.10 सारांश

मुगल साम्राज्य की उत्तर-पश्चिमी और मध्य एशियाई नीति मुग़ल साम्राज्य के इतिहास में एक आकर्षक अध्याय का प्रतिनिधित्व करती है, जो कि मुगलों की सैन्य रणनीति, कूटनीतिक सोच और क्षेत्रीय गतिशीलता के जटिल पारस्परिक संबंधों पर प्रकाश डालती है। इन सीमावर्ती क्षेत्रों के लिए मुगल शासकों का दृष्टिकोण केवल अपनी बाह्य सीमाओं को सुरक्षित रखने का नहीं था, बल्कि इसका उद्देश्य मुगलों के प्रभुत्व, स्थिरता और विरासत को एक व्यापक आधार प्राप्त करना था।बाबर की विजय के शुरुआती दिनों से लेकर, अकबर की व्यापक दृष्टि और औरंगज़ेब के सामने आने वाली चुनौतियों तक, उत्तर-पश्चिमी और मध्य एशियाई क्षेत्रों के प्रति मुगलों की नीति उनकी उभरती प्राथमिकताओं और बदलते भू-राजनीतिक परिदृश्य को दर्शाती है। उत्तर-पश्चिम में बाबर के शुरुआती हमले, सैन्य कौशल और कूटनीति के रणनीतिक उपयोग द्वारा चिह्नित स्थल, मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिए आधार तैयार करते हैं। उपमहाद्वीप में मुगलों केवर्चस्व की स्थापना के उसके यह प्रयास भविष्य के शासकों के लिए एक मजबूत तथा स्थिर मंच तैयार करने में महत्वपूर्ण थे।अकबर के युग में एकीकरण पर ध्यान केंद्रित करते हुए एक महत्वपूर्ण बदलाव हुआ। अब उत्तर-पश्चिमी सीमांत में उनकी नीतियों का उद्देश्य साम्राज्य की सीमाओं को सुरक्षित करना और क्षेत्रीय शासकों की वफ़ादारी को सुनिश्चित करना था। अपने सैन्य अभियानों और कूटनीतिक गठबंधनों के माध्यम से, अकबर ने इस क्षेत्र को स्थिर करने और इसे व्यापक मुगल प्रशासन में एकीकृत करने का प्रयास किया। उनका दृष्टिकोण क्षेत्र के रणनीतिक महत्व और नियंत्रण बनाए रखने में बल और कूटनीति दोनों की आवश्यकता की सूक्ष्म समझ का संकेत था।

बाद के मुगल सम्राटों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा जिसने साम्राज्य की लचीलापन की परीक्षा ली। औरंगज़ेब के विस्तारित संघर्ष और मध्य एशिया के गतिशील राजनीतिक परिदृश्य ने मुगल नीतियों और रणनीतियों के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता पैदा की। औरंगज़ेबके समय उभरती क्षेत्रीय शक्तियों के दबाव और साम्राज्य के आंतरिक तनावों ने साथ मिलकर कुछ इस तरह की परिस्थितियाँ पैदा कर दी की अब रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण और अस्थिर सीमा पर नियंत्रण बनाए रखने में मुगलों को कठिनाई होने लगी।अंततः इतना कहा जा सकता है कि,उत्तर-पश्चिमी और मध्य एशियाई क्षेत्रों के प्रति मुगल नीति साम्राज्य की रणनीतिक सोच और अनुकूलनशीलता को दर्शाती है। इन सीमाओं के जटिल भू-राजनीतिक परिदृश्य और सांस्कृतिक विभिन्नताओं को साथ लेकर चलने की मुगलों की क्षमता और यहाँ उनकी सफलता उनके शासन के लिए महत्वपूर्ण थी। मुगल इतिहास के इस पहलू को समझने से न केवल साम्राज्य की सैन्य और कूटनीतिक रणनीतियों पर प्रकाश पड़ता है, बल्कि यह भी पता चलता है कि क्षेत्रीय गतिशीलता किस तरह से साम्राज्यों की सीमाओं को प्रभावित कर उन्हें आकार दे सकती है। मुग़ल शासकों की नीतियों और रणनीतियों का विश्लेषण करके, हम साम्राज्य-निर्माण, क्षेत्रीय कूटनीति और समकालीन भू-राजनीतिक वास्तविकताओं पर ऐतिहासिक विरासतों के स्थायी प्रभाव के व्यापक विषयों के बारे में भी जानकारी प्राप्त करत पाते हैं।

7.11 तकनीकी शब्दावली

- **सफवी:** ईरान का मध्यकालीन राजवंश
- **उजबेक:** मध्य एशिया की जनजाति जिन्होंने खुरासान में अपनी राजसत्ता स्थापित की
- **बल्ख:** उत्तरी अफ़गानिस्तान में स्थित एक प्राचीन शहर, जो मध्य एशिया में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और आर्थिक केंद्र था।
- **रसद:** सेना हेतु खाद्य- आपूर्ति का सामान

7.12 स्वमूल्यांकित प्रश्न

प्रश्न: शाह अब्बास कहाँ का शासक था?

(क) ईरान (ख) इराक (ग) ख्वारिज्म (घ) तुर्की

प्रश्न: बल्ख का पहला अभियान किसके नेतृत्व में भेजा गया था?

(क) दारा शिकोह (ख) अली मर्दान खां (ग) औरंगजेब (घ) मुराद

प्रश्न: बाबर ने किस वर्ष भारत में मुग़ल वंश की स्थापना की थी?

(क) 1522 (ख) 1526 (ग) 1528 (घ) 1542

7.13 संदर्भग्रंथसूची

- इरफ़ान हबीब, मुगल साम्राज्य (नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2007)
- सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत, 2003
- हरीश चन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2008
- अब्दुल-कादिर बदायूंनी, मुंतखब-उल-तवारीख, सी.ई. बोसवर्थ द्वारा अनुवादित, लंदन: कर्जन प्रेस, 1996
- जदुनाथ सरकार, औरंगजेब का इतिहास, कलकत्ता: कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1930
- रिजवी, एस.ए.ए., मुगल साम्राज्य का उदय और पतन, दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस, 1986
- इकाई 6, मुग़ल साम्राज्य का विस्तार, इग्नू

7.14 निबंधात्मकप्रश्न

प्रश्न: प्रारंभिक मुग़ल सम्राटों की विदेश नीति की समीक्षा कीजिये।

प्रश्न: शाजहाँ के उजबेक सम्बन्ध तथा बल्ख अभियान पर एक लेख लिखिए।

इकाई आठ – मुगलों के राजत्व का सिद्धान्त

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 मुगलों से पूर्व भारत में राजत्व का सिद्धान्त

- **8.3.1** प्राचीन भारत में राजत्व का सिद्धान्त
- **8.3.2** इस्लाम के अन्तर्गत राजत्व का सिद्धान्त
- **8.3.3** दिल्ली सल्तनत काल में राजत्व का सिद्धान्त
  - **8.3.3.1** तथाकथित गुलाम वंश में राजत्व का सिद्धान्त
  - **8.3.3.2** अलाउद्दीन खिलजी तथा मुहम्मद तुगलक का राजत्व का सिद्धान्त
  - **8.3.3.3** अफ़गान राजत्व का सिद्धान्त

8.4 मुगलों का राजत्व का सिद्धान्त

- **8.4.1** बाबर का राजत्व का सिद्धान्त
- **8.4.2** अकबर का राजत्व का सिद्धान्त
- **8.4.3** शाहजहां का स्वयं को स्वर्गलोक के शासक के रूप में प्रस्तुत करना
- **8.4.4** मुगल राजत्व के सिद्धान्त में बादशाह के अधिकार और कर्तव्य
- **8.4.5** वंशानुगत शासन की परम्परा का विरोध
- **8.4.6** औरंगज़ेब द्वारा अकबर के राजत्व के सिद्धान्त में परिवर्तन
- **8.4.7** राजनीतिक पराभव के काल में मुगल राजत्व के सिद्धान्त की निरर्थकता
- **8.4.8** मध्यकालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में मुगल राजत्व के सिद्धान्त का आकलन

8.5 सारांश

8.6 पारिभाषिक शब्दावली

8.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

बाबर ने भारत में पादशाह के रूप स्वयं को स्थापित किया था। सुल्तान पद की तुलना में पादशाह अथवा बादशाह का पद अधिक गरिमा, प्रतिष्ठा और शक्ति का द्योतक था। पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त शासक के रूप में मुगल बादशाहों ने स्वयं को खलीफ़ा द्वारा वैधानिक मान्यता दिए जाने की शर्त से व्यावहारिक व सैद्धान्तिक दृष्टि से मुक्त किया। पादशाह बाबर ने वंशानुगत शासन की स्थापना की और अपनी बहुसंख्यक गैर-मुस्लिम प्रजा को किंचित प्रतिबन्धों के साथ शान्तिपूर्वक जीने का अधिकार दिया।

अकबर ने राजत्व के दैविक सिद्धान्त का पोषण किया। उसने स्वयं को पृथ्वी पर ईश्वर के प्रतिनिधि, पूर्ण पुरुष तथा अपनी प्रजा के आध्यात्मिक मार्गदर्शक के रूप में प्रतिष्ठित किया। अबुल फ़ज़्ल ने आइन-ए-अकबरी में अकबर के धर्म-निर्पेक्ष राजत्व के सिद्धान्त की विशद व्याख्या की है। अकबर के राजत्व के सिद्धान्त पर हिन्दुओं के पौराणिक एवं ऐतिहासिक राजत्व के सिद्धान्तों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा था।

औरंगज़ेब ने इस्लाम को राज-धर्म घोषित कर राजत्व के दैविक सिद्धान्त का परित्याग कर दिया और स्वयं को इस्लाम के संरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया। अपने साम्राज्य कोदारुल हर्ब से दारुल इस्लाम में परिवर्तित करने के प्रयास में उसने राजनीति पर धर्म के प्रभुत्व को एक बार फिर से स्थापित किया। परवर्ती मुगल शासकों ने अपनी अयोग्यता व अकमर्ण्यता से मुगल राजत्व के सिद्धान्त की महत्ता को गहरा आघात पहुंचाया। मुगलों का राजत्व का सिद्धान्त मध्यकालीन राजनीतिक आदर्शों के अनुरूप था और इस पर तुर्की, ईरानी, मंगोल तथा भारतीय राजत्व के सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा था।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- मुगलों के भारत आगमन से पूर्व प्रचलित राजत्व के सिद्धान्त।

2. पादशाह अथवा बादशाह की अवधारणा।

3. अकबर के राजत्व के सिद्धान्त सम्बन्धी प्रयोग।

4. राज-धर्म इस्लाम के अन्तर्गत औरंगज़ेब द्वारा अकबर द्वारा पोषित राजत्व के सिद्धान्त में परिवर्तन।

5. मध्यकालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में मुगलों के राजत्व का सिद्धान्त।

8.3 मुगलों से पूर्व भारत में राजत्व का सिद्धान्त

8.3.1 प्राचीन भारत में राजत्व का सिद्धान्त

अति प्राचीन भारत में राजत्व के सिद्धान्त में शासक के चयन की प्रक्रिया प्रचलित थी। विभिन्न कबीलों द्वारा सबसे सक्षम व्यक्ति का शासक के रूप में चयन किया जाता था। शासक का अस्तित्व उसके शासकत्व के गुणों तथा उसके कर्तव्य निर्वाहन की क्षमता पर निर्भर करता था। एक अयोग्य शासक को कर्तव्य निर्वाहन की कसौटी पर खरा न उतरने की स्थिति में अपदस्थ भी किया जा सका था। वैशाली आदि राज्यों में शासक विहीन गणराज्य की स्थापना थी। किन्तु साम्राज्यों के उदय के काल में राजत्व के दैविक सिद्धान्त का पोषण किया जाने लगा। राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि कहा जाने लगा। शासकगण अपने वंश की उत्पत्ति सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदि दैविक शक्तियों से बताने लगे और वंशाननुगत शासन प्रणाली का पोषण करने लगे। राजा को अनियन्त्रित शक्तियां प्राप्त हुईं किन्तु उससे यह अपेक्षा की गई कि राज्य संचालन में वह धर्म, नीति और परम्पराओं का पालन करे। देवानां प्रिय सम्राट अशोक, चद्रगुप्त विक्रमादित्य और हर्षवर्धन ने आदर्श शासक की परिकल्पना को साकार करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

8.3.2 इस्लाम के अन्तर्गत राजत्व का सिद्धान्त

इस्लाम में धर्म और राजसत्ता आपस में जुड़े हुए होते हैं। वास्तव में आस्तिकों के समुदाय में धर्म और राजनीति दोनों में ईश्वरीय आदेश का ही अनुपालन होता है। इस्लाम के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ स्थान विशेष की परिस्थितियों तथा परम्पराओं के अनुसार राजत्व के सिद्धान्त में किंचित संशोधन अथवा परिवर्तन किए गए किन्तु मूलतः उसका स्वरूप कुरान शरीफ़ में वर्णित शासक के अधिकारों और कर्तव्यों पर ही आधारित रहा। प्रसिद्ध विचारक और इतिहासकार इब्न खल्दून के अनुसार इस्लाम में शासक के बिना राज्य का अस्तित्व असम्भव है। इसीलिए हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के बाद खलीफ़ा के पद तथा उसके राज्य खिलाफ़त की अवधारणा का विकास किया गया। खलीफ़ा को धर्म-प्रमुख, शासक तथा सर्वोच्च सेनानायक तीनों की ही भूमिका एक साथ निभानी थी। किन्तु उसकी सत्ता रोमन कैथोलिक चर्च के पोप के समकक्ष नहीं थी क्योंकि उसे पोप के समान धर्म की व्याख्या करने की शक्ति प्राप्त नहीं थी। खलीफ़ा को शरा के नियमों का पालन करते हुए एक शासक के अधिकारों व कर्तव्यों का निर्वाहन करना होता था। खलीफ़ा को स्वतः अपनी प्रजा पर शासन करने का अधिकार नहीं मिल जाता था। विभिन्न मुस्लिम समुदायों द्वारा उसका चयन होता था। खलीफ़ा को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने का अधिकार नहीं था। खलीफ़ा का पद वंशानुगत नहीं होता था।

8.3.3 दिल्ली सल्तनत काल में राजत्व का सिद्धान्त

8.3.3.1 तथाकथित गुलाम वंश में राजत्व का सिद्धान्त

1. इस्लाम के व्यापक प्रचार-प्रसार के साथ खलीफ़ा की खिलाफ़त का भी विस्तार हुआ किन्तु व्यावहारिक रूप में इतने विशाल क्षेत्र पर एक ही व्यक्ति द्वारा शासन कर पाना असम्भव था। इसलिए 'खलीफ़ा' के अधीन 'सुल्तान' तथा 'खिलाफ़त' के अन्तर्गत 'सल्तनत' की संस्थाओं का विकास किया गया गया। सुल्तान को खलीफ़ा के नाइब के रूप में स्थापित किया गया। खुतबे में खलीफ़ा का नाम लिया जाना अनिवार्य था। दिल्ली के सुल्तानों ने तुर्क राजत्व के सिद्धान्त का पोषण किया जिसमें कि सुल्तान को शरियत के नियमों के अनुसार शासन करना आवश्यक होता था। इस हेतु उसको उलेमा वर्ग और उसमें भी विशेषकर सद्र-उस-सुदूर की सलाह अथवा उसके मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती थी। दिल्ली के सुल्तान के रूप में इल्तुतमिश को गुलाम के गुलाम होने के कलंक को मिटाने के लिए खलीफ़ा से वैधानिक मान्यता प्राप्त करना आवश्यक हो गया था।

2. बलबन का राजत्व का सिद्धान्त प्रत्यक्षतः निरंकुश, स्वेच्छाचारी शासन का समर्थक दिखाई देता है परन्तु वास्तव में यह अनेक उपयोगी नियमों, नैतिक व धार्मिक आदर्शों से बंधा हुआ था। बलबन ने सुल्तान के पद की खोई हुई प्रतिष्ठा फिर से स्थापित करने और जनता व आभिजात्य वर्ग में सुल्तान के प्रति श्रद्धा तथा भय का भाव फिर से संचारित करने के लिए राजत्व के दैविक सिद्धान्त का पोषण किया। इस्लाम के इतिहास से यह विदित होता है किं खलीफ़ा का चयन किया जाता था और खलीफ़ा के अधिकारों का उसके कर्तव्यों से अटूट सम्बन्ध था किन्तु राजत्व के दैविक सिद्धान्त के अन्तर्गत शासक पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता है और उसके आदेश में ईश्वर का आदेश प्रतिध्वनित होता है। राज्य में शासक का कोई समकक्ष नहीं हो सकता और न ही शासक के रूप में उसका कोई सम्बन्धी हो सकता है। शासक के सगे रक्त सम्बन्धियों के लिए भी उसके प्रति श्रद्धा और स्वामिभक्ति का प्रदर्शन करना, उनका कर्तव्य होता है। उसने सुल्तान के समक्ष हर किसी के लिए सिजदा और पैबोस जैसी गैर-मुस्लिम परम्पराओं का प्रचलन किया। सुल्तान को ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से उसने वैभवशाली एवं गरिमापूर्ण दरबार लगाया। इस दरबार में सुल्तान के सामने सभी हाथ बांधकर खड़े रहने के लिए बाध्य थे। सुल्तान के आदेश को ग्रहण करने के लिए अमीरों को उसे पैदल चलकर प्राप्त करना होता था। शासक के लिए आम इंसान की तरह हँसना या रोना तक निषिद्ध हो गया। बलबन ने दरबार में अपने पुत्र महमूद की मृत्यु का समाचार सुनकर भी रोना उचित नहीं समझा। आभिजात्य वर्ग, उलेमा तथा विद्वानों के अतिरिक्त उसने आम आदमियों से मिलना-जुलना बिलकुल बन्द कर दिया। बलबन ने स्वयं को पौराणिक अफ़्रीसियाबों का वंशज घोषित किया। बलबन ने बलबन का राजत्व का दैविक सिद्धान्त इस्लाम की मूल अवधारणाओं के विरुद्ध था किन्तु बलबन ने खलीफ़ा के प्रभुत्व अथवा उसकी सर्वोच्चता को कभी चुनौती नहीं दी। बलबन के राजत्व के सिद्धान्त को हम पूर्ववर्ती कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा परवर्ती मैकियावेली के दि प्रिंस में उल्लिखित राजत्व के सिद्धान्त के समकक्ष रख सकते हैं।

8.3.3.2 अलाउद्दीन खिलजी तथा मुहम्मद तुगलक का राजत्व का सिद्धान्त

अलाउद्दीन खिलजी ने बलबन के राजत्व के दैविक सिद्धान्त का पोषण किया। उसने शासक को ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में स्थापित किया। अलाउद्दीन ने अमीरों की शक्ति व प्रतिष्ठा में कमी की। उसने जलाली अमीरों का पूर्णतया दमन कर दिया और अपने वफ़ादार अमीरों की शक्तियों को भी नियन्त्रित किया। गुप्तचरों का जाल बिछाकर अमीरों के आपस में मिलने-जुलने, वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने आदि पर उसने राज्य का नियन्त्रण स्थापित किया। विद्रोह व षडयन्त्र करने वालों का समूल विनाश कर उसने सभी को भविष्य में विद्रोह करने का दुःसाहस करने से रोक दिया। अलाउद्दीन ने उलेमा वर्ग की भी उपेक्षा की। उलेमाओं को मिलने वाली आर्थिक सुविधाओं और रियायतों को उसने समाप्त कर उन्हें साधनहीन बना दिया। अलाउद्दीन चूंकि शासक को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था इसलिए धर्म के नाम पर उलेमा वर्ग द्वारा राजकाज में हस्तक्षेप करना उसे स्वीकार्य नहीं था। उसने राज्य पर से धर्म का नियन्त्रण हटा दिया। अलाउद्दीन ने खलीफ़ा से खिलअत अथवा उपाधि प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया। मुहम्मद तुगलक ने भी अलाउद्दीन खिलजी की भांति अपने राज्य में धर्म अथवा धर्म प्रतिनिधियों की भूमिका पर नियन्त्रण लगा दिया किन्तु अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद बिन तुगलक जैसे महत्वाकांक्षी सुल्तानों ने भी कभी खलीफ़ा की सत्ता से पूर्णतया स्वतन्त्र होने का साहस नहीं किया। अपनी गिरती साख को उठाने के उद्देश्य से मुहम्मद तुगलक ने खलीफ़ा के प्रतिनिधि का भव्य स्वागत-सम्मान किया था।

8.3.3.3 अफ़गान राजत्व का सिद्धान्त

1. सुल्तान बहलोल लोदी अफ़गान जाति का था। वह अफ़गानों की कबाइली राजनीतिक अवधारणा में विश्वास करता था। शासक की पूर्ण सम्प्रभुता और उसकी निरंकुश शक्ति में अफ़गानों की आस्था नहीं थी। उनका विश्वास शासक अथवा मुखिया के चुनाव में था न कि राजत्व के दैविक सिद्धान्त और वंशानुगत शासन की अवधारणा में। अपनी कबाइली संस्कृति में विश्वास रखते हुए अफ़गानों के विभिन्न कबीले, शासक को अपनी बिरादरी का मुखिया मानते थे न कि अपना स्वामी। बलबन, अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक के राजत्व के दैविक सिद्धान्त के विपरीत, सुल्तान बहलोल लोदी अफ़गानों के कबाइली और कुनबे की राजनीतिक अवधारणा में विश्वास करता था। बहलोल ने कभी भी एक स्वेच्छाचारी, निरंकुश एवं पूर्णसम्प्रभुता प्राप्त शासक की भांति व्यवहार नहीं किया। वह स्वयं को राज्य संघ का प्रमुख मात्र मानता था। उसने अपने पुरखों के स्थान रोह से अपने कबीले वालों को अपने राज्य में आने के लिए निमन्त्रित किया था। अपनी बिरादरी के अमीरों को उसने अपनी बराबरी का दर्जा दिया और सल्तनत में उनको अपना हिस्सेदार माना। उनके रूठने पर उनको मनाने के लिए उनके घर तक जाने में उसे कोई ऐतराज़ नहीं था और उनके साथ एक ही मसनद पर बैठने में उसे कोई संकोच नहीं था।

2. सिकन्दर लोदी के अमीर उसको अपना स्वामी नहीं, अपितु अपना मुखिया मात्र मानते थे। उसके अनेक अमीर उसके स्थान पर बरबक शाह अथवा आज़म हुमायूं को सुल्तान बनाना चाहते थे। सिकन्दर लोदी ने बहलोल लोदी द्वारा

पोषित राजत्व के सिद्धान्त में बदलाव कर सुल्तान पद की गरिमा को बढ़ाया और अमीरों के महत्व को कम किया। सुल्तान ने अपने अमीरों को अपने साथ एक ही मसनद पर बिठाने के स्थान पर उन्हें अपने सामने खड़े रहकर सम्मान प्रदर्शित करने के लिए विवश किया। अमीरों को सुल्तान के आदेश को पैदल चलकर ग्रहण करने के लिए बाध्य किया गया। अनुशासनहीन एवं भ्रष्ट अमीरों को उसने दण्डित किया और उनकी गतिविधियों पर दृष्टि रखने के लिए गुप्तचर नियुक्त किए।

3. इब्राहीम लोदी ने भी अपने पिता के समान अफ़गान राजत्व के सिद्धान्त को नकारते हुए सुल्तान के पद और उसकी गरिमा को अत्यधिक महत्ता दी और सुल्तान के चयन अथवा उसके कार्य-संचालन में अमीरों की किसी भी प्रकार की भूमिका को समाप्त कर दिया।

8.4 मुगलों का राजत्व का सिद्धान्त

8.4.1 बाबर का राजत्व का सिद्धान्त

बाबर स्वयं चग़ताई तुर्क था और अपनी माँ की ओर से उसमें मंगोल रक्त था। बाबर ईरान के सम्पर्क में भी रहा था। बाबरं का राजत्व का सिद्धान्त मुख्यतः तुर्क, ईरानी तथा मंगोल राजत्व के सिद्धान्तों पर आधारित था। बाबर ने अप्रैल, 1526 में पानीपत के युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना के साथ-साथ एक नवीन राजत्व के सिद्धान्त की स्थापना भी की । बाबर ने स्वयं को सुल्तान के स्थान पर पादशाह अथवा बादशाह की उपाधि धारण की। पादशाह अथवा बादशाह एक पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त शासक होता था जब कि सुल्तान को अपने पद की वैधानिकता सिद्धान्ततः खलीफ़ा द्वारा प्रदान की जाती थी। इस प्रकार पादशाह अथवा बादशाह का दर्जा सुल्तान से कहीं अधिक ऊँचा था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि पादशाह अथवा बादशाह को अपने पद की वैधानिकता के लिए खलीफ़ा की मान्यता की आवश्यकता नहीं होती थी। इस प्रकार सुल्तान का अस्तित्व मूलतः इस्लाम के अन्तर्गत सर्वोच्च धार्मिक सत्ता खलीफ़ा के आधीन होता था जब कि पादशाह अथवा बादशाह को किसी धार्मिक सत्ता से मान्यता अथवा वैधानिकता प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती थी। पादशाह अथवा बादशाह की प्रजा को अपनी निष्ठा खलीफ़ा के प्रति नहीं बल्कि पादशाह अथवा बादशाह के प्रति प्रदर्शित करनी होती थी। इस प्रकार पादशाह अथवा बादशाह स्वयं में सर्वोच्च था और उसकी सत्ता धर्म-निर्पेक्ष थी। मुगल काल में पादशाह की तुलना में सुल्तान तथा शाह पद की महत्ता कम की गई और यह पद अब शहज़ादों को प्रदान किया जाने लगा था। शहज़ादा खुर्रम को 'शाहजहां' और शहज़ादा मुअज़्ज़म को 'शाह' की उपाधि अपने-अपने पिताओं द्वारा ही प्रदान कर दी गई थी।

8.4.2 अकबर का राजत्व का सिद्धान्त

1. मुगलों ने राजत्व के दैविक सिद्धान्त का अनुपालन किया। मुगलों द्वारा शासक को ईश्वर का प्रतिनिधि बताया गया और उसके आदेश में ईश्वर के आदेश की प्रतिध्वनि बताई गई। राजभक्ति को ईश्वरीय भक्ति का ही एक रूप माना गया।

इस दृष्टि से बादशाह के साम्राज्य के हर व्यक्ति के लिए उसके आदेश को मानना उसका धार्मिक कर्तव्य माना गया। अबुल फ़ज़्ल ने अपने ग्रंथ अकबरनामा में राजत्व को ईश्वरीय उपहार माना है। अबुल फ़ज़्ल ने बादशाह को प्रजा के संरक्षक, उसके पालक, शुभचिन्तक और अभिभावक के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार बादशाह के अपरिमित अधिकारों के साथ उसके कर्तव्यों को भी जोड़ दिया गया क्योंकि पिता के पद की गरिमा और उसके अधिकारों को बिना किसी दायित्व के ग्रहण नहीं किया जा सकता। अबुल फ़ज़्ल के अनुसार बादशाह का कार्य राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित कर उसे सुदृढ़ता तथां सुरक्षा प्रदान करना है। अगर बादशाह का अस्तित्व नहीं होता तो हर जगह अशान्ति, अराजकता व्याप्त रहती और निहित स्वार्थों में लिप्त व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के अधिकारों का हनन कर रहे होते। समस्त मानवजाति के लिए विनाशकारी इन प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए बादशाह को अपनी शक्ति का भय दिखलाना आवश्यक है। बादशाह के प्रति आज्ञाकारिता और उसके प्रति निष्ठा व स्वामिभक्ति प्रदर्शित करना उसकी प्रजा का कर्तव्य है। प्रजापालक बादशाह जनकल्याण, सर्वतोन्मुखी प्रगति तथा निष्पक्ष न्याय का जीवन्त प्रतीक होता है।

2. अबुल फ़ज़्ल पादशाह शब्द में पाद को स्थायित्व व स्वामित्व का तथा शाह को ईश्वर के प्रतिनिधि का प्रतीक मानता है। अतः पादशाह दैविक शक्ति से युक्त, ईश्वरीय आदेश पर पृथ्वी पर भेजा गया एक सर्वशक्तिमान शासक है जिसको आम प्रजा अथवा प्रभावशाली उलेमा वर्ग अथवा अमीरों द्वारा अपदस्थ नहीं किया जा सकता। पादशाह के विरुद्ध विद्रोह करना अथवा उसके आदेश की अवज्ञा करना, ईश्वरीय आदेश की अवमानना है।

एक आदर्श बादशाह सुख-दुःख से परे होता है। उसमें ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है इसलिए उसे अपनी प्रजा का आध्यात्मिक गुरु अथवा मार्गदर्शक बनने का भी अधिकार है। सन् 1579 में निर्गत महज़र में अकबर ने मुसलमानों के धार्मिक विवादों के विषय में प्रामाणिक व्याख्या तथा अन्तिम निर्णय देने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा था। अकबर की नीतयों से असन्तुष्ट उलेमा वर्ग ने जब उसको अपदस्थ करने के षडयन्त्र में भाग लिया तब उसने उनके प्रभाव और प्रतिष्ठा को और भी क्षीण कर दिया।

3. सन् 1582 में दीन-ए-इलाही की योजना को प्रस्तुत किया गया था। अकबर इस नवीन मत का प्रणेता, आध्यात्मिक गुरु पुरोहित तथा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि था। इसके मतावलम्बी अकबर से दीक्षा लेते थे और अपने अहंकार तथा स्वार्थ को त्याग कर उसके प्रति अपनी पूर्ण निष्ठा एवं भक्ति व्यक्त करते थे। तौहीद-ए-इलाही (दैविक एकेश्वरवाद) अथवा दीन-ए-इलाही को बदायूंनी ने अकबर द्वारा धर्म प्रवर्तक के रूप में अपने साम्राज्य की समस्त प्रजा को स्वनिर्मित एक राष्ट्रीय धर्म के अन्तर्गत लाने की महत्वाकांक्षी योजना कहा है। कुछ अन्य विद्वानों ने उसके द्वारा स्वयं को एक पैगम्बर या खलीफ़ा के रूप में प्रस्तुत करने का षडयन्त्र कहा है। दीन-ए-इलाही में अल्लाह हो अकबर (अल्लाह महान है।) तथा जल्ले जलाल हू के नारों का महत्व था। इन दोनों में बादशाह के नाम - 'अकबर' तथा 'जलालुद्दीन' का सम्मिलित होना आकस्मिक नहीं माना जा सकता। दीन-ए-इलाही में बादशाह अकबर को अपना

आध्यात्मिक गुरु मानते हुए उपासक उसके समक्ष अपना तन-मन-धन तथा ईमान अर्पित करते थे। वास्तव में अकबर के राजत्व के सिद्धान्त के अनुसार, बादशाह, इस पृथ्वी पर, ईश्वर की छाया और उसका प्रतिनिधि होता है। अबुल फ़ज़्ल ने बादशाह अकबर को इंसान-ए-कामिल अर्थात् सर्वगुण सम्पन्न, दोषरहित, पूर्ण पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया है। अकबर का राजत्व का सिद्धान्त इस्लाम की राजनीतिक परम्पराओं पर आधारित नहीं था। उसके राजत्व के सिद्धान्त पर हिन्दुओं के राजत्व सिद्धान्त का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। फ़तेहपुर सीकरी में अकबर ने दीवान-ए-खास का निर्माण कराया था। इसके मुख्य कक्ष के मध्य में बादशाह एक सुदृढ़ स्तम्भ के ऊपर कमल की आकृति के गोलाकार स्थान पर रखे सिंहासन पर बैठता था। इसकी प्रेरणा कमल पर विराजमान प्रजापति ब्रह्मा की अवधारणा से ली गई थी। अकबर ने अपने नवरत्नों की अवधारणा की प्रेरणा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तथा अन्य भारतीय शासकों से प्राप्त की थी। अकबर के ब्राह्मण चाटुकारों ने उसे भगवान कृष्ण के अवतार के रूप में भी प्रस्तुत किया था। अकबर ने झरोखा दर्शन की हिन्दू शासकों की परम्परा को पुनर्जीवित किया था। उसके काल में उसके अनेक भक्त दर्शनिए बन गए थे जो कि अकबर का दर्शन किए बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करते थे। इस प्रकार अकबर ने व्यक्ति पूजा को प्रोत्साहन दिया जो कि इस्लाम के मूलभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध था।

8.4.3 शाहजहां का स्वयं को स्वर्गलोक के शासक के रूप में प्रस्तुत करना

दिल्ली के लालकिले में उद्यान-योजना, नहरे बहिश्त , दीवान-ए-खास में शाहजहां के दरबार का अनुपम वैभव और तख्त-ए-ताऊस पर उसका विराजमान होना तथा दीवान-ए-खास को पृथ्वी पर स्वर्ग के रूप में प्रस्तुत करने की गर्वोक्ति शाहजहां द्वारा स्वयं को स्वर्गलोक के शासक इन्द्र के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास कहा जा सकता है।

8.4.4 मुगल राजत्व के सिद्धान्त में बादशाह के अधिकार और कर्तव्य

महान मुगल बादशाहों में हुमायूं तथा जहांगीर के अतिरिक्त सभी बादशाह कर्मठ थे तथा अपने अधिकारों के साथ-साथ अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक थे। सभी बादशाह अपनी प्रजा के हितों के संरक्षण के लिए प्रयत्नशील रहते थे। बादशाह अकबर ने अप्रत्यक्ष रूप से सम्राट अशोक तथा शेरशाह की लोक-कल्याणकारी शासन-व्यवस्था से प्रेरणा प्राप्त की थी। बादशाह बाबर और बादशाह अकबर ने सैनिक अभियानों में स्वयं अपनी वीरता और साहस से अपने सैनिकों के लिए एक आदर्श उपस्थित किया था। सभी बादशाहों ने निष्पक्ष न्याय वितरण को अपना कर्तव्य माना था। राजा विक्रमादित्य तथा शेर शाह की न्याय व्यवस्था उनके लिए आदर्श थी। अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं के बावजूद जहांगीर ने इंसाफ़ पसन्द बादशाह के रूप में ख्याति प्राप्त की थी। अब्दुल हमीद लाहौरी ने अपने ग्रंथ बादशाहनामा में शाहजहां की व्यस्त दिनचर्या का विस्तृत वर्णन किया है। बादशाह औरंगज़ेब आजीवन कर्तव्य निर्वाहन के प्रति अपने समर्पित भाव के लिए विख्यात रहा। महान मुगल बादशाहों ने स्वयं को उदार निरंकुश शासक के रूप में प्रतिष्ठित करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की थी। अबुल फ़ज़्ल आइन-ए-अकबरी में एक आदर्श पादशाह को निष्पक्ष न्यायकर्ता, सत्यान्वेषी तथा प्रजा को शान्ति एवं सुरक्षा प्रदान करने वाले कर्तव्यपरायण प्रजापालक के रूप में देखता है।

8.4.5 वंशानुगत शासन की परम्परा का विरोध

इस्लाम में वंशानुगत शासन की अवधारणा मान्य नहीं है। शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ कोई भी मुसलमान शासक का पद प्राप्त करने का अधिकारी है। शासक को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने का अधिकार नहीं है। मुगल शासकों ने अपने जीवन में ही प्रायः अपने उत्तराधिकारियों की घोषणा कर दी थी किन्तु उनके जीवन काल में ही शहज़ादों तथा प्रभावशाली अमीरों के विद्रोहों तथा उनकी मृत्यु के तुरन्त बाद शहज़ादों के मध्य उत्तराधिकार के युद्धों ने उनके इन प्रयासों को असफल सिद्ध कर दिया था। शाहजहां जैसे प्रतापी बादशाह को तो अपने शासनकाल में ही न केवल उत्तराधिकार का युद्ध देखना पड़ा बल्कि औरंगज़ेब द्वारा अपदस्थ किए जाने के बाद आठ वर्ष तक कैदखाने में अपमानजनक जीवन व्यतीत करने के लिए विवश भी होना पड़ा।

8.4.6 औरंगज़ेब द्वारा अकबर के राजत्व के सिद्धान्त में परिवर्तन

औरंगज़ेब ने स्वयं को इस्लाम के संरक्षक के रूप में प्रस्तुत कर उत्तराधिकार के युद्ध में सफलता प्राप्त की थी। बादशाह बनने के बाद इस्लाम के मान्य राजत्व सिद्धान्त को पुनर्स्थापित करना उसके प्रारम्भिक कार्यक्रम सम्मिलित था। उसने व्यक्तिगत जीवन में सादगी, परिश्रम और धर्माचरण को अपनाया। उसके जीवन में ही उसकी छवि आलमगीर ज़िन्दापीर की बन गई। चूंकि औरंगज़ेब ने इस्लाम को राज-धर्म घोषित कर दिया था अतः उसने उलेमा वर्ग को राज्य की नीतियों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर प्रदान किया। औरंगज़ेब के काल में अकबर और शाहजहां के काल के शाही वैभव का स्थान सादगी ने ले लिया और बादशाह के सामने सिजदा, कोर्निश करने तथा उसके चरण चूमने की गैर-मुस्लिम प्रथा - पैबोस को समाप्त कर दिया गया झरोखा दर्शन तथा तुलादान जैसी हिन्दू परम्पराओं को भी समाप्त कर दिया गया। अभिवादन के लिए सलाम वालिकुम तथा उसके जवाब में वालेकुम अस्सलाम का प्रचलन किया गया। औरंगज़ेब एक स्वेच्छाचारी निरंकुश बादशाह के स्थान पर एक सच्चा धर्मनिष्ठ मुसलमान बादशाह बनना चाहता था जिसका कि कोई भी कार्य इस्लाम की मूल आस्थाओं तथा परम्पराओं के विरुद्ध न हो।

8.4.7 राजनीतिक पराभव के काल में मुगल राजत्व के सिद्धान्त की निरर्थकता

वास्तव में मुगल राजत्व का सिद्धान्त तभी तक बादशाह पद को गरिमा प्रदान कर सका जब तक कि मुगल बादशाह शक्तिशाली रहे। महान मुगल बादशाहों के अवसान के बाद परवर्ती मुगल शासकों के काल में राजत्व का सिद्धान्त व्यावहारिक दृष्टि से पूर्णतया निरर्थक हो गया। अब सैयद बन्धु, इमाद्7उल-मुल्क अथवा नजीब-उद्-दौला जैसे प्रभावशाली अमीर, बादशाहों को शतरंज के मोहरों की भांति बदलने लगे थे। इन निर्बल और कठपुतली बादशाहों में से शायद ही किसी की स्वाभाविक मृत्यु हुई थी, इनमें से अधिकांश प्रभावशाली व महत्वाकांक्षी अमीरों के हाथों मारे गए थे। बादशाह के प्रति न तो किसी के हृदय में अब न तो भय का भाव रह गया था और न ही श्रद्धा का।

8.4.8 मध्यकालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में मुगल राजत्व के सिद्धान्त का आकलन

मध्यकालीन राजत्व का सिद्धान्त सामान्यतः निरंकुश स्वेच्छाचारी राजतन्त्र का पोषक था। इस काल में लोकतान्त्रिक मूल्य, जनभावना का सम्मान, नागरिक अधिकार, बौद्धिक राजनीतिक दृष्टिकोण, धर्म-निर्पेक्षता आदि का राजत्व के सिद्धान्त से कोई भी सम्बन्ध नहीं था। मध्यकाल में पूरे विश्व में निरंकुश शासकों का आधिपत्य रहा। मैकियावेली के राजत्व के सिद्धान्त का प्रतिबिम्बन हम किसी भी देश के मध्यकालीन शासक के राजत्व के सिद्धान्त में देख सकते हैं। मुगल राजत्व का सिद्धान्त, शोषण, दमन, असमानता, निरंकुशता, स्वेच्छाचारिता, धार्मिक संकीर्णता और वंशवाद का पोषक था किन्तु आज के प्रगतिशील राजनीतिक दृष्टिकोण से मुगल राजत्व के सिद्धान्त का हम आकलन नहीं कर सकते। मुगलों ने मध्यकालीन राजनीतिक वातावरण में शासक के अधिकार और कर्तव्य में एक व्यावहारिक सामन्जस्य स्थापित करने का प्रयास किया था। अकबर, जहांगीर और एक सीमा तक शाहजहां ने मुस्लिम मान्यताओं पर आधारित राजत्व के सिद्धान्त में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया था। जिस काल में यूरोप में धर्मयुद्ध के नाम पर रक्तपात हो रहा था उस काल में मुगल बादशाहों ने अपनी बहुसंख्यक गैर-मुस्लिम प्रजा को अपने साम्राज्य में शान्तिपूर्वक, सुख से जीने का अधिकार प्रदान कर अपनी उदारता का परिचय दिया था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. प्राचीन भारत में राजत्व का सिद्धान्त।
2. बलबन का राजत्व का सिद्धान्त।
3. बाबर का राजत्व का सिद्धान्त।
4. दीन-ए-इलाही के अन्तर्गत बादशाह अकबर की महत्ता।
5. बादशाह के अधिकार और कर्तव्य।
6. मुगल राजत्व के सिद्धान्त का आकलन।

8.5 सारांश

राजत्व का सिद्धान्त शासक के अधिकार, उसके कर्तव्य, उसके राजनीतिक व धार्मिक महत्व की व्याख्या करता है। प्राचीन भारत में साम्राज्यों की स्थापना से पूर्व राजत्व के सिद्धान्त में लोकतान्त्रिक मूल्य के दर्शन होते हैं जब कि साम्राज्यों की स्थापना के युग में राजत्व के दैविक सिद्धान्त का पोषण किया गया। इस्लाम के अन्तर्गत विभिन्न कबीलों द्वारा चयनित शासक को प्रशासक, सेनानायक तथा धर्म-प्रमुख की तिहरी भूमिका निभानी होती थी। दिल्ली सल्तनत काल में सुल्तान को खलीफ़ा के नाइब के रूप स्वयं को स्थापित करना होता था। सुल्तान बलबन ने राजत्व के दैविक सिद्धान्त का पोषण कर सुल्तान पद की गरिमा में वृद्धि की थी। अलाउद्दीन खिलजी तथा मुहम्मद तुगलक ने

शासन में धर्म के हस्तक्षेप को नियन्त्रित करने का प्रयास किया था। लोदी काल में पोषित अफ़गान राजत्व के सिद्धान्त में शासक और अमीर में स्वामी और सेवक का नहीं बल्कि परिवार के मुखिया और परिवार के सदस्य का सम्बन्ध होता था परन्तु सिकन्दर लोदी व इब्राहीम लोदी ने अमीरों पर सुल्तान का प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया था।

बाबर ने भारत में पादशाह के रूप स्वयं को स्थापित किया था। सुल्तान पद की तुलना में पादशाह अथवा बादशाह का पद अधिक गरिमा, प्रतिष्ठा और शक्ति का द्योतक था। पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त शासक के रूप में मुगल बादशाहों ने स्वयं को खलीफ़ा द्वारा वैधानिक मान्यता दिए जाने की शर्त से व्यावहारिक व सैद्धान्तिक दृष्टि से मुक्त किया। पादशाह बाबर ने वंशानुगत शासन की स्थापना की।

अकबर ने राजत्व के दैविक सिद्धान्त का पोषण किया। उसने स्वयं को पृथ्वी पर ईश्वर के प्रतिनिधि तथा अपनी प्रजा के आध्यात्मिक मार्गदर्शक के रूप में प्रतिष्ठित किया। अकबर के राजत्व के सिद्धान्त पर हिन्दुओं के पौराणिक एवं ऐतिहासिक राजत्व के सिद्धान्तों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा था। औरंगज़ेब ने इस्लाम को राज-धर्म घोषित कर राजत्व के दैविक सिद्धान्त का परित्याग कर दिया और स्वयं को इस्लाम के संरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया। उसने राजनीति पर धर्म के प्रभुत्व को एक बार फिर से स्थापित किया। परवर्ती मुगल शासकों ने अपनी अयोग्यता व अकमर्ण्यता से मुगल राजत्व के सिद्धान्त की महत्ता को गहरा आघात पहुंचाया। मुगलों का राजत्व का सिद्धान्त मध्यकालीन राजनीतिक आदर्शों के अनुरूप था और इस पर तुर्की, ईरानी, मंगोल तथा भारतीय राजत्व के सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा था।

8.6 पारिभाषिक शब्दावली

नाइब - प्रतिशासक, उप-शासक।

पादशाह - पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त शासक

खुतबा - जुम्मे तथा त्यौहारों के अवसर पर पढ़ी जाने वाली नमाज़ में समकालीन शासक का उल्लेख।

सद्र-उस-सुदूर - दान एवं धार्मिक मामलों के विभाग का प्रमुख।

वंशानुगत शासन प्रणाली - एक ही वंश में से शासकों की व्यवस्था।

ज़िन्दापीर - अपने जीवनकाल में ही एक पहुंचे हुए सन्त की प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाला।

8.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 8.4.3.1 प्राचीन भारत में राजत्व का सिद्धान्त।
2. देखिए 8.4.3.3.1 तथाकथित गुलाम वंश में राजत्व का सिद्धान्त का बिन्दु - 2 ।
3. देखिए 8.4.4.1 बाबर का राजत्व का सिद्धान्त।
4. देखिए 8.4.4.2 अकबर का राजत्व का सिद्धान्त का बिन्दु -3 ।

5. देखिए 8.4.4.4 मुगल राजत्व के सिद्धान्त में बादशाह के अधिकार और कर्तव्य।

6. देखिए 8.4.4.8 मध्यकालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में मुगल राजत्व के सिद्धान्त का आकलन।

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Abul Fazl – *The Ain-i-Akbari* (English Tr. Blochmann, H.)

2. Qureshi, I. H. – *The Administration of the Mughal Empire*

3. Sarkar, J. N. – *Mughal Administration*

4. Day, U. N. – *The Mughal Government (A.D. 1556-1707)*

8.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Smith, V. A. – *Akbar the Great Mogul*

2. Abul Fazl – *Akbarnama* (English tr. Beveridge, H.)

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. अकबर के राजत्व के सिद्धान्त में उसकी राजनीतिक एवं धार्मिक महत्वाकांक्षाओं के प्रतिबिम्बन का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई नौ - मुगल प्रशासन का स्वरुप, वित्त व्यवस्था, मनसबदारी व्यवस्था, जागीरदारी प्रथा, भू- राजस्व व्यवस्था

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 मुगल प्रशासन का स्वरूप

9.3.1 केन्द्रीय शासन

9.3.1.1 बादशाह

9.3.1.2 वकील

9.3.1.3 वज़ीर-ए-आज़म/वज़ीर/दीवान-ए-कुल/दीवान-ए-आला/दीवान

9.3.1.4 मीरबख्शी

9.3.1.5 वकील-ए-दर/खान-ए-सामाँ/मीर-ए-सामाँ

9.3.1.6 सद्र-उस-सुदूर

9.3.1.7 काज़ी-उल-कज़ात

9.3.1.8 मीर-ए-आतिश

9.3.1.9 दारोगा-ए-डाक चौकी

9.3.1.10 मुहतसिब

9.3.2 प्रान्तीय शासन

9.3.2.1 साम्राज्य का प्रान्तों में विभाजन

9.3.2.2 सूबेदार

9.3.2.3 दीवान

9.3.2.4 बख्शी

9.3.2.6 वाकियानवीस

9.3.2.7 कोतवाल

9.3.2.8 दारोगा-ए-डाक चौकी

9.3.2.9 मीर-ए-बहर

9.3.3 स्थानीय प्रशासन

9.3.3.1 सरकार

9.3.3.2 परगना

9.3.3.3 ग्राम

9.3.4 प्रशासनिक व्यवस्था का आकलन

9.4 वित्त व्यवस्था

9.4.1 कर प्रणाली

9.4.1.1 भू राजस्व व्यवस्था

9.4.1.2 जज़िया

9.4.1.3 ज़कात

9.4.1.4 खम्स

9.4.1.5 अबवाब (अतिरिक्त कर)

9.4.2. मुद्रा प्रणाली

9.4.3 शिल्प तथा उद्योग

9.4.3.1. वस्त्र उद्योग

9.4.3.2. अन्य उद्योग

9.4.4 व्यापार एवं वाणिज्य

9.4.4.1. आन्तरिक व्यापार

9.4.4.2 विदेश व्यापार

9.4.5 मुगलकालीन वित्त व्यवस्था का आकलन

9.5 मनसबदारी व्यवस्था

9.5.1 मनसबदारी व्यवस्था की उत्पत्ति

9.5.2 जागीर तथा जागीर-ए-वतन

9.5.3 मनसबदारी व्यवस्था के अन्तर्गत ज़ात तथा सवार पद

9.5.4 मनसबदारों की श्रेणियां

9.5.5 दोअस्पा तथा सिहअस्पा

9.5.6 मुगलकाल में मनसबदारों की संख्या

9.5.7 मनसबदारी व्यवस्था पतन

9.6 जागीरदारी प्रथा

9.6.1 अकबर के शासनकाल से पूर्व जागीरदारी प्रथा

9.6.2 अकबर तथा परवर्ती मुगल काल में जागीरदारी प्रथा

9.6.2.1 अकबर के शासनकाल में जागीरदारी प्रथा को लागू करने के उद्देश्य

9.6.2.2 नकदी तथा जागीरदार

9.6.2.3 जमादामी

9.6.2.4 जागीरों का हस्तान्तरण तथा जागीरों का वंशानुगत न होना

9.6.2.5 जागीरों का प्रशासन

9.6.2.6 राज्य के प्रशासनिक अधिकारियों का जागीरदारों पर नियन्त्रण

9.6.2.7 जागीर-ए-वतन

9.6.2.8 जागीरदारी व्यवस्था का पतन

9.7 भू-राजस्व व्यवस्था

9.7.1 मुगलों से पूर्व भू-राजस्व व्यवस्था

9.7.1.1 प्राचीन भारतीय शासकों की भू-राजस्व व्यवस्था

9.7.1.2 दिल्ली सल्तनत काल में भू-राजस्व व्यवस्था

9.7.1.3 शेरशाह की भू-राजस्व व्यवस्था

9.7.2 मुगलशासकों की भू-राजस्व व्यवस्था

9.7.2.1 बाबर तथा हुमायूं के शासनकाल में भू-राजस्व व्यवस्था

9.7.2.2 अकबर की भू-राजस्व व्यवस्था

9.7.2.2.1 भू-राजस्व प्रशासन में प्रारम्भिक प्रयोग

9.7.2.2.2 राजा टोडरमल का दहसाला बन्दोबस्त

9.7.2.2.3 अन्य भू-राजस्व प्रणालियां

9.7.2.3 अबवाब

9.7.2.4 किसानों को राहत तथा कृषि योग्य भूमि के विकास को प्रोत्साहन

9.7.2.5 अकबर के परवर्ती मुगल बादशाहों की भू-राजस्व व्यवस्था

9.7.2.6 किसानों पर ऋण का बोझ

9.7.2.7 मुगल भू-राजस्व व्यवस्था के गुण-दोष

9.8 सारांश

9.9 पारिभाषिक शब्दावली

9.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

9.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.13 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

मुगल काल में मुख्य रूप से सैन्य शक्ति पर आधारित एक केन्द्रीकृत शासन था। मुगलों ने तुर्क, मंगोल, अफ़गान और भारतीय प्रशासनिक परम्पराओं का समन्वय कर अपनी प्रशासनिक व्यवस्था का विकास किया था। बादशाह इसका सर्वोच्च प्रशासक तथा सर्वोच्च सेनानायक होता था। वह साम्राज्य के सर्वोच्च न्यायाधीश की भूमिका भी निभाता था। बादशाह अपने उच्चस्थ अधिकारियों की स्वयं नियुक्ति करता था। केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत उच्चतम अधिकारी वकील, वज़ीर अथवा दीवान-ए-कुल, मीरबख्शी, मीर-ए-सामाँ, सद्र-उस-सुदूर, काज़ी-उल-कज़ात, मीर-ए-आतिश, दारोगा-ए-डाक चौकी, मीर-ए-बहर, मुहतसिब आदि थे। इन अधिकारियों को केन्द्रीय प्रशासन के अपने दायित्व के अतिरिक्त अपने विभागों से सम्बद्ध प्रान्तों के अधिकारियों पर भी नज़र रखनी होती थी। प्रान्त के सर्वोच्च अधिकारी सूबेदार तथा वित्त विभाग के प्रमुख दीवान की नियुक्ति बादशाह द्वारा की जाती थी। प्रान्तीय प्रशासन को हम केन्द्रीय प्रशासन का ही लघु रूप कह सकते हैं। स्थानीय प्रशासन में सरकार, परगने और ग्राम का प्रशासन आता था।

मुगल साम्राज्य की सुदृढ़ता एवं उसके स्थायित्व का मूल कारण उसकी सक्षम वित्त व्यवस्था थी। केन्द्र में दीवान-ए-कुल तथा प्रान्त में दीवान वित्त विभाग का प्रमुख होता था। मुगलों की राजस्व प्रणाली मुख्य रूप से मुस्लिम प्रशासनिक परम्पराओं के अनुरूप थी। खिराज, खम्स, जज़िया और ज़कात मुख्य कर थे और समय-समय पर आवश्यकतानुसार अबवाब भी लगाए जाते थे। मुगल काल में उच्च कोटि की सोने, चाँदी व तांबे की मुद्राओं का प्रचलन था। राज्य की ओर से कृषि, उद्योग एवं व्यापार के संरक्षण तथा प्रोत्साहन के लिए विशेष प्रयास किए जाते थे। इस काल में व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में था।

प्रशासनिक एकरूपता स्थापित करने के उद्देश्य से अकबर ने मनसबदारी व्यवस्था को मुगल सैनिक संगठन तथा नागरिक प्रशासन का आधार बनाया था। राज्य के सभी छोटे-बड़े सैनिक तथा असैनिक अधिकारियों को एक सैनिक पद 'मनसब' प्रदान किया गया। मनसबदारों की नियुक्ति का अधिकार बादशाह का होता था। उच्चतम मनसब शहज़ादों को प्रदान किया जाता था। पहले मनसबदारों को एक पदीय मनसब दिया जाता था परन्तु बाद में उन्हें वैयक्तिक पद 'ज़ात' और अश्वारोहियों की संख्या के आधार पर 'सवार' मनसब प्रदान किया जाने लगा। जहांगीर के काल से 'सवार' पद में 'दोअस्पा' तथा 'सिंहअस्पा' सवारों का भी वर्गीकरण किया जाने लगा। मनसबदारों को वेतन के रूप में नकदी अथवा जागीर दिए जाने की व्यवस्था की गई। मनसबदार का मनसब और जागीर वंशानुगत नहीं थे।

मनसबदारों में तुर्क, उज़बेग, ईरानी, अफ़गान, हिन्दुस्तानी मुसलमान, राजपूत और अनन्तर काल में दक्किनी और मराठे शामिल थे। धीरे-धीरे मनसबदारी व्यवस्था में शिथिलता आती चली गई और मनसबदारों की संख्या निरन्तर बढ़ने से राजकोश पर बोझ बढ़ने लगा। पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य में मनसबदारों की निष्ठा में कमी और उनकी महत्वाकांक्षाओं में वृद्धि देखी गई। शिथिल एवं बोझिल मनसबदारी व्यवस्था मुगल साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण बनी।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य मुगल प्रशासन के विभिन्न पहलुओं, विभिन्न मुगलकालीन वित्तीय संस्थाओं की कार्य प्रणाली तथा मनसबदारी व्यवस्था के गुण-दोषों से आपको अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- मुगल प्रशासन के अन्तर्गत केन्द्रीय, प्रान्तीय एवं स्थानीय प्रशासनिक व्यवस्था।

2- मुगल राजस्व व्यवस्था, मुदा प्रणाली, औद्योगिक एवं व्यापारिक नीति।

3- मनसबदारी व्यवस्था की उत्पत्ति, विकास, कार्यप्रणाली और मुगल साम्राज्य के पतन में उसका दायित्व।

4- मुगल काल से पूर्व जागीरदारी प्रथा का प्रचलन।

5- जागीरदारी प्रथा की मुगल सैन्य-प्रबन्ध तथा प्रशासन में जागीरदारी प्रथा की महत्ता।

6- भारत में मुगल शासकों से पूर्व भू-राजस्व व्यवस्था।

7- दहसाला बन्दोबस्त तथा अन्य भू-राजस्व प्रणालियां।

8- मुगल भू-राजस्व व्यवस्था के गुण-दोष।

9.3 मुगल प्रशासन का स्वरूप

9.3.1 केन्द्रीय शासन

9.3.1.1 बादशाह

मुगल प्रशासन में सैन्य शक्ति पर आधारित एक केन्द्रीकृत व्यवस्था थी। मुगल केन्द्रीय शासन की धुरी बादशाह होता था जो कि इसका सर्वोच्च शासक तथा सेनानायक था। बादशाह के पास ही उच्च प्रशासनिक एवं सैनिक अधिकारियों (मनसबदारों) की नियुक्ति, पदोन्नति, उनके निलम्बन अथवा उन्हें पदमुक्त करने का अधिकार था। बादशाह किसी भी अधिकारी की सलाह लेने के लिए बाध्य नहीं था। अपने अधिकारियों से सलाह लेना या न लेना उसकी इच्छा पर निर्भर करता था। सैद्धान्तिक रूप से उसकी शक्तियां अपरिमित थीं। मनसबदारों की ज़ात का निर्धारण बादशाह के द्वारा किया जाता था तथा उसके निर्वाहन के लिए जागीरों का आवंटन भी वही करता था। अपने साम्राज्य

में बादशाह सर्वोच्च न्यायकर्ता होता था। सामान्यतः कानून निर्माण का आधार शरियत के नियमों अथवा प्रचलित स्थानीय परम्पराओं को बनाया जाता था किन्तु कानून बनाने का एकाधिकार बादशाह के पास सुरक्षित था। बादशाह को प्रशासनिक अध्यादेश निर्गत करने का अधिकार था। अपने साम्राज्य में शान्ति व व्यवस्था स्थापित कर उसे सुदृढ़ता एवं सुरक्षा प्रदान करना बादशाह का दायित्व होता था।

9.3.1.2 वकील

बाबर, हुमायूं तथा अकबर के शासनकाल के प्रारम्भ में (बैरम खाँ के पतन तक) वज़ीर-ए-आज़म/वज़ीर को वकील कहा जाता था। वकील के पास सैनिक तथा प्रशासनिक, दोनों ही प्रकार के अधिकार सुरक्षित थे। वह बादशाह का मुख्य सलाहकार होता था। बैरम खाँ के पतन के बाद वकील का पद व्यावहारिक दृष्टि से समाप्त कर दिया गया और परवर्ती काल में वकील पद केवल एक मानद उपाधि मात्र रह गया।

9.3.1.3 वज़ीर–ए–आज़म/वज़ीर/दीवान–ए–कुल/दीवान–ए–आला/दीवान

वज़ीर/दीवान वित्त विभाग का प्रमुख तथा साम्राज्य का सर्वोच्च अधिकारी (प्रधानमन्त्री) होता था। बादशाह तथा दूसरे अधिकारियों के बीच मध्यस्थ की भूमिका वज़ीर/दीवान की होती थी। दीवान के अधीन दीवान-ए-खालसा, दीवान-ए-तन, साहिब-ए-तौजीह तथा मुस्तफ़ी होते थे।

9.3.1.4 मीरबख्शी

सल्तनत काल में आरिद-ए-मुमालिक की जो भूमिका थी उससे कही महत्वपूर्ण भूमिका मुगल काल में मीरबख्शी की थी। मीरबख्शी सैन्य प्रशासन का प्रमुख होता था। यह स्वयं एक उच्च मनसबदार होता था। सैनिकों की भर्ती, मनसबदारों के वेतन के रूप में उनकी जागीरों के हिसाब-किताब, अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण, सेना से सम्बद्ध पशुओं के रख-रखाव, उनकी खरीद-फ़रोख्त के अतिरिक्त सैन्य-अनुशासन का दायित्व उसी का होता था। सभी प्रान्तीय बख्शी, मीरबख्शी को अपने-अपने प्रान्तों की सैन्य प्रशासन से सम्बन्धित गतिविधियों से अवगत कराते थे।

9.3.1.5 वकील–ए–दर/खान–ए–सामाँ/मीर–ए–सामाँ

शाही महल, शाही सम्पत्ति तथा कारखानों की देखभाल का दायित्व खान-ए-सामाँ का होता था। पहले इस अधिकारी को वकील-ए-दर कहा जाता था। बादशाह और उसके परिवार के खान-पान तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति का तथा शाही महल में तैनात कर्मचारियों पर नियन्त्रण रखने का दायित्व इस अधिकारी का होता था। सार्वजनिक निर्माण विभाग का दायित्व भी खान-ए-सामाँ का होता था। उसके अधीन मीर-ए-माल, महर-ए-दर, बारबेगी, मीर-ए-तुजुक, मीर-ए-मन्ज़िल, मीर-ए-अर्द, ख्वान सालार तथा मुंशी होते थे। कारखानों की देखभाल में उसकी सहायता के लिए दीवान-ए-बयूतत होता था। परवर्ती काल में नाज़िर-ए-बयूतत भी उसके सहायकों की पंक्ति में जोड़ दिया गया।

9.3.1.6 सद्र–उस–सुदूर

धार्मिक तथा दान-पुण्य के मामलों का सर्वोच्च अधिकारी सद्र-उस-सुदूर होता था। इस पद पर मुस्लिम धर्मशास्त्र, न्याय तथा दर्शन के ज्ञाता को नियुक्त किया जाता था। मुगल साम्राज्य में इस्लाम के संरक्षण तथा शिक्षा प्रसार (विशेषकर धार्मिक शिक्षा) का दायित्व उसी का होता था। राज्य की ओर से धार्मिक स्थलों, धर्म से सम्बद्ध व्यक्तियों और शिक्षण संस्थाओं को दिए जाने वाले अनुदानों (वजीफ़ा, सयूरगाल, मदद-ए-माश) तथा भू-दानों का वितरण वही करता था। सद्र-उस-सुदूर धार्मिक मामलों में न्यायाधिकारी की भूमिका भी निभाता था।

9.3.1.7 काज़ी–उल–कज़ात

यह न्याय विभाग का प्रमुख होता था। कभी-कभी सद्र-उस-सुदूर ही इस दायित्व को निभाता था। इस अधिकारी का मुस्लिम कानून में निष्णात होना आवश्यक होता था। यह अधिकारी बादशाह की न्याय करने में सहायता भी करता था और मांगे जाने पर उसे कानूनी सलाह भी देता था।

9.3.1.8 मीर–ए–आतिश

मुगलों की सैन्य शक्ति का मुख्य आधार तोपखाना था। मीर-ए-आतिश तोपखाना विभाग का प्रमुख होता था। तोपों के निर्माण, उनके रख-रखाव, गोला-बारूद की आपूर्ति, तोपखाने से सम्बद्ध सैनिकों की भर्ती और उनके प्रशिक्षण, अभियानों के लिए तोपों के आवागमन तथा किलों की सुरक्षा हेतु तोपों की तैनातगी आदि कार्य उसकी देखरेख में किए जाते थे।

9.3.1.9 दारोगा–ए–डाक चौकी

साम्राज्य के प्रत्येक भाग से केन्द्र तक और केन्द्र से साम्राज्य के प्रत्येक भाग तक आवश्यक सूचना पहुंचाने का दायित्व डाक विभाग के अध्यक्ष दारोगा-ए-डाक चौकी का होता था। साम्राज्य में स्थापित हज़ारों डाक चौकियों के कुशल संचालन का दायित्व भी उसी का था। इस हेतु घोड़ों, घुड़सवारों, हरकारों, गुप्तचरों वाकियानवीसों आदि की व्यवस्था का भार भी उसी पर था।

9.3.1.10 मुहतसिब

मुहतसिब का कार्य साम्राज्य की मुस्लिम नागरिकों के जीवन में धर्म और नैतिकता का समावेश करना था। उसको मुस्लिम नागरिकों में इस्लाम की शिक्षाओं का प्रचार करना होता था तथा उन्हें मादक पदार्थों , दुर्व्यसनों आदि से दूर रहकर नैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करना होता था। माप-तौल में हेराफेरी कर ग्राहकों को ठगने वाले भ्रष्ट दुकानदारों पर भी उसको नज़र रखनी होती थी। औरंगज़ेब के काल में मुहतसिबों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गई थी।

9.3.2 प्रान्तीय शासन

9.3.2.1 साम्राज्य का प्रान्तों में विभाजन

मुगल काल में सूबों का प्रशासन केन्द्रीय प्रशासन के अनुरूप ही किया जाता था। शेरशाह के काल में सबसे बड़ी प्रशासनिक इकाई सरकार थी। बादशाह अकबर ने प्रान्तों को सबसे बड़ी प्रशासनिक इकाई बना दिया था। अकबर के शासनकाल में पहले 12 सूबे थे जो कि दक्षिण भारत में साम्राज्य विस्तार के बाद खानदेश, बरार और अहमदनगर मिलाकर 15 हो गए थे। शाहजहां के काल में काश्मीर, थट्टा, उड़ीसा, दौलताबाद व कान्धार को सूबे का दर्जा देने के कारण इनकी संख्या 20 तथा बाद में कान्धार के साम्राज्य से निकल जाने के कारण इनकी संख्या 19 रह गई थी। औरंगज़ेब के काल में बीजापुर और गोलकुण्डा विजय के बाद इनकी संख्या 21 हो गई थी।

9.3.2.2 सूबेदार

प्रान्त के सर्वोच्च अधिकारी को सूबेदार अथवा निज़ाम कहा जाता था जिसकी कि नियुक्ति बादशाह के द्वारा की जाती थी। सूबेदार प्रान्त में बादशाह का प्रतिनिधित्व करता था और अपने सूबे में उसके फ़रमानों को लागू करता था। सूबेदार अपने प्रान्त का सर्वोच्च प्रशासनिक तथा सैनिक अधिकारी होता था। वह एक उच्च श्रेणी का मनसबदार भी होता था। सूबेदार को अपने तथा अपनी सेना के व्यय के लिए एक जागीर आवंटित की जाती थी। अपने प्रान्त में शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखना, उद्योग, व्यापार एवं कृषि को प्रोत्साहन देना, अपनी सेना में अनुशासन बनाए रखना तथा प्रान्त की गतिविधियों से बादशाह को नियमित रूप से अवगत कराना सूबेदार का दायित्व होता था। एक ही प्रान्त में अधिक समय व्यतीत करके सूबेदार अपनी शक्ति और संसाधनों में वृद्धि कर स्वतन्त्र शासक बनने के लिए बादशाह के विरुद्ध विद्रोह न कर बैठें, इसको ध्यान में रखते हुए सूबेदारों का समय-समय पर एक सूबे से दूसरे सूबे में स्थानान्तरण कर दिया जाता था। प्रान्त में सूबेदार की देखरेख में दीवान, बख्शी, सद्र आदि कार्य करते थे किन्तु वे केन्द्र में अपने उच्चस्थ अधिकारियों-क्रमशःदीवान-ए-आला/दीवान-ए-कुल, मीरबख्शी तथा सद्र-उस-सुदूर के प्रति भी उत्तरदायी होते थे।

9.3.2.3 दीवान

प्रान्तीय वित्त विभाग का प्रमुख दीवान होता था। वैसे तो दीवान सूबेदार के आधीन होता था किन्तु उसे वित्तीय मामलों में सूबेदार से स्वतन्त्र शक्तियां प्राप्त थीं और उसकी नियुक्ति भी सीधे बादशाह के द्वारा की जाती थी। सूबेदार को दीवान पर नियन्त्रण की शक्ति न देने के पीछे शक्ति-सन्तुलन तथा शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त थे। सूबेदार और दीवान दोनों ही एक-दूसरे की महत्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाने का कार्य करते थे।

9.3.2.4 बख्शी

प्रान्त में सैन्य विभाग का प्रमुख बख्शी होता था। प्रान्त में मौजूद मनसबदारों की व्यवस्था का दायित्व उसका होता था। वह मीर बख्शी को वर्ष में दो बार अपने विभाग की विस्तृत रिपसेर्ट भेजता था।

9.3.2.5 सद्र तथा काज़ी

प्रान्तीय स्तर पर अपने उच्चस्थ केन्द्रीय अधिकारी सद्र-उस-सुदूर तथा काज़ी-उल-कज़ात के कर्तव्यों तथा अधिकारों का निर्वाहन इन अधिकारियों द्वारा किया जाता था।

9.3.2.6 वाकियानवीस

प्रान्तीय गुप्तचर विभाग का प्रमुख वाकियानवीस होता था। इसका दायित्व अपने गुप्तचरों के माध्यम से प्रान्त की प्रमुख गतिविधियों की खबर केन्द्र तक पहुंचाना था। अपने दायित्व निर्वाहन में वह सूबेदार तथा दीवान के आधीन न होकर स्वतन्त्र रूप से कार्य करता था।

9.3.2.7 कोतवाल

प्रान्तीय राजधानियों में शान्ति एव सुरक्षा बनाए रखने का दायित्व कोतवाल का होता था। उसे एक न्यायधीश की भूमिका भी निभानी होती थी और नगर में देह-व्यापार पर भी नियन्त्रण रखना होता था।

9.3.2.8 दारोगा–ए–डाक चौकी

प्रान्त के प्रत्येक भाग से केन्द्र तक और केन्द्र से प्रान्त तक आवश्यक सूचना पहुंचाने का दायित्व डाक विभाग के अध्यक्ष दारोगा-ए-डाक चौकी का होता था।

9.3.2.9 मीर–ए–बहर

मीर-ए-बहर का दायित्व पुलों तथा नौकाओं की देखभाल, सीमा शुल्क तथा पत्तन शुल्क पर नज़र रखना होता था।

9.3.3 स्थानीय प्रशासन

9.3.3.1 सरकार

सरकार अर्थात् जिले के मुख्य अधिकारियों में फौजदार - सैनिक तथा प्रशासनिक अधिकारी, अमल गुज़ार - राजस्व अधिकारी, वितिकची - राजस्व लेखाधिकारी, खज़ानदार - खजान्ची तथा काजी़ - न्यायाधीश होता था। इन सभी अधिकारियों को अपने प्रान्तीय उच्च अधिकारियों के आधीन रहकर कार्य करना होता था।

9.3.3.2 परगना

परगना में मुख्य प्रशासक तथा सैन्य अधिकारी शिकदार होता था। आमिल मुख्य राजस्व अधिकारी होता था। फ़ोतदार -खजान्ची तथा कारकुन - राजस्व लेखाधिकारी होता था। कानूनगो - लगान एवं कृषि-भूमि के हिसाब किताब के साथ परगने के पटवारियों पर नज़र भी रखता था। कानूनगो का पद प्रायः वंशानुगत होता था।

9.3.3.3 ग्राम

ग्राम में पंचायत होती थी जिसके मुखिया को मुकद्दम कहा जाता था। मुकद्दम राजस्व एकत्र करने में राजस्व अधिकारियों तथा ज़मींदार की सहायता करता था। प्रत्येक ग्राम में राजस्व का लेखा-जोखा रखने के लिए एक पटवारी

होता था। पटवारी का पद प्रायः वंशानुगत होता था। मुगल काल में राज्य की ओर से ग्राम्य'प्रशासन में बहुत कम हस्तक्षेप किया जाता था।

9.3.4 प्रशासनिक व्यवस्था का आकलन

मध्यकालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में महान मुगल शासकों की प्रशासनिक व्यवस्था सामान्यतः सक्षम थी। बाबर और हुमायूं की इस क्षेत्र में विशेष उपलब्धियां नहीं थीं किन्तु अकबर की गणना मध्यकालीन विश्व इतिहास के सर्वश्रेष्ठ एवं सबसे सफल प्रशासकों में की जा सकती है। एक निरंकुश, स्वेच्छाचारी राजतन्त्र में प्रजा के हितों के प्रति इतना समर्पित भाव, शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखने हेतु इतना व्यापक प्रबन्ध मिल पाना बहुत दुर्लभ है। मुगलों ने तुर्क, मंगोल, अफ़गान और भारतीय प्रशासनिक परम्पराओं का समन्वय कर अपनी प्रशासनिक व्यवस्था का विकास किया था। औरंगज़ेब के शासनकाल के उत्तरार्ध से मुगल प्रशासनिक व्यवस्था चरमरा गई और परवर्ती काल में प्रशासन के नाम पर अराजकता एवं अव्यवस्था मात्र शेष रह गई।

9.4 वित्त व्यवस्था

9.4.1 कर प्रणाली

9.4.1.1 भू राजस्व व्यवस्था

मुगल साम्राज्य की सुदृढ़ता एवं उसके स्थायित्व का मूल कारण उसकी सक्षम वित्त व्यवस्था थी। इस वित्त व्यवस्था का मुख्य आधार भू-राजस्व व्यवस्था थी। भू-राजस्व व्यवस्था का विस्तृत वर्णन इस खण्ड की इकाई दो (2) में किया जाएगा।

9.4.1.2 जज़िया

इस्लाम के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ विश्व के अनेक भागों में मुस्लिम राज्यों की स्थापना हुई। नव-स्थापित मुस्लिम राज्यों में स्थानीय निवासियों में से अनेक ने इस्लाम धर्म को नहीं अपनाया था। व्यावहारिक दृष्टि से यह सम्भव नहीं हो सकता था कि समस्त प्रजाजनों को इस्लाम कुबूल करने के लिए बाध्य किया जाए अतः मुस्लिम राज्यों द्वारा गैर-मुस्लिम प्रजा से उनके अस्तित्व की रक्षार्थ एक प्रकार का धार्मिक कर वसूल किया जाता था जिसको कि जज़िया कहा जाता था। जज़िया की राशि खज़ाना-ए-जज़िया में जमा की जाती थी। जज़िया देने वाले को जिम्मी कहा जाता था। स्त्रियां, बच्चे, गुलाम, सन्त, पुरोहित, अपंग, भिखारी, अन्धे, विक्षिप्त तथा दिवालिए इस कर से मुक्त थे। राज्य में सैनिक एव नागरिक सेवा में नियुक्त गैर-मुस्लिम भी इस कर से मुक्त थे। मुगलों ने भारत में इस कर को सन् 1564 लागू रखा। सन् 1564 में बादशाह अकबर ने अपनी धार्मिक सहिष्णुता व उदारता का परिचय देते हुए इस कर को समाप्त कर दिया। जहांगीर, शाहजहां ने इस विषय में अकबर का अनुकरण किया। औरंगज़ेब ने भी अपने शासन के प्रथम 21 वर्ष तक गैर-मुस्लिमों पर जज़िया नहीं लगाया किन्तु सन् 1679 में उसने अपने साम्राज्य में गैर-मुस्लिमों पर जज़िया फिर से

लगा दिया। औरंगज़ेब ने जज़िया कर राज्य के आर्थिक संसाधनों में वृद्धि करने के उद्देश्य से नहीं लगाया था अपित? इस निर्णय के पीछे उसके राजनीतिक एवं धार्मिक उद्देश्य थे।

9.4.1.3 ज़कात

मुगल साम्राज्य मूलतः मुस्लिम राज्य था अतः धर्मार्थ व्यय हेतु मुसलमानों की व्यक्तिगत आय का कुल 2.5 प्रतिशत भाग (चालीसवां भाग) लिए जाने वाले कर ज़कात पर उनका हक़ बनता था किन्तु मुगलों ने इस कर की अदायगी के लिए मुसलमानों को बाध्य नहीं किया और इसे उनके विवेक पर छोड़ दिया। दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की खरीद-फ़रोख्त पर भी ज़कात लगाया जाता था परन्तु अकबर, जहांगीर व शाहजहां ने इसे समाप्त कर दिया था। औरंगज़ेब ने अपने शासनकाल में मूल्यवान वस्तुओं की खरीद-फ़रोख्त पर ज़कात लगा दिया था। ज़कात की राशि खजाना-ए-सदाक़त में जमा की जाती थी।

9.4.1.4 खम्स

खनिज पदार्थों, खजाने की प्राप्ति तथा सैनिकों द्वारा युद्ध में प्राप्त लूट का पाँचवां भाग खम्स के रूप में लिया जाता था। चूंकि मुगल सैनिकों राज्य की ओर से नियमित वेतन मिलता था इसलिए लूट की राशि में उन्हें कोई हिस्सा नहीं दिया जाता था।

9.4.1.5 अबवाब (अतिरिक्त कर)

सबसे अधिक राजस्व दिलाने वाला अबवाब - राहदारी होता था जो कि माल के आवागमन पर लगाया जाता था। एक अन्य अबवाब चोरी के सामान की पुलिस द्वारा बरामदगी के बाद उसे उसके स्वामी को लौटाते समय वसूला जाता था। इसी प्रकार कर्ज़ में डूबी रकम को कर्ज़दार से कर्ज़ देने वाले को वापस दिलाने में राज्य की भूमिका के बदले में कुल प्राप्त रकम का एक चौथाई भाग तक अबवाब के रूप में लिया जाता था। समय-समय पर आवश्यकताओं के अनुसार अन्य अबवाब भी लगाए जाते थे। अबवाबों की वसूली में अधिकारीगण निजी स्वार्थों के कारण प्रायः जनता पर मनमानी कर उनका भरपूर शोषण करते थे।

9.4.2 मुद्रा प्रणाली

मुगल काल में शाही टकसालों में सोने, चाँदी तथा तांबे के सिक्के ढाले जाते थे। शुद्धता और सुघड़पन की दृष्टि से मुगल सिक्के अपने समकालीन यूरोपीय शासकों के सिक्कों की तुलना में कहीं अधिक श्रेष्ठ थे। मुगलकालीन सोने के सिक्कों में 164 ग्रेन की मुहर अथवा अशर्फ़ी सबसे अधिक प्रचलित सिक्का था। शेरशाह के 178 ग्रेन के चाँदी के सिक्के को आधार मानकर अकबर ने भी चाँदी का रूपया चलाया था। एक रुपया 64 दामों के बराबर होता था और एक दाम - दो अधेलों या चार पावलो या आठ दमड़ियों के बराबर होता था। दाम, अधेला, पावला तथा दमड़ी, तांबे के होते थे। सोने-चाँदी के सिक्कों की शुद्धता व उनकी मापतौल की जांच की समुचित व्यवस्था की जाती थी।

9.4.3 शिल्प तथा उद्योग

9.4.3.1. वस्त्र उद्योग

मुगल बादशाह शिल्प तथा उद्योग के प्रोत्साहन के लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। किसानों को उद्योग से सम्बन्धित फ़सलें - कपास, नील आदि उगाने के लिए लगान में रियायतें दी जाती थी। मुगल काल में सूती कपड़ा उद्योग तथा रेशमी वस्त्र उद्योग का अभूतपूर्व विकास हुआ था। बंगाल सूती तथा रेशमी वस्त्र के उत्पादन का मुख्य केन्द्र था। काश्मीर में उच्चकोटि के रेशमी तथा ऊनी वस्त्र बनाए जाते थे। गुजरात, मालवा तथा आगरा सूती वस्त्र उद्योग के लिए प्रसिद्ध थे। कपड़ों की स्तरीय रंगाई-छपाई के लिए भी मुगल काल विख्यात था। मछलीपट्टम रंगाई का एक प्रमुख केन्द्र था। वस्त्रों के निर्यात से साम्राज्य को प्रचुर मात्रा में आय होती थी।

9.4.3.2. अन्य उद्योग

मुगल काल में धातु उद्योग भी विकसित था। बर्तन, सन्दूकें, हथियारों में - तोपें, बन्दूकें, तलवारें आदि, उपकरणों में - कैंची, प्लास, रहट, हुक्के आदि तथा सोने-चाँदी के आभूषणों की गुणवत्ता उच्च कोटि की थी। लकड़ी-उद्योग, चीनी उद्योग, चर्म-उद्योग, संगतराश एवं भवन निर्माण-उद्योग, कागज़ उद्योग, इत्र व सुगन्धित तैल-उद्योग, नौका एवं पोत-निर्माण उद्योग, काँच-उद्योग, विस्फोटक सामग्री निर्माण-उद्योग रत्न-उद्योग, हाथी दाँत-उद्योग आदि को राज्य की ओर से संरक्षित एवं प्रोत्साहित किया जाता था। मुगलकाल में आभिजात्य वर्ग की विशिष्ट आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए शाही कारखाने स्थापित किए गए थे। आइन-ए-अकबरी में अबुल फ़ज़्ल 36 शाही कारखानों का उल्लेख करता है। सभी प्रमुख नगरों में शाही कारखाने स्थापित किए गए थे।

9.4.4 व्यापार एवं वाणिज्य

9.4.4.1. आन्तरिक व्यापार

आन्तरिक व्यापार के सुचारु रूप से संचालन हेतु राज्य की ओर से सड़कों, पुलों तथा सरायों के निर्माण, उनके रख-रखाव के अतिरिक्त मार्गों तथा मण्डियों- बाज़ारों की सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाता था। आन्तरिक व्यापार जल-मार्ग से भी होता था। इसके लिए नावों के बेड़े तैयार रखे जाते थे। सभी प्रमुख व्यापारिक केन्द्र साम्राज्य के बड़े नगर थे। दुकानदारों तथा व्यापारियों को अपने संघ बनाने की स्वतन्त्रता थी। व्यापार कर के रूप में राज्य को प्रचुर मात्रा में धन प्राप्त होता था।

9.4.4.2 विदेश व्यापार

मुगल काल में विदेश व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए व्यापारियों पर करों का बोझ अधिक नहीं डाला जाता था तथा साम्राज्य के अधिकारियों द्वारा उनके साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार किया जाता था। विदेश व्यापार स्थल व जल दोनों ही मार्गों से होता था। मुगल काल में निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में सूती, रेशमी व ऊनी वस्त्र, नील, मसाले, शोरा, नमक, चीनी, औषधियां आदि प्रमुख थीं। आयात की जाने वाली वस्तुओं में सोना, चाँदी, हाथी दाँत,

चीनी मिट्टी तथा काँच के बर्तन, शराब, तम्बाकू , मेवे का आयात किया जाता था। विदेशों से गुलामों तथा ऊँची नस्ल के घोड़ों का भी आयात किया जाता था। व्यापारियों को हर सम्भव सुरक्षा प्रदान की जाती थी किन्तु समुद्री मार्ग में सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं था फिर भी व्यापार सन्तुलन मुगलों के पक्ष में था और हर वर्ष विदेश व्यापार से उन्हें लाभ होता था। मीर-ए-बहर तटीय शुल्क का संग्रहण कर राज्य कोष प्रचुर धन जमा कराता था। औरंगज़ेब तथा परवर्ती मुगल शासकों के काल में युद्ध और अराजकता की स्थिति के कारण आन्तरिक तथा विदेश व्यापार दोनों में ही गिरावट आई थी।

9.4.5 मुगलकालीन वित्त व्यवस्था का आकलन

औरंगज़ेब के शासनकाल के उत्तरार्ध के अतिरिक्त महान मुगल शासकों की वित्त व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ थी। इस काल में कृषि, उद्योग, आन्तरिक तथा विदेश व्यापार आदि क्षेत्रों में चहुमुखी विकास हो रहा था। शाही खज़ानों में पर्याप्त धन था तथा आभिजात्य वर्ग के वैभव और उसकी समृद्धि की कोई थाह नहीं थी। इस काल में भारत में विश्व के सबसे समृद्ध तथा विशाल महानगर थे। श्रमिक वर्ग, कृषक वर्ग तथा कारीगरों की स्थिति प्रायः दयनीय थी किन्तु व्यापारी वर्ग समृद्ध था। औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व के इस काल में व्यापार सन्तुलन भारत के पक्ष में था। इसीलिए विश्व में भारत को सोने की चिड़िया के नाम से जाना जाता था।

9.5 मनसबदारी व्यवस्था

9.5.1 मनसबदारी व्यवस्था की उत्पत्ति

मुगलों की मनसबदारी व्यवस्था को हम मध्य एशिया की सैन्य व्यवस्था का एक संशोधित एव सवंर्धित रूप कह सकते हैं। बाबर के पूर्वज चंगेज़ खाँ की सेना में अधिकारियों का, उनके अधीन घुड़सवारों की संख्या के आधार पर, वर्गीकरण किया गया था। उनको 10 (दहबशी) से लेकर 10000 (दहहज़ारी) घुड़सवारों तक के सेनानायक का पद प्रदान किया गया था। बाबर ने विभिन्न कबीलों तथा कुलों के सरदारों को उनकी सेनाओं के साथ भारत पर आक्रमण किया और पानीपत के युद्ध में विजय प्राप्त कर जब भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना की तो उसने विभिन्न सरदारों को उनकी योग्यता के अनुसार सैनिक पद प्रदान किए। इन सैन्य अधिकारियों को वजहदार कहा गया। इसी परम्परा को आगे बढ़ाकर अकबर ने प्रशासनिक तथा वैतनिक एकरूपता स्थापित करने के उद्देश्य से अपने सभी सैनिक अधिकारियों (अशब-उस-सैफ़) तथा प्रशासनिक अधिकारियों (अशब-उल-क़लम) तथा राज्य सेवा में नियुक्त धर्म शास्त्रियों एवं न्याय वेत्ताओं (अशब-उल-अमामा) को सैन्य पद - मनसब प्रदान कर मनसबदारी व्यवस्था का विकास किया। अकबर ने इसे मुगल सैनिक संगठन तथा नागरिक प्रशासन का आधार बनाया। बादशाह द्वारा नियुक्त अधिकारियों का पहले मनसब (पद) निर्धारित किया गया फिर उसी के आधार पर उनका वेतन निर्धारित किया गया। प्रारम्भ में 20 से लेकर पाँच हज़ारी मनसबदार (20 घुड़सवारों के नायक से लेकर 5000 घुड़सवारों के नायक) तक

नियुक्त किए गए। बाद में उच्चतम मनसब 7000 और फिर 10000 तक बढ़ा दिया गया। बाद में शहज़ादों का मनसब इससे भी अधिक ऊँचाई तक पहुंचा दिया गया। अबुल फ़ज़्ल आइन-ए-अकबरी में मनसबों की कुल संख्या 66 बताता है किन्तु उल्लेख केवल 33 मनसबों का करता है।

9.5.2 जागीर तथा जागीर–ए–वतन

मनसब के आधार पर वेतन के रूप में या तो मनसबदार को उसके निर्धारित वेतन के अनुरूप एक जागीर आवंटित कर दी जाती थी या उसे नकद वेतन दिया जाता था। इस प्रकार के मनसबदार क्रमशः जागीरदार और नकदी कहलाते थे। अपने वेतन से मनसबदार को अपना, अपने सैनिकों का, उनसे सम्बद्ध पशुओं तथा अस्त्र-शस्त्रों का खर्च सम्भालना होता था। मनसबदारों को लम्बे समय तक एक ही जागीर पर नहीं दी जाती थी। उनकी जागीरें हस्तान्तरित होती रहती थीं। जागीर और मनसब वंशानुगत नहीं होते थे अर्थात् मनसबदार की मृत्यु के बाद उसके वंशज उसकी जागीर या उसके मनसब पर अपना दावा प्रस्तुत नहीं कर सकते थे। मनसबदार की मृत्यु के बाद उसकी जागीर स्वतः बादशाह के अधिकार में वापस चली जाती थी। परन्तु आमतौर पर बादशाह मनसबदार की मृत्यु पर उसके वंशजों के साथ उदारता का ही व्यवहार करता था। सामान्यतया मनसबदार को उसके गृह पदेश में जागीर नहीं दी जाती थी। गृह प्रदेश की जागीर को जागीर-ए-वतन कहा जाता था। यह केवल उन मनसबदारों को प्रदान की जाती थी जिनके कि पास मुगल सेवा में आने से पूर्व अपना राज्य होता था या ज़मींदारी होती थी। उदाहरणार्थ राजपूत शासक जब मुगलों की आधीनता स्वीकार कर उनके मनसबदार बनाए गए तो उन्हें जागीर-ए-वतन प्रदान की गई। दीवान-ए-विज़ारत में जागीरों का लेखा-जोखा रखा जाता था।

9.5.3 मनसबदारी व्यवस्था के अन्तर्गत ज़ात तथा सवार पद

सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में मनसबदारी व्यवस्था में एकल-पदीय ज़ात व्यवस्था के स्थान पर द्वि-पदीय व्यवस्था ज़ात और सवार को लागू किया गया। इसका उद्देश्य मनसबदारों से उनके सैनिक उत्तरदायित्वों का निष्ठापूर्ण निर्वाहन कराना था। अब मनसबदार को ज़ात और सवार दोनों के पद प्रदान किए गए। इनमें से ज़ात मनसबदार का वैयक्तिक पद होता था (जितने घुड़सवार रखने की उससे अपेक्षा की जाती थी) तथा सवार पद (अश्वारोही पद) वास्तव में उसके अधीन घुड़सवारों की संख्या के आधार पर निश्चित किया जाता था।

9.5.4 मनसबदारों की श्रेणियां

मनसबदारों की तीन श्रेणियां निर्धारित की गई थीं। प्रथम श्रेणी के मनसबदार का ज़ात और सवार मनसब एक समान होता था। द्वितीय श्रेणी के मनसबदार सवार मनसब उसके ज़ात मनसब का आधा या उससे अधिक होता था। तृतीय श्रेणी के मनसबदार का सवार मनसब उसके ज़ात मनसब के आधे से कम होता था। मनसबदारी में 500 से कम मनसब प्राप्त को 'मनसबदार', 500 से लेकर 2500 से कम मनसब वाले को 'अमीर' तथा 2500 व उससे अधिक मनसब वाले को 'अमीर-ए-उम्दा' कहा जाता था।

9.5.5 दोअस्पा तथा सिहअस्पा

जहांगीर के शासनकाल में मनसबदारों के साथ दोअस्पा (दो घोड़ों वाले घुड़सवार) तथा सिंहअस्पा (दो से अधिक घोड़े वाले घुड़सवार) पद जोड़ा जाने लगा। यह व्यवस्था उन मनसबदारों के लिए की गई जिनके पास अपने सवार पद से अधिक घुड़सवार होते थे। ऐसे मनसबदारों का ज़ात और सवार पद बढ़ाए बिना उनको उनके आधीन दोअस्पा तथा सिंहअस्पा सवारों के अनुसार उन्हें अतिरिक्त भत्ता दिया जाता था। जहांगीर ने महाबत खाँ को इस प्रकार का पद प्रदान किया था।

9.5.6 मुगलकाल में मनसबदारों की संख्या

अकबर के शासनकाल के चालीसवें वर्ष में मनसबदारों की कुल संख्या 1803 थी। इनमें तुर्क, उज़बेग, ईरानी, अफ़गान, भारतीय मुसलमान तथा राजपूत सम्मिलित थे परन्तु बाद में औरंगज़ेब के शासन तक इनमें मराठे और दक्किनी भी शामिल हो गए। मनसबदारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती ही चली गई। औरंगज़ेब के शासनकाल के अन्त में इनकी संख्या बढ़कर साढ़े चौदह हज़ार तक पहुंच गई। इन मनसबदारों को दिए जाने वाले वेतन और जागीरों के कारण शाही खजाने पर असहनीय बोझ पड़ने लगा। बाद में मनसबदारों को दी जाने वाली जागीरें कम पड़ने लगीं।

9.5.7 मनसबदारी व्यवस्था पतन

मनसबदारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि ने राज्य पर न केवल आर्थिक बोझ डाला अपितु राज्य की ओर से उन पर भरपूर नज़र न रख पाने के कारण उनकी क्षमता पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। जागीरों की कमी को पूरा करने के लिए एक ही जागीर को मनसबदारों में विभाजित करके दिया जाने लगा जिसके कारण जागीरदारों ने अपना खर्च निकालने के लिए कृषकों का और अधिक शोषण करने का प्रयास किया। मनसबदारों की निष्ठा और स्वामिभक्ति में भी कमी आई। मनसबदारों द्वारा भर्ती किए गए सैनिकों की निष्ठा अब बादशाह के प्रति न होकर रोज़ी देने वाले मनसबदार के प्रति होने लगी। अधिक साधन सम्पन्न मनसबदार अब स्वतन्त्र शासक बनने की महत्वाकांक्षा पालने लगे और पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य में उनकी बढ़ती हुई शक्ति और महत्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाने की किसी में क्षमता ही नहीं रही। धीरे-धीरे मनसबदारी व्यवस्था मुगल शासन को सुदृढ़ एवं सक्षम बनाने के स्थान पर उसके पतन का कारण बनने लगी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. बादशाह के अधिकार और उसके दायित्व।
2. मुगलकालीन ग्राम प्रशासन।
3. मुगलकालीन मुद्राए।
4. मुगलकालीन विदेश व्यापार।

5. मनसबदारी व्यवस्था के अन्तर्गत ज़ात एवं सवार पद।

6. जागीर तथा जागीर-ए-वतन।

9.6 जागीरदारी प्रथा

9.6.1 अकबर के शासनकाल से पूर्व जागीरदारी प्रथा

जागीरदारी प्रथा सामन्तवादी शासन प्रणाली का एक प्रकार थी। दिल्ली सल्तनत काल में इक्तादारी प्रथा प्रचलित थी। सल्तनत काल में अमीरों को उनके नकद वेतन के बदले में उन्हें उसके समतुल्य आय के इक्ते प्रदान किए जाते थे। इन इक्तों का प्रबन्ध करने तथा उनमें राजस्व एकत्र करने का अधिकार उन्हें दे दिया जाता था। इक्तेदार अथवा मुक्ती अपने-अपने इक्तों अथवा जागीरों में लगभग स्वतन्त्र शासक की भांति कार्य करते थे जिसके कारण केन्द्रीय सरकार कमज़ोर पड़ने लगी थी। दिल्ली सल्तनत काल में मुगल काल की भांति न तो जागीरों के हस्तान्तरण की प्रथा थी और न ही जागीरदार की मृत्यु के बाद राज्य द्वारा जागीर को वापस अपने अधिकार में लिए जाने की परम्परा। केन्द्रीय शासन की शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से सुल्तान बलबन ने जागीरदारी प्रथा के प्रचलन पर प्रतिबन्ध लगा दिए थे। परन्तु सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने तो उसे समाप्त ही कर दिया था। सुल्तान फ़ीरोज़ शाह तुगलक ने इस प्रथा को पुनर्जीवित किया था तथा जागीरों को वंशानुगत कर दिया। और तब से लेकर लोदियों के शासन काल तक इसका प्रचलन बना रहा परन्तु शेरशाह ने जागीर प्रथा को समाप्त कर दिया। बाबर, हुमायूं तथा अकबर के शासनकाल के प्रथम दशक में जागीरदारी प्रथा का प्रचलन नहीं था।

9.6.2 अकबर तथा परवर्ती मुगल काल में जागीरदारी प्रथा

9.6.2.1 अकबर के शासनकाल में जागीरदारी प्रथा को लागू करने के उद्देश्य

अकबर के शासनकाल के दूसरे दशक में प्रारम्भ की गई मनसबदारी व्यवस्था के अन्तर्गत मनसबदारों को उनके वेतन के बदले में जागीर दिए जाने की व्यवस्था ने मुगलकालीन जागीरदारी प्रथा को जन्म दिया था। जागीरदारी व्यवस्था लागू करने का उद्देश्य शाही खज़ाने पर बिना अतिरिक्त बोझ डाले साम्राज्य की सैन्य-शक्ति को बढ़ाना था। सैनिक अधिकारियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ उनके आधीन सैनिकों तथा उनसे सम्बद्ध पशुओं की ज़रूरतों को भी पूरा करने की सुनिश्चित व्यवस्था करना था।

9.6.2.2 नकदी तथा जागीरदार

मुगल काल में जागीरदारी प्रथा मनसबदारी व्यवस्था का अन्तरंग अंग थी। अकबर के शासनकाल के दूसरे दशक से सभी मुगल सैनिक तथा असैनिक अधिकारियों को सैनिक पद मनसब प्रदान किया गया और वे सभी मनसबदार कहलाए। मनसबदारों को दिया जाने वाला वेतन दो प्रकार से दिया गया। प्रथम वे, जिन्हें नकद वेतन दिया गया। इन्हें नकदी कहा गया और द्वितीय वे, जिन्हें वेतन के स्थान पर उनके वेतन के बराबर आय के भू-क्षेत्र आवंटित

किए गए। इन भू-क्षेत्रों को जागीर कहा गया और जिन्हें ये क्षेत्र आवंटित किए गए उन्हें जागीरदार कहा गया। इस प्रकार मुगल काल में जागीरदारी प्रथा अकबर के शानकाल से प्रारम्भ हुई थी।

9.6.2.3 जमादामी

जागीर से प्राप्त आय को 'जमादामी' कहा जाता था। आवंटित जागीर की आय से मनसबदार को अपना, अपने सैनिकों का, उनसे सम्बद्ध पशुओं तथा अस्त्र-शस्त्रों का खर्च सम्भालना होता था। सामान्यतया जागीरें उच्चपदीय मनसबदारों को प्रदान की जाती थीं। इस प्रकार जागीरदार आमतौर पर आभिजात्य वर्ग से सम्बद्ध थे। किसी मनसबदार को जागीर आवंटित करते समय यह सुनिश्चित कर लिया जाता था कि उस जागीर की वार्षिक आय उसके निर्धारित वेतन तथा भत्तों के समतुल्य है अथवा नहीं।

9.6.2.4 जागीरों का हस्तान्तरण तथा जागीरों का वंशानुगत न होना

किसी भी जागीरदार को आवंटित जागीर पर स्वामित्व (मालिकाना हक़) प्रदान नहीं किया जाता था। मनसबदारों को लम्बे समय तक एक ही जागीर पर नहीं दी जाती थी। सावधानी के तौर पर समय-समय पर जागीरों का हस्तान्तरण भी किया जाता था ताकि जागीरदार आवंटित जागीर पर स्थायी रूप से अपने अधिकार अथवा स्वामित्व का दावा पेश न करने लगे। जागीर और मनसब वंशानुगत नहीं होते थे अर्थात् मनसबदार की मृत्यु के बाद उसके वंशज उसकी जागीर या उसके मनसब पर अपना दावा प्रस्तुत नहीं कर सकते थे। मनसबदार की मृत्यु के बाद उसकी जागीर स्वतः बादशाह के अधिकार में वापस चली जाती थी।

9.6.2.5 जागीरों का प्रशासन

जागीरदार को आवंटित जागीर से राज्य को देय भू-राजस्व तथा विभिन्न अबवाब प्राप्त करने का अधिकार था। अपनी आवंटित जागीर में जागीरदार करों की वसूली के लिए अपने कर्मचारी नियुक्त करता था। इस प्रकार जागीरदारों की जागीरों में राज्य की ओर से भू-राजस्व एकत्र करने वाले कर्मचारियों की सेवाओं की आवश्यकता नहीं रह गई और इससे राज्य को इन क्षेत्रों में भू-राजस्व एकत्र करने के व्यय से छुटकारा मिल गया। प्रारम्भ में जागीरदारी व्यवस्था से न केवल राज्य के भू-राजस्व एकत्र करने के कार्य में खर्च होने वाली राशि में कमी आई अपितु मनसबदारों के आधीन सैनिकों और उनके पशुओं के रख-रखाव की चिन्ता से भी राज्य को छुटकारा मिल गया। जागीरदार अपनी-अपनी जागीरों में स्वतन्त्र शासक की भांति कार्य करते थे। अपनी-अपनी जागीरों में शान्ति-व्यवस्था बनाए रखने का तथा प्रजा के हितों की रक्षा करने का दायित्व जागीरदारों का ही होता था।

9.6.2.6 राज्य के प्रशासनिक अधिकारियों का जागीरदारों पर नियन्त्रण

यद्यपि जागीरदारों को अपनी-अपनी जागीरों में व्यावहारिक दृष्टि से स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की छूट दी गई थी किन्तु उनकी स्वेच्छाचारिता पर अंकुश रखने के लिए जागीरदारों के अधिकार क्षेत्रों से सम्बद्ध सूबेदारों/फ़ौजदारों/शिकदारों को उनकी गतिविधियों पर नज़र रखने का निर्देश था। आर्थिक मामलों में जागीरदार कोई

गड़बड़ी या ज़्यादती न करें, इसकी देखभाल करने का दायित्व उन क्षेत्रों से सम्बद्ध राजस्व अधिकारियों अर्थात् दीवानों/अमल गुज़ारों/आमिलों को दिया गया। जागीरदार अपने सैनिक अभियानों के लिए राज्य से अग्रिम राशि प्राप्त करते थे तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए उधार भी लिया करते थे। दीवान-ए-विज़ारत का सवानिह निगार नामक अधिकारी जागीरदारों और राज्य के मध्य लेनदेन का हिसाब रखता था। जागीरदार की मृत्यु की स्थिति में उसकी जागीर स्वतः बादशाह के पास वापस चली जाती थी तथा उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति भी राज्य की ओर से ज़ब्त कर ली जाती थी। इसके बाद सवानिह निगार के कार्यालय में उसके पिछले लेनदेन का हिसाब चुकता करने के बाद उसकी निजी सम्पत्ति की शेष राशि उसके परिवार जनों को लौटा दी जाती थी।

9.6.2.7 जागीर–ए–वतन

सामान्यतया मनसबदार को उसके गृह पदेश में जागीर नहीं दी जाती थी। गृह प्रदेश की जागीर को जागीर-ए-वतन कहा जाता था। यह केवल उन मनसबदारों को प्रदान की जाती थी जिनके कि पास मुगल सेवा में आने से पूर्व अपना राज्य होता था या ज़मींदारी होती थी। उदाहरणार्थ जब मुगलों की आधीनता स्वीकार कर राजपूत शासक उनके मनसबदार बनाए गए तो उन्हें जागीर-ए-वतन प्रदान की गई। इस प्रकार आनुवंशिक ज़मींदारों तथा पूर्व शासकों को जागीर-ए-वतन प्रदान की गई।

9.6.2.8 जागीरदारी व्यवस्था का पतन

जागीरदारी व्यवस्था का अतिशय विस्तार मुगल साम्राज्य के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ। अकबर के शासनकाल में मनसबदारों की कुल संख्या दो हज़ार से भी कम थी और औरंगज़ेब के शासनकाल में उनकी संख्या लगभग साढ़े चौदह हज़ार तक पहुंच गई। इनमें जागीर आवंटित किए गए मनसबदारों अर्थात् जागीरदारों की संख्या भी हज़ारों में थी। बीजापुर और गोलकुण्डा विजय के बाद मुगल साम्राज्य विस्तार को पूर्ण विराम लग चुका था। अब नए भू-क्षेत्रों का मुगल साम्राज्य में समावेश नहीं हो रहा था किन्तु अपने अनवरत सैनिक अभियानों के कारण औरंगज़ेब को सैनिक अधिकारियों की संख्या में लगातार वृद्धि करनी पड़ रही थी। राज्य को अपने नए मनसबदारों को आवंटित करने के लिए नई जागीरों की निरन्तर आवश्यकता पड़ रही थी। इस प्रकार आवंटन हेतु जागीरों की कमी पड़ने लगी। धीरे-धीरे मनसबदार को आवंटित जागीर मिलने में वर्षों का समय लगने लगा और कभी-कभी अपनी आवंटित जागीर प्राप्त करने उसकी पूरी उम्र कम पड़ने लगी। शाह-ए-बेखबर कहे जाने वाले औरंगज़ेब के पुत्र बहादुर शाह प्रथम के काल में तो एक ही जागीर दो या उससे भी अधिक मनसबदारों को आवंटित की जाने लगी। धीरे-धीरे स्थिति इतनी खराब हो गई कि जागीर के आवंटन का पत्र रद्दी की टोकरी की शोभा बढ़ाने के लायक ही रह गया। अपनी-अपनी जागीरों पर वास्तविक अधिकार रखने वाले मनसबदारों की स्वेच्छाचारिता मुगल बादशाहों की दुर्बलता के कारण दिनों-दिन बढ़ती चली गई। उन्होंने किसानों का अनियन्त्रित होकर शोषण करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने किसानों से मनमाना लगान वसूल करना प्रारम्भ कर दिया और दुर्भिक्ष व बाढ़ की स्थिति में भी उन पर किसी प्रकार का रहम करना

उचित नहीं समझा। जागीरदारों की इस ज़ोर-ज़बर्दस्ती से कृषि विकास को गहरा आघात लगा। जागीरदारी आनुवंशिक नहीं थी। जागीरदार के उत्तराधिकारियों का जागीरदार बनाया जाना बादशाह की इच्छा पर निर्भर करता था। इसके अतिरिक्त जागीरों के समय-समय पर हस्तान्तरित किए जाने के नियम तथा जागीरदार की मृत्यु की स्थिति में उसकी जागीर स्वतः बादशाह के पास वापस चले जाने और उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति भी राज्य की ओर से ज़ब्त किए जाने के कारण जागीरदारों के मन में आशंका, भय व अनिश्चितता बनी रहती थी। अपनी आवंटित जागीर और उसमें रहने वाली प्रजा के प्रति उनका कोई स्थायी लगाव नहीं हो पाता था। इन परिस्थितियों में अधिकांश जागीरदार अपनी-अपनी जागीरों में अपने दायित्वों के प्रति असावधान होकर मनमाने ढंग से किसानों तथा अन्य निवासियों को शोषण करते थे तथा निजी जीवन में बचत करने के स्थान पर अपनी विलासिता में अयिन्त्रित अपव्यय करते थे। विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने के कारण जागीरदार अपने सैनिकों के रख-रखाव के प्रति भी असावधान हो गए जिसका कि प्रतिकूल प्रभाव राज्य की सैन्य-शक्ति पर पड़ा। इस प्रकार राज्य की सैनिक क्षमता बढ़ाने तथा जागीरों में राजस्व एकत्रण हेतु सरकारी खर्च में कमी करने के जिन उद्देश्यों को लेकर जागीरदारी प्रथा को लागू किया गया था उनको प्राप्त करने की कोई भी सम्भावना जाती रही। धीरे-धीरे जागीरदारी प्रथा न केवल साम्राज्य के लिए असहनीय आर्थिक बोझ का कारण बनती गई अपितु उसके पतन का एक प्रमुख कारण भी बन गई।

9.7 भू-राजस्व व्यवस्था

9.7.1 मुगलों से पूर्व भू-राजस्व व्यवस्था

9.7.1.1 प्राचीन भारतीय शासकों की भू-राजस्व व्यवस्था

कृषि प्रधान देश भारत में राज्य की आय का मुख्य स्रोत भू-राजस्व रहा है। भारत का कोई भी शासक भू-राजस्व प्रशासन की उपेक्षा कर अथवा उसका कु-प्रबन्ध कर अपने शासन को सफल नहीं बना सकता था। राज्य को कृषि-उपज का एक भाग प्राप्त करने का वैधानिक अधिकार था। मौर्य तथा गुप्त काल में आमतौर पर उपज का छठा भाग भू-राजस्व के रूप में लिया जाता था। भू-राजस्व निर्धारण में भूमि की नापजोख किए जाने की व्यवस्था थी। प्राचीन भारतीय शासकों के काल में दुर्भिक्ष, अनावृष्टि तथा बाढ़ की स्थिति में भू-राजस्व की वसूली का स्थगन अथवा उसको भयंकर आपदा की स्थिति में पूर्णतया समाप्त करने की व्यवस्था थी। कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए तथा भू-राजस्व के माध्यम से राज्य की आय में वृद्धि करने के उद्देश्य से शासकों द्वारा सिंचाई हेतु नहरों, जलाशयों तथा कूपों का निर्माण कराया जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सुचारु भू-राजस्व प्रशासन हेतु अनेक उपायों की चर्चा की गई है

9.7.1.2 दिल्ली सल्तनत काल में भू-राजस्व व्यवस्था

दिल्ली सल्तनत काल में प्राचीन भारतीय भू-राजस्व व्यवस्था में कोई आमूल परिवर्तन नहीं किया गया किन्तु राज्य की ओर से लिया जाने वाला भू-राजस्व कुल उपज के छठे भाग से बढ़ाकर उपज का तीसरा भाग कर दिया गया।

सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने इसे और बढ़ाकर उपज का आधा भाग कर दिया और भू-राजस्व निर्धारण में भूमि की नापजोख को आधार बनाया। भू-राजस्व के साथ-साथ चारागाह कर तथा गृह कर जैसे अबवाब लगाकर तथा बाज़ार नियन्त्रण नीति लागू कर अलाउद्दीन ने निर्धन किसानों पर और भी अधिक आर्थिक बोझ डाल दिया। सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक ने अलाउद्दीन की कठोर भू-राजस्व नीति को बदल कर उसे किसानों के अनुकूल बनाने का प्रयास किया। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा दोआब में कर वृद्धि का प्रयोग पूर्णतया असफल रहा परन्तु उसके उत्तराधिकारी सुल्तान फ़ीरोज़शाह तुगलक ने किसानों की दशा सुधारने तथा कृषि-विकास हेतु अनेक ठोस कदम उठाए। फ़ीरोज़शाह तुगलक के काल में भू-राजस्व निर्धारण हेतु भूमि की नापजोख करने की व्यवस्था को तथा अबवाबों को समाप्त कर दिया गया। सिंचाई के साधनों - नहरों, जलाशयों आदि का निर्माण कर उसने कृषि क्षेत्र का विस्तार किया। सिंचाई के साधनों से लाभान्वित क्षेत्रों में सिंचाई कर लगाकर उसने राज्य की आय में वृद्धि की किन्तु उसने राजस्व संग्रह हेतु ठेका दिए जाने की प्रथा को बढ़ावा देकर किसानों के आर्थिक दोहन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। सैयद वंश और लोदी वंश के सुल्तानों ने भू-राजस्व व्यवस्था को लगभग पूर्ववत बने रहने दिया। भू-राजस्व प्रशासन के क्षेत्र में उनकी कोई भी उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं थी।

9.7.1.3 शेरशाह की भू–राजस्व व्यवस्था

शेर शाह ने भू-राजस्व प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर कर उसे अधिक सक्षम, निष्पक्ष और पारदर्शी बनाया। भू-राजस्व के निर्धारण को वैज्ञानिक आधार देने के लिए उसने भूमि की नापजोख तथा औसत उपज के आधार पर ज़मीन का तीन किस्मों (उत्तम, मध्यम और निम्न) में वर्गीकरण किया। उसने अनुमानित लगान (जमा) और वास्तव में वसूला गया लगान (हासिल) का अन्तर कम करने के लिए ठोस उपाय किए। लगान का भुगतान नकदी में किया जाना निश्चित किया गया। किसानों को भूमि पर अधिकार सम्बन्धी पट्टे दिए गए तथा उनको लगान सम्बन्धी अपने कर्तव्यों के लिए कुबूलियत भी देनी पड़ी। सैनिक अभियानों के समय किसानों को उनकी फ़सल के नुक्सान की भरपाई की व्यवस्था की गई तथा आपदाकाल में उनको लगान में छूट व अन्य प्रकार की सहायता की व्यवस्था भी की गई।

9.7.2 मुगलशासकों की भू-राजस्व व्यवस्था

9.7.2.1 बाबर तथा हुमायूं के शासनकाल में भू–राजस्व व्यवस्था

बाबर और हुमायूं के शासनकाल में भू-राजस्व प्रशासन में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। इन दोनों बादशाहों को प्रशासनिक सुधार करने का न तो समय मिला और न ही उनमें नव-विजित साम्राज्य की जटिल भू-राजस्व व्यवस्था की जटिलताओं को समझ पाने की योग्यता थी और न उसमें सुधार करने हेतु आवश्यक संसाधन। उन्होंने पूर्ववर्ती भू-राजस्व व्यवस्था को लगभग ज्यों का ज्यों बनाए रखा।

9.7.2.2 अकबर की भू–राजस्व व्यवस्था

9.7.2.2.1 भू–राजस्व प्रशासन में प्रारम्भिक प्रयोग

कृषि योग्य भूमि तीन वर्गों में विभाजित थी - खालसा, जागीर और मदद-ए-माश। जागीरों के भू-राजस्व प्रशासन का दायित्व उनसे सम्बद्ध मनसबदारों का था तथा मदद-ए-माश के अन्तर्गत भूमि की आय पर धार्मिक व्यक्तियों का अधिकार होता था। राज्य के लिए खालसा भूमि ही राजस्व का साधन होती थी। अकबर ने शासन की बागडोर वास्तविक रूप से अपने हाथों में सम्भालते ही राज्य की आय के मुख्य स्रोत भू-राजस्व की महत्ता को समझते हुए भू-राजस्व प्रशासन में व्याप्त अराजकता, दस्तावेज़ों में गड़बड़ी, किसानों के अनावश्यक शोषण तथा राज्य की आय में अनश्चितता की स्थिति को सुधारने तथा अपने साम्राज्य में भू-राजस्व प्रशासन में एकरूपता लाने के प्रयास प्रारम्भ कर दिए। उसके प्रारम्भिक प्रयोगों में शाह मन्सूर, मुज़फ्फ़र खाँ तरबाती तथा राजा टोडरमल का विशेष योगदान था। मुज़फ्फ़र खाँ तरबाती तथा राजा टोडरमल ने स्थानीय कानूनगो के दस्तावेज़ों का गहन अध्ययन किया। राजा टोडरमल ने समस्त गुजरात की कृषि योग्य भूमि का सर्वेक्षण किया और उसके आधार पर वहां भू-राजस्व का निर्धारण किया।

9.7.2.2.2 राजा टोडरमल का दहसाला बन्दोबस्त

अकबर यह समझता था शेरशाह के शासनकाल में राजस्व अधिकारी रह चुके राजा टोडरमल का भूमि का दहसाला बन्दोबस्त सन् 1573 के उसके गुजरात के तथा सन् 1575-76 के उसके गुजरात, बिहार व बंगाल छोड़कर शेष साम्राज्य के भू-राजस्व प्रशासन के सर्वेक्षण पर आधारित था। टोडरमल ने साम्राज्य को लगभग 1 करोड़ टकों की वार्षिक भू-राजस्व आय वाली 182 इकाइयों में विभाजित किया और उनमें से प्रत्येक को करोड़ी नामक अधिकारी के सुपुर्द कर दिया। बाद में इस व्यवस्था को बदल कर भू-राजस्व प्रशासन हेतु साम्राज्य को 12 सूबों में विभाजित कर दस वर्षीय व्यवस्था दहसाला बन्दोबस्त को लागू किया गया। भू-राजस्व निर्धारण हेतु भूमि की पैमाइश की गई तथा उसे उत्पादकता की दृष्टि से पोलज, परौती, चाचर तथा बन्जर में वर्गीकृत किया गया। लगान के रूप में किसान को अपनी दस वर्ष की औसत उपज का तीसरा भाग देना निश्चित किया गया। विभिन्न क्षेत्रों में कृषि-उत्पादों की मूल्य-तालिका (दस्तूरुल अमल) के आधार पर किसान की कुल उपज का मूल्यांकन किया गया और फिर लगान को नकदी में लिए जाने का प्रबन्ध किया गया। इस व्यवस्था पर शेरशाह के भू-राजस्व प्रशासन की स्पष्ट छाप थी। दहसाला बन्दोबस्त न तो दस वर्ष के लिए था न ही यह स्थायी था, लगान की दरों में समय-समय पर संशोधन करने का अधिकार राज्य के पास सुरक्षित था। इस व्यवस्था में किसानों के हितों की रक्षा करने तथा राजस्व अधिकारियों द्वारा उनके शोषण पर नियन्त्रण करने के अनेक प्रबन्ध किए गए थे किन्तु यह व्यवस्था दोषमुक्त नहीं थी। इसमें किसानों पर करों का बोझ अत्यधिक था। लॉर्ड कॉर्नवालिस के शासनकाल में सन् 1793 के स्थायी बन्दोबस्त में लगान निर्धारण में दहसाला

बन्दोबस्त के दस्तावेज़ों को ही आधार बनाया गया था किन्तु ब्रिटिश शासन की भू-राजस्व व्यवस्था की तुलना में मुगलकालीन भू-राजस्व व्यवस्था अधिक उदार तथा किसानों के लिए हितकारी थी।

9.7.2.2.3 अन्य भू–राजस्व प्रणालियां

1. कनकूत प्रणाली: इस प्रणाली में उपज का अनुमान लगाकर लगान का निर्धारण किया जाता था। इसमें लगान गल्ले के रूप में वसूला जाता था।

2. नस्क प्रणाली: यह प्रथा काश्मीर तथा गुजरात में प्रचलित थी। मोरलैण्ड के अनुसार इस प्रथा के अन्तर्गत भूमि कर किसानों से व्यक्तिगत रूप से नहीं अपितु उनके समूह से वसूली जाती थी। प्रोफ़ेसर ए0 एल0 श्रीवास्तव के अनुसार इस व्यवस्था में प्रति हल के हिसाब से लगान निर्धारित किया जाता था।

3. गल्लाबख्शी: इस परम्परागत भू-राजस्व प्रणाली में खेत में ही कटी फ़सल में से किसान और राज्य के हिस्से का बटवारा कर लिया जाता था किन्तु इस प्रणाली में राजस्व अधिकारियों द्वारा किसानों का शोषण करने तथा किसानों के साथ मिलीभगत कर राज्य को भू-राजस्व में नुकसान पहुंचाने की सम्भावना बनी रहती थी। इसके अतिरिक्त भू-राजस्व के रूप में प्राप्त गल्ले को रखने की व्यवस्था का खर्च भी राज्य को उठाना पड़ता था।

9.7.2.3 अबवाब

मुगल काल में किसान को लगान के अतिरिक्त राजस्व कर्मचारियों को पैमाइश करने की एवज़ में एक दाम प्रति बीघा जाबिताना भी देना पड़ता था। किसानों को स्थानीय पुजारी, बढ़ई, धोबी, लुहार, नाई आदि को उनकी सेवाओं के बदले में अनाज के रूप में खुराकी देनी पड़ती थी। पशुओं, चारागाहों तथा बागों पर भी अबवाब लगाए जात थे। अनेक बार बादशाहों को अबवाबों को समाप्त करना पड़ता था किन्तु स्थानीय अधिकारी बार-बार किसी न किसी बहाने उन्हें फिर से लगा देते थे।

9.7.2.4 किसानों को राहत तथा कृषि योग्य भूमि के विकास को प्रोत्साहन

अकाल, अनावृष्टि अथवा बाढ़ की स्थिति में किसानों को लगान में राहत दिए जाने की व्यवस्था थी। शाहजहां द्वारा 1630-31 के दुर्भिक्ष के समय खालसा भूमि पर 70 लाख का लगान माफ़ किया गया था। सन् 1641 में काश्मीर में अकाल के दौरान किसानों को 1 लाख रुपये की सहायता देने के साथ लंगरों में मुफ़्त भोजन की व्यवस्था भी की गई थी। किसानों को कृषि योग्य भूमि में विस्तार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था और उन्हें बंजर या वनाच्छादित भूमि को खेती योग्य बनाने पर लगान में 5 वर्ष तक की पूरी अथवा आंशिक छूट दी जाती थी। ज़रूरत पड़ने पर किसानों को बीज तथा पशु खरीदने के लिए ब्याज मुक्त तकावी (अग्रिम धन) दी जाती थी जिसे आसान किश्तों में उन्हें चुकाना होता था। राज्य की ओर से सिंचाई हेतु बांधों, नहरों, जलाशयों तथा कूपों का निर्माण किया जाता था।

9.7.2.5 अकबर के परवर्ती मुगल बादशाहों की भू–राजस्व व्यवस्था

अकबर के परवर्ती मुगल बादशाहों ने उसकी भू-राजस्व व्यवस्था को लगभग ज्यों का त्यों लागू रखा परन्तु शाहजहां की विलासिता और औरंगज़ेब के निरन्तर युद्धों में व्यस्त रहने के कारण राज्य पर बहुत अधिक आर्थिक बोझ पड़ा। इस कारण भू-राजस्व को उपज के तीसरे भाग से बढ़ाकर आधा भाग कर दिया गया। मुगल साम्राज्य के पतन के समय भू-राजस्व प्रशासन पूर्णतया अव्यवस्थित हो गया तथा किसानों का शोषण निरन्तर बढ़ने के कारण उनकी हालत बद से बदतर होती चली गई।

9.7.2.6 किसानों पर ऋण का बोझ

आमतौर पर लगान तथा अबवाब चुकाने के लिए तथा भ्रष्ट राजस्व अधिकारियों - ताल्लुकदार, ज़मींदार, चौधरी, खुत, मुकद्दम, कानूनगो, पटवारी आदि की नाजायज़ मांगों को पूरा करने के लिए किसानों को बार-बार महाजनों से ऊँची ब्याज दरों पर ऋण लेना पड़ता था और फिर वे आजीवन ऋण के बोझ तले दब जाते थे। अन्नदाता किसान को दो वक्त की रोटी भी मुश्किल से नसीब हो पाती थी।

9.7.2.7 मुगल भू–राजस्व व्यवस्था के गुण–दोष

महान मुगल शासकों की भू-राजस्व व्यवस्था मध्यकालीन परिस्थितियों को देखते हुए उदार एवं व्यवस्थित कही जा सकती है। राजपूत, मराठा, सिक्ख तथा अन्य परवर्ती भारतीय शासकों के अतिरिक्त ब्रिटिश भारतीय शासकों ने भी मुगलों की भू-राजस्व प्रणाली को अपने भूमि-प्रशासन का आधार बनाया था। मुगल काल में लगान कुल उत्पादन पर नहीं अपितु लाभांश (बीज, खाद आदि का खर्चा निकाल कर) के आधार पर वसूला जाता था जब कि अंग्रेज़ों ने भारत में लगान निर्धारण में कुल उत्पादन को आधार बनाया था इसीलिए मुगल काल की तुलना में ब्रिटिश काल में किसानों की दशा कहीं अधिक खराब थी। मुगल भू-प्रशासन इस धारणा पर आधारित था कि साम्राज्य की समृद्धि किसान के सुखी होने पर निर्भर करती है। इसलिए मुगल शासन में यथा सम्भव किसान के हितों की रक्षा की गई, उसको प्रोत्साहित किया गया और आवश्यकता पड़ने पर उसकी सहायता भी की गई।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. दिल्ली सल्तनत काल में जागीरदारी प्रथा।
2. जागीर-ए-वतन।
3. जागीरों पर राज्य का नियन्त्रण।
4. शेरशाह की भू-राजस्व प्रशासन की उपलब्धियां।
5. गल्ला बख्शी व्यवस्था।
6. मुगल भू-राजस्व व्यवस्था के गुण-दोष।

9.8 सारांश

जागीरदारी प्रथा सामन्तवादी शासन प्रणाली का एक प्रकार थी। सल्तनत काल में अमीरों को उनके नकद वेतन के बदले में उन्हें उसके समतुल्य आय के इक्ते (जागीर) प्रदान किए जाते थे। बलबन और अलाउद्दीन खिलजी ने जागीरदारी प्रथा का दमन किया जब कि फ़ीरोज़ तुगलक ने इसका पुनरुत्थान किया। अकबर ने मनसबदारी व्यवस्था के अन्तर्गत उच्च पदीय मनसबदारों को वेतन के बदले में जागीरें आवंटित कीं। जागीर वंशानुगत नहीं होती थी तथा समय-समय पर उनका हस्तान्तरण भी होता था किन्तु पूर्व शासकों और ज़मींदारों को उनके गृह क्षेत्र में जागीर-ए-वतन प्रदान की जाती थी। जागीरदार अपनी आवंटित जागीरों में प्रशासक की भूमिका भी निभाते थे। जागीरदारों की गतिविधियों पर सम्बद्ध सूबेदार, फ़ौजदार व शिकदार के माध्यम से राज्य का नियन्त्रण रखा जाता था। धीरे-धीरे सैनिक व राजनीतिक कारणों से जागीरदारों की संख्या बढ़ती चली गई और जागीरों की कमी पड़ने लगी। औरंगज़ेब के शासनकाल के उत्तरार्ध से जागीरदारी व्यवस्था राज्य पर एक भारी आर्थिक बोझ बन गई और परवर्ती काल में उसमें और भी अधिक अव्यवस्था व अराजकता व्याप्त होने के कारण उसका पतन हो गया।

कृषि प्रधान देश भारत में प्राचीन काल से राज्य की आय का मुख्य स्रोत भू-राजस्व रहा है। मौर्य तथा गुप्त काल में उपज का छठा भाग भू-राजस्व के रूप में लिया जाता था। भू-राजस्व निर्धारण में भूमि की नापजोख किए जाने की व्यवस्था थी। दिल्ली सल्तनत काल में अलाउद्दीन ने लगान निर्धारण हेतु भूमि की पैमाइश की प्रणाली लागू की किन्तु भू-राजस्व के रूप में उपज का आधा भाग लेकर उसने किसानों का शोषण किया। फ़ीरोज़ तुगलक ने किसानों पर करों का बोझ कम किया किन्तु भू-राजस्व के एकत्रण हेतु ठेकेदारी प्रथा का प्रचलन कर उसने किसानों का अहित किया। भूमि की नापजोख तथा उत्पादकता के आधार पर भू- राजस्व का निर्धारण कर, किसानों के अधिकारों व कर्तव्यों को सुनिश्चित कर शेरशाह ने भू-राजस्व प्रशासन को सक्षम बनाया।

अकबर ने शेरशाह के भू-राजस्व प्रशासन से प्रेरणा लेकर राजा टोडरमल के नेतृत्व में दहसाला बन्दोबस्त किया। इसमें भूमि की पैमाइश तथा उसकी उत्पादकता के आधार पर भू-राजस्व का निर्धारण किया गया। कनकूत, नस्क तथा गल्ला बख्शी अन्य प्रचलित भू-राजस्व प्रणालियां थीं। मुगल काल में किसानों पर करों का बोझ अधिक था किन्तु ब्रिटिश भारतीय शासन की तुलना यह बहुत कम था। अकबर के दहसाला बदोबस्त को राजपूतों, मराठों व अंग्रेज़ों ने अपने भू-राजस्व प्रशासन का आधार बनाया। मुगल शासकों ने किसानों के हितों की रक्षा व कृषि विकास को राज्य का दायित्व समझा। मध्यकालीन परिस्थितियों को देखते हुए हम मुगल भू-राजस्व व्यवस्था को सफल कह सकते हैं।

मुगल काल में सैन्य शक्ति पर आधारित एक केन्द्रीकृत शासन था। बादशाह इसका सर्वोच्च प्रशासक तथा सर्वोच्च सेनानायक होता था। वह साम्राज्य के सर्वोच्च न्यायाधीश की भूमिका भी निभाता था। बादशाह राज्य के सभी

उच्चस्थ अधिकारियों की स्वयं नियुक्ति करता था। बादशाह की शक्तियां अपरिमित थीं। केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत उच्चतम अधिकारी वकील, वज़ीर अथवा दीवान-ए-कुल, मीरबख्शी, मीर-ए-सामाँ, सद्र-उस-सुदूर, काज़ी-उल-कज़ात आदि होते थे। इन अधिकारियों को केन्द्रीय प्रशासन के अपने दायित्व के अतिरिक्त अपने विभागों से सम्बद्ध प्रान्तों के अधिकारियों पर भी नज़र रखनी होती थी। प्रान्त के सर्वोच्च अधिकारी सूबेदार तथा वित्त विभाग के प्रमुख दीवान की नियुक्ति बादशाह द्वारा की जाती थी। प्रान्तीय प्रशासन को हम केन्द्रीय प्रशासन का ही लघु रूप कह सकते हैं। स्थानीय प्रशासन में सरकार, परगने और ग्राम का प्रशासन आता था।

मुगल साम्राज्य की आर्थिक सुदृढ़ता एवं का मूल कारण उसकी सक्षम वित्त व्यवस्था थी। केन्द्र में दीवान-ए-कुल तथा प्रान्त में दीवान वित्त विभाग का प्रमुख होता था। मुगलों की राजस्व प्रणाली मुख्य रूप से मुस्लिम प्रशासनिक परम्पराओं के अनुरूप थी किन्तु उसमें स्थानीय राजस्व प्रणालियों के तत्वों का भी समावेश किया गया था। खिराज, खम्स, जज़िया और ज़कात मुख्य कर थे और समय-समय पर अनेक अबवाब भी लगाए जाते थे। मुगल काल में सोने, चाँदी व तांबे की उच्च कोटि की मुद्राओं का प्रचलन था। मुगल शासक कृषि, उद्योग एवं व्यापार के विकास के लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। महा मुगलों के काल में व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में था।

प्रशासनिक एकरूपता स्थापित करने के उद्देश्य से अकबर ने मनसबदारी व्यवस्था को मुगल सैनिक संगठन तथा नागरिक प्रशासन का आधार बनाया था। राज्य के सभी छोटे-बड़े सैनिक तथा असैनिक अधिकारियों को एक सैनिक पद 'मनसब' प्रदान किया गया। मनसबदारों की नियुक्ति का अधिकार केवल बादशाह का होता था। उच्चतम मनसब शहज़ादों को प्रदान किया जाता था। मनसबदारों का वैयक्तिक पद 'ज़ात' और उनके अश्वारोहियों की संख्या को प्रदर्शित करने वाला 'सवार' पद होता था। जहांगीर के काल से 'सवार' पद में 'दोअस्पा' तथा 'सिंहअस्पा' सवारों का भी वर्गीकरण किया जाने लगा। मनसबदारों को वेतन के रूप में नकदी अथवा जागीर दिए जाने की व्यवस्था की गई। मनसबदार का मनसब और जागीर वंशानुगत नहीं थे। मनसबदारों में तुर्क, उज़बेग, ईरानी, अफ़गान, हिन्दुस्तानी मुसलमान, राजपूत और अनन्तर काल में मराठे शामिल थे। प्रोफ़ेसर अतहर अली ने इस तथ्य का उद्घाटन किया है कि औरंगज़ेब के शासनकाल में हिन्दू मनसबदारों की संख्या तथा उनका कुल प्रतिशत अन्य मुगल बादशाहों की तुलना में अधिक था। धीरे-धीरे मनसबदारी व्यवस्था में शिथिलता आती चली गई और मनसबदारों की संख्या निरन्तर बढ़ने से राजकोश पर बोझ बढ़ने लगा। शिथिल एवं बोझिल मनसबदारी व्यवस्था मुगल साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण बनी।

9.9 पारिभाषिक शब्दावली

जमादामी - जागीर से प्राप्त आय।

जागीर-ए-वतन - मनसबदार के गृह प्रदेश की जागीर।

पट्टा - शासन की ओर से किसान को दिया जाने वाला भूमि सम्बन्धी अधिकार पत्र।

कुबूलियत - किसान की ओर से लगान चुकाने के दायित्व का स्वीकृति पत्र।

अबवाब - अतिरिक्त कर।

जाबिताना - भूमि की पैमाइश के एवज़ में किसान से लिया जाने वाला कर।

तकावी - अग्रिम धन।

मीर-ए-सामाँ - शाही महल, शाही सम्पत्ति तथा कारखानों की देखभाल करने वाला अधिकारी।

वजीफ़ा, सयूरगाल, मदद-ए-माश - राज्य की ओर से धार्मिक स्थलों, धर्म से सम्बद्ध व्यक्तियों और शिक्षण संस्थाओं को दिए जाने वाले आर्थिक व भूमि के अनुदान।

मुकद्दम - ग्राम प्रधान।

जिम्मी - मुस्लिम राज्य में जज़िया देने वाला गैर-मुस्लिम।

खजाना-ए-सदाक़त -साम्राज्य की ओर से धर्मार्थ राशि रखने हेतु कोश।

कारखाना - शाही उद्योगशाला।

जागीर-ए-वतन - मुगल सेवा में आने से पूर्व ही ज़मींदार व शासक रह चुके मनसबदारों को उनके गृह प्रदेश में ही आवंटित जागीर।

9.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 9.1.3.1.1 बादशाह।
2. देखिए 9.1.3.3.3 ग्राम।
3. देखिए 9.1.4.2. मुद्रा प्रणाली।
4. देखिए 9.1.4.4.2 विदेश व्यापार।
5. देखिए 9.1.5.2 मनसबदारी व्यवस्था के अन्तर्गत ज़ात तथा सवार पद।
6. देखिए 9.1.5.3 जागीर तथा जागीर-ए-वतन ।
1. देखिए 9.2.3.1 अकबर के शासनकाल से पूर्व जागीरदारी प्रथा।
2. देखिए 9.2.3.2.7 जागीर-ए-वतन ।
3. देखिए 9.2.3.2.6 राज्य के प्रशासनिक अधिकारियों का जागीरदारों पर नियन्त्रण।
4. देखिए 9.2.4.1.3 शेरशाह की भू-राजस्व व्यवस्था।
5. देखिए 9.2.4.2.2.3 अन्य भू-राजस्व प्रणालियां का बिन्दु 3 ।
6. देखिए 9.2.4.2.7 मुगल भू-राजस्व व्यवस्था के गुण-दोष।

9.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Dharma Kumar – *Economic History of India Vol. I*

2. Habib, Irfan – *Agrarian System of the Mughals*

3. Smith, V. A. – *Akbar the Great*

4. Abu-l –Fazl – *The Ain-i-Akbari* (English Tr. Blochmann, H.)

5. Abu-l –Fazl – *Akbarnama* (English Tr. Beveridge, H.)

1. Hasan, Ibn – *The Central Structure of the Mughal Empire*

2. Qureshi, I. H. – *The Administration of the Mughal Empire*

3. Tripathi, R. P. – *Some Aspects of Muslim Administration*

9.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Sarkar, Jadunath – *Studies in Mughal India*

2. Sarkar, Jadunath – *Fall of the Mughal Empire*

3. Chandra, S. – *Medieval India: From Sultanate to the Mughals*

4. Moreland – *India from Akbar to Aurangzeb*

1. Jahangir – *Tuzuk-i-Jahangiri* (English Tr. Beveridge, Rogers)

2. Abul Fazl – *The Ain-i-Akbari* (English Tr. Blochmann, H.)

3. Sarkar, J. N. – *Mughal Administration*

4. Bernier, F. – *Travels in the Mogul Empire* (English Tr. Brock, Irving)

9.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.दहसाला बन्दोबस्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

2. मुगल शासकों की औद्योगिक एवं व्यापारिक नीति का आलोचात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई दस- शिवाजी की राजनीतिक उपलब्धियां एवं प्रशासन

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 शिवाजी का जीवन-परिचय

10.4 शिवाजी के जीवन का प्रथम भाग

10.5 शिवाजी के जीवन का द्वितीय भाग

10.5.1 कोंकण प्रदेश विजय

10.5.2अफजल खाँ की हत्या (10 नवम्बर, 1659)

10.6 शिवाजी के जीवन का तृतीय भाग

10.6.1मुगलों से संघर्ष

10.6.2सूरत की प्रथम लूट (1664)

10.6.3जयसिंह का आक्रमण और पुरन्दर की सन्धि (1665)

10.6.4 शिवाजी का आगरा जाना

10.6.5 मुगलों से पुनः संघर्ष

10.7 शिवाजी के जीवन का चतुर्थ भाग

10.7.1शिवाजी की विजयें

10.7.2 शिवाजी की मृत्यु

10.8 शिवाजी की सफलता के कारण

10.8.1 महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति

10.8.2 शिवाजी की रणनीति एवं व्यक्तित्व

10.8.3 दक्षिण की रियासतों की कमजोरी

10.8.4 औरंगजेब का व्यक्तित्व एवं उसकीकठोर नीतियाँ

10.8.5 मराठों के योग्य सेनापति एवं मराठा सैनिकों का जोश

10.8.6 धार्मिक लहर

10.9 शिवाजी का प्रशासन

10.9.1. अष्ट-प्रधान

10.9.1.1 पेशवा या मुख्य प्रधान

10.9.1.2 अमात्य या मजमुआदार

10.9.1.3मंत्री या वाकिया नवीस

10.9.1.4सचिव या शुरु-नवीस

10.9.1.5 सुमन्त अथवा दबीर

10.9.1.6सेनापति/सर-ए-नौबत

10.9.1.7पण्डितराव

10.9.1.8न्यायाधीश

10.10.2 प्रांतीय शासन

10.10.3 सैन्य संगठन

10.10.4 कर व्यवस्था

10.10.5 धार्मिक नीति

11.11 सारांश

11.12 तकनीकी शब्दावली

11.13 स्वमूल्यांकित प्रश्न

11.14 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

11.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.16 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

शिवाजी मध्ययुगीन भारत के इतिहास में एक विलक्षण व्यक्तित्व है। इन्होंने केन्द्रीय शक्ति के विरूद्ध क्षेत्रीय शक्ति के प्रतिरोध की एक मिसाल कायम करने की कोशिस की जिसमे वह पुर्णतः सफल भी रहे। शिवाजी ने बिखरी हुई मराठा शक्ति को संगठित किया तथा एक स्वतंत्र मराठा राज्य की आधारशीला रखी। आगे पेशवाओं के समय मराठा राज्य ने एक विशाल साम्राज्य का रूप ले लिया तथा फिर देखते-देखते मराठा झंडा कृष्णानदी से अटक तक फहराने लगा।अतः यह बहुत ही स्वाभाविक हो जाता है कि शिवाजी के व्यक्तित्व एवं प्रशासन का अध्ययन किया जाय और यह समझा जाय कि वह कौन सी परिस्थितिया रही जिन्होंने शिवाजी को एक शक्तिशाली क्षेत्रीय शक्ति के रूप में उदित एवं विकसित होने में सहायता की|

10.2 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के बाद

1. शिवाजी का जीवन परिचय के बारे में जान पाएंगे |
2. शिवाजी की विजयों एवं उपलब्धियों के बारे में जान पाएंगे |
3. शिवाजी के प्रशासन के बारे में विस्तृत अध्ययन कर पाएंगे |

10.3 शिवाजी का जीवन-परिचय

शिवाजी का जन्म 20 अप्रैल, 1627 को पूना के उत्तर में स्थित जुन्नन नगर के निकट शिवनेर के दुर्ग में हुआ था, उनके पिता का नाम शाहजी भोसले और माता का नाम जीजाबाई था। उस समय शाहजी भोसले बीजापुर राज्य में एक प्रतिष्ठित पद पर थे और एक शक्तिकाली सामन्त थे शाहजी भोंसले ने तुकाबाई मोहते नामक एक अन्य स्त्री से भी विवाह कर लिया था, अतः जीजाबाई अपने पुत्र शिवाजी को लेकर अपने पति से अलग रहने लगी, फिर भी शाहजी भोंसले ने शिवाजी की देखभाल और शिक्षा आदि के लिए दादाजी कोणदेव को नियुक्त. किया था। 12 वर्ष की आयु में शिवाजी का विवाह साईबाई निम्बालकर नामक लड़की से हुआ और शिवाजी के पिता ने शिवाजी की पूना की जागीर प्रदान की।

मराठा इतिहासकार एम. जी रानाडे ने शिवाजी के जीवन को चार भागों में विभक्त किया है | उनका कहना है कि आरम्भ के दस वर्षों में शिवाजी का उद्देश्य आसपास के मराठा सरदारों को अपनी सत्ता में लेकर एकत्रित करना और अपनी रक्षा का प्रयत्न मात्र था।

10.4 शिवाजी के जीवन का प्रथम भाग

सर्वप्रथम शिवाजी ने 1646 में बीजापुर के तोरणनामक पहाड़ी दुर्ग पर अधिकार किया। इसके बाद 1648 में उसने पुरन्दर के दुर्ग को जीत लिया। इससे अप्रसन्न होकर बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी केपिता शाहजी को कैद कर लिया। शिवाजी ने कूटनीतिसे काम लिया। उसने बीजापुर के विरुद्ध मुगलों को सहायता देने का वचन दिया। इससे बीजापुर कासुल्तान भयभीत हो गया और शाहजी भोंसले कोतुरन्त मुक्त कर दिया। इसके बाद शिवाजी ने25 जनवरी, 1656 को जावली पर आक्रमण करके वहाँ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। दुर्ग पर मराठा सरदार 'चन्दूराव मोरे' का अधिकार था जिसकाकुछ व्यक्तियों को धन देकर वध करवा दिया गया। इस विजय के सम्बन्ध में डॉ. आशीर्वादीलाल ने लिखा है- "इस विजय के उपरान्त उसके राज्य के दक्षिण- पश्चिम में विस्तार के लिए द्वार खुल गये।"

10.5. शिवाजी के जीवन का द्वितीय भाग

आगामी दस वर्षों तक शिवाजी ने अपनी सुरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया और अपने आधिपत्य क्षेत्र की सीमाओं का विस्तार किया। इस अवधि में शिवाजी का संघर्ष बीजापुर राज्य के साथ हुआ |

10.5.1 कोंकण प्रदेश विजय

1657 में उत्तराधिकार का युद्ध छिड़ जाने पर औरंगजेब दक्षिण से उत्तरी भारत आ गया। इससे शिवाजी को अपने राज्य विस्तार का अवसर मिल गया। अतः उसने कोंकण प्रदेश को जीत लिया और वहाँ अपना शासन स्थापित कर लिया। कोंकण- विजय से शिवाजी पश्चिमी समुद्र तट पर पहुँच गये और उसने नौ-सेना के निर्माण की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। उसने कोंकण प्रदेश के कल्याण और भिखण्डी नगरों में अपनी नौ-सेना का अड्डा बनाया।

10.5.2अफजल खाँ की हत्या (10 नवम्बर, 1659)

शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर बीजापुर के सुल्तान ने अपने प्रधान सेनापति अफजल खाँ को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। भरे दरबार में अफजल खाँ ने शेखी बघारी कि वह 'अपने घोड़े से बिना उतरे ही उस पहाड़ी चूहे को बन्दी बना लेगा।' इन दिनों शिवाजी प्रतापगढ़ के पहाड़ी दुर्ग में था। अतः अफजल खाँ ने भास्कर पंत नामक दूत के हाथ यह सन्धि प्रस्ताव भेजा, जिसमे लिखा था कि- "मैं तुम्हें अपनी सरकार से अधिक सम्मान और सेना को सामग्री दिलवा दूँगा। यदि तुम दरबार में उपस्थित होओगे तो तुम्हारा स्वागत होगा। यदि तुम वहाँ उपस्थित होना न चाहोगे तो तुम मुक्त कर दिये जाओगे।' फलतः सन्धि की बातचीत के फलस्वरूप शिवाजी प्रतापगढ़ दुर्ग से 1.6 किमी दक्षिण पार नामक ग्राम के पास दो अंगरक्षकों के साथ अफजल खाँ से मिलने के लिए गये। उन्होंने अपनी एक सेना को वहीं पास की झाड़ी में छिपा दिया और स्वयं अपने अँगरखे के नीचे कवच धारण कर लिया तथा एक हाथ में बघनख पहन लिया। निर्धारित स्थान पर दोनों एक-दूसरे से मिले। कहा जाता है कि एक-दूसरे से आलिंगन करते समय अफजल खाँ ने शिवाजी को दबाकर तलवार से मारना चाहा। शिवाजी, जो पहले से होशियार थे तुरन्त बघनख से अफजल खाँ का वध कर दिया। इस समय छिपे हुए सैनिकों ने अफजल खाँ की सेना पर धावा बोल दिया। अफजल खाँ की सेना भाग खड़ी हुई और शिवाजी को बहुत बड़ी धन-राशि तथा युद्ध सामग्री प्राप्त हुई। इससे शिवाजी और उनके सैनिकों का साहसबहुत बढ़ गया।

10.6 शिवाजी के जीवन का तृतीय भाग

शिवाजी के जीवन के तीसरे कालमें उनका संघर्ष दक्षिण की ओर बढ़ते हुए मुगलों के साथ हुआ।

10.6.1मुगलों से संघर्ष

शिवाजी की लगातार सफलताओं से भयभीत होकर औरंगजेब ने 1659 ईस्वी में अपने मामा शाइस्ता खाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाकर शिवाजी का दमन करने के लिए भेजा। उसने बीजापुर के सुल्तान से गठबन्धन कर पूना, चाकन आदि दुर्गों पर अपना अधिकार कर लिया। वर्षा ऋतु के आने पर शाइस्ता खाँ पूना में ठहर गया। शिवाजी ने कूटनीति से काम लिया और 15 अप्रैल, 1663 को रात्रि के समय वे अपने 400 सैनिकों के साथ बरातियों के रूप में निकल पड़े और उस महल में प्रवेश कर गये जहाँ शाइस्ता खाँ निवास कर रहा था। एकाएक हमले से शाइस्ता खाँ घबरा गया और जल्दी में खिड़की के रास्ते भाग खड़ा हुआ। शिवाजी की तलवार के प्रहार से उसका एक अँगूठा कट गया। उसका पुत्र

और अन्य मुगल सैनिक मौत के घाट उतार दिये गये। इस घटना से मुगलों की प्रतिष्ठा में बड़ा धक्का लगा। औरंगजेब ने शाइस्ता खाँ को दक्षिण से बंगाल प्रान्त भेज दिया।

10.6.2सूरत की प्रथम लूट (1664)

शाइस्ता खाँ को परास्त करने के उपरान्त शिवाजी ने 1664 में पश्चिमी तट पर स्थित सूरत बंदरगाह पर धावा बोलकर उसको लूटा लिया।इस लूट में उसको एक करोड़ से अधिक रुपया मिला। एक अंग्रेज इतिहासकार ने लिखा है, "शिवाजी सब चीजें छोड़कर केवल सोना, चाँदी, हीरे, मोती, और वैसे ही मूल्यवान सामान ले गया।"

10.6.3जयसिंह का आक्रमण और पुरन्दर की सन्धि (1665)

सूरत की लूट से अत्यधिक दुखी होकर औरंगजेब ने शिवाजी का दमन करने के लिए आमेर के राजा जयसिंह को भेजा। उन्होंने पुरन्दर का घेरा डाल दिया तथा मुगल सेना ने मराठों के ग्रामों और खेतों को उखाड़ दिया। भयंकर गोलाबारी में मराठा सेनापति मुरारबाजी प्रभु अपने 600 आदमियों के साथ वीर-गति को प्राप्त हुआ। फलतः शिवाजी को जयसिंह के सम्मुख आत्म-समर्पण करना पड़ा। बातचीत के परिणामस्वरूप दोनों के बीच पुरन्दर की सन्धि हो गई। सन्धि की शर्तें निम्न प्रकार थीं :

(1).शिवाजी ने 23 किले मुगलों को दे दिये और 12 किले अपने अधिकार में रखे।

(2).शिवाजी के पुत्र शम्भाजी को मुगल दरबार में 5,000 का मनसब दिया गया।

(3).शिवाजी ने बीजापुर के सुलतान के विरुद्ध मुगल सम्राट को सहायता देने का वचन दिया। राजा जयसिंह और उनके पुत्र रामसिंह ने शिवाजी से मुगल दरबार में चलने का अनुरोध किया और उनकी सुरक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया।

10.6.4 शिवाजी का आगरा जाना

राजा जयसिंह के अनुरोध के अनुसार शिवाजी 12 मई, 1666 को अपने पुत्र शम्भाजी के साथ मुगल दरबार में उपस्थित हुए। लेकिन वहाँ उनका आदर न हुआ और उनको पंचहजारी मनसब की श्रेणी में खड़ा किया गया। इससे शिवाजी की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने भरे दरबार में जयसिंह को बहुत भला-बुरा कहा। फलतः शिवाजी और उनके पुत्र शम्भाजी को कैद करके रामसिंह के निवास स्थान पर रख दिया गया। शिवाजी ने कैद से मुक्ति पाने के लिए बीमारी का बहाना कर लिया और स्वस्थ होने के लिए प्रतिदिन टोकरों में मिठाई भरवा कर और अपने हाथ से छूकर गरीबों में बँटवाने का कार्य प्रारम्भ कराया। प्रारम्भ में तो पहरेदार लोग इन टोकरों की जाँच करते रहे, परन्तु यह प्रतिदिन का कार्य समझकर कुछ असावधान हो गए। फलतः 19 अगस्त, को शिवाजी और उनका पुत्र शम्भाजी टोकरियों में बैठकर कैद से बाहर हो गये। पहले वे मथुरा गये। वहाँ से साधु का वेष धारण कर 12 सितम्बर, 1666 को रायगढ़ पहुँच गये।

10.6.5 मुगलों से पुनः संघर्ष

शिवाजी और मुगलों के बीच हुई पुरन्दर-सन्धि अधिक समय तक न चल सकी। 1670 में पुनः शिवाजी तथा मुगलों का संघर्ष प्रारम्भ हो गया। शिवाजी ने सिंहगढ़ का दुर्ग मुगलों से छीन लिया तथा जुन्नर पर अधिकार कर लिया। उन्होंने सूरत पर दूसरी बार आक्रमण किया और खूब लूटा। इसके बाद 1672 में उन्होंने तीसरी बार सूरत को लूटा। इस प्रकार शिवाजी अपने आक्रमणों से मुगलों को परेशान करते रहे और मुगल उनका कुछ न बिगाड़ सके।

10.7 शिवाजी के जीवन का चतुर्थ भाग

अपने जीवन के अन्तिम काल (सन् 1674-1680) में शिवाजी ने अपने स्वतन्त्र राज्य को कानूनी रूप से स्थापित किया। शिवाजी ने हिन्दू-रीति के अनुसार रायगढ़ में अपना राज्याभिषेक कराकर **'छत्रपति'** की उपाधि धारण की। इस अवसर पर उन्होंने दान दिया |

10.7.1शिवाजी की विजयें

राज्याभिषेक के समय ब्राह्मणों तथा निर्धनों को बहुत अधिक धन देने के कारण शिवाजी का राजकोष रिक्त हो गया था। अतः धन प्राप्त करने के लिए उन्होंने पुनः मुगल प्रदेशों पर अधिकार प्रारम्भ कर दिया। इस काल में उन्होंने निम्नलिखित विजयें प्राप्त कीं :

(1) शिवाजी ने मुगल सेनापति बहादुर खाँ के शिविर पर आक्रमण किया जहाँ से उनको 9 करोड़ रुपये के अतिरिक्त 200 उच्चकोटि के घोड़े भी प्राप्त हुए।

(2) इसके उपरान्त उन्होंने बीजापुर के 'कोली प्रदेश' पर आक्रमण किया।

(3) तत्पश्चात् बगलाना और खानदेश पर आक्रमण करके उसे बुरी तरह लूटा।

4) कोल्हापुर पर आक्रमण करके बहुत सा धन प्राप्त किया।

(5) इसके बाद उन्होंने बीजापुर, गोलकुण्डा तथा हैदराबाद के कुछ प्रदेशों पर आक्रमण किया जहाँ से उन्हें अपार धन-राशि प्राप्त हुई।

(6) 1676 में मुगलों ने कल्याण पर आक्रमण किया, किन्तु शिवाजी ने उन्हें बुरी तरह पराजित किया।

(7) शिवाजी ने बीजापुर से सन्धि करके 3 लाख रुपये प्राप्त किये।

(8). जनवरी, 1677 में शिवाजी ने कर्नाटक पर आक्रमण किया और प्रमुख नगरों पर अधिकार करके पर्याप्त धन प्राप्त किया। इसके पश्चात् उन्होंने तंजौर पर आक्रमण किया और उस पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस प्रकार समस्त कर्नाटक पर शिवाजी का अधिकार हो गया।

(9).शिवाजी अपने राज्य की सीमा को समुद्र की ओरबढ़ाना चाहते थे। जंजीरा पर सिद्दियों का अधिकार था। जंजीरा पर अधिकार किये बिना उसका कोंकण का प्रदेश सुरक्षित नहीं रह सकता था। सिद्दी भी समुद्र तट पर अधिकार रखना जीवन-मरण का प्रश्न समझते थे, क्योंकि वह भूमि उनके भोजन तथा आय की स्रोत थी। शिवाजी ने जंजीरा पर

आक्रमण कर दिया। सिद्दियों के सरदार फतह खाँ ने सन्धि करनी चाही। किन्तु अन्य सरदारों के विरोध करने पर वह सन्धि न कर सका। शिवाजी का जीवन पर्यन्त सिद्दियों से संघर्ष चलता रहा और वे जंजीरा पर अधिकार न कर सके।

10.7.2 शिवाजी की मृत्यु

शिवाजी के अन्तिम दिन सुखद नहीं व्यतीत हुए। वे शम्भाजी के व्यवहार से अत्यधिक दुखी रहते थे। उसका दूसरा पुत्र राजाराम अल्पवयस्क था। 2 अप्रैल, 1680 को शिवाजी ज्वर से पीड़ित हो गए और अन्त में 13 अप्रैल, 1680 को उनका देहावसान हो गया।

10.8 शिवाजी की सफलता के कारण

शिवाजी की सफलता के निम्नलिखित कारण थे :

10.8.1 महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति

शिवाजी की सफलता में महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति ने उन्हें बड़ा लाभ पहुँचाया। महाराष्ट्र एक पहाड़ी प्रदेश और बड़ा ऊँचा-नीचा है। मार्ग का कोई ठीक से पता नहीं चलता। मुगल अमीर**शिवाजी को पहाड़ी चूहा** कहते थे। इस प्रकार प्रकृति ने शिवाजी का पूरा साथ दिया। यदि शिवाजी ने पहाड़ी प्रदेश की अपेक्षा मैदानी प्रदेशों से संघर्ष किया होता तो संभवतः उन्हें इतनी सफलता न मिली होती। डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने ठीक ही लिखा है, "शिवाजी का उदय जितना व्यक्तिगत साहस व वीरता की बदौलत था, उतना ही दक्षिण की विचित्र भौगोलिक स्थिति की बदौलत था।"

10.8.2 शिवाजी की रणनीति एवं व्यक्तित्व

शिवाजी ने छापामार युद्धनीति अपनाई थी जिससे मुगल लोग भली-भाँति परिचित न थे। शिवाजी मुगलों की सेना पर पहाड़ी से निकलकर एकाएकछापा मारकर पुनः पहाड़ी में छिप जाते थे। फलतः मुगल सेना डटकर मराठा सैनिकों का सामना नहीं कर पाती थी।इस प्रकार छापामार युद्ध नीति भी शिवाजी की सफलता एवं मुगलों की पराजय का कारण बनी।

साथ ही शिवाजी की सफलता का सबसे बड़ा कारण उनका महान् व्यक्तित्व था। उनमें एक सफल विजेता, महान् योद्धा, कुशल राजनीतिज्ञ एवं सफल संगठनकर्ता के गुण विद्यमान थे। यदुनाथ सरकार के शब्दों में, "एक जन्मजात नेता का-सा व्यक्तिगत आकर्षण शिवाजी में था और जिस किसी का भी उनके साथ परिचय हुआ, वह शिवाजी के प्रति मन्त्र मुग्ध-सा हो जाता था।" इतिहासकार रालिन्सन ने ठीक ही लिखा है, "निश्चय ही ये सब गुण साधारण नहीं हैं।"

10.8.3 दक्षिण की रियासतों की कमजोरी

औरंगजेब की दक्षिण नीति के कारणबीजापुर और गोलकुण्डा की शिया रियासतें अत्यधिक निर्बल हो गई थीं। अतः शिवाजी को अपनी शक्ति बढ़ाने का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। यदि औरंगजेब ने इन रियासतों के सहयोग से शिवाजी से टक्कर ली होती तो संभवतः शिवाजी को इतनी सफलता न मिलती जितनी उन्हें मिली।

10.8.4 औरंगजेब का व्यक्तित्व एवं उसकीकठोर नीतियाँ

इतिहासकारों का मानना है कि औरंगजेब शक्की स्वभाव का व्यक्ति था। वह अपने किसी पुत्र पर विश्वास नहीं करता था और न किसी सेनापति पर ही विश्वास करता था। वह सदैव राजा जयसिंह और जसवन्तसिंह को अविश्वास की दृष्टि से देखता था जो प्रसिद्ध सेनापति थे। औरंगजेब की शासन नीतियों के कारण ही उत्तरी भारत के मुग़ल साम्राज्य में चारों ओर विद्रोह हो रहे थे। उसके पुत्र अकबर ने विद्रोह का झण्डा खड़ा करके उसके लिए विकट समस्या उपस्थित कर दी थी। औरंगजेब की इन सब कठिनाइयों से शिवाजी ने पूरा-पूरा लाभ उठाया और एक स्वतन्त्र मराठा राज्य स्थापित करने में सफल हुए।

इसके अतिरिक्त औरंगजेब की धार्मिक नीति से मराठे बहुत असंतुष्ट थे। उसने गैर मुस्लिमों पर अत्याचार किये थे। उनको हर प्रकार से नीचा दिखाने और अपमानित करने की नीति अपनाई थी। उसने शिया मुसलमानों के साथ भी धार्मिक असहिष्णुता की नीति अपनाई थी। इसके विपरीत शिवाजी की धार्मिक नीति अत्यन्त उदार थी।

10.8.5 मराठों के योग्य सेनापति एवं मराठा सैनिकों का जोश

शिवाजी की सेना में योग्य सेनापति थे। उनके सेनापतियों में रामचन्द्र, प्रहलाद, घन्नाजी यादव, नीलकण्ठ, नीराजी, तानाजी तथा माल सूरे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। शिवाजी ने मराठा सैनिकों में देशभक्ति, त्याग और बलिदान की भावनाएँ कूट-कूट कर भरी थीं। वे रूखा सूखा खाकर भी उसी जोश से दुश्मन से टक्कर लेते थे | इस प्रकार मराठा सैनिकों कीदेश-भक्ति की भावना भी शिवाजी की सफलता का कारण बनी।

10.8.6 धार्मिक लहर

15वीं तथा 16वीं शताब्दी में महाराष्ट्र में एक धार्मिक लहर उठी जिसके प्रणेता गुरु रामदास और सन्त तुकाराम थे। उन्होंने महाराष्ट्र के नवयुवकों में राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत किया। इन नवयुवकों ने शिवाजी की सफलता के कारण शिवाजी की शक्ति बढ़ाने में बड़ा योगदान दिया और जान की बाजी लगाकर अपने देश और धर्म की रक्षा की। हिन्दू-धर्म की रक्षा में इन धर्म-सुधारकोंने बड़ा योगदान दिया। रामदास जी का कहना था,"यदि धर्म का नाश हो गया तो जीने से मरनाअच्छा। धर्म के हास के पश्चात् जीवन से लाभ ही क्या? धर्म नहीं तो जीवन क्या? अतः ऐ मराठो ! संगठित हो, धर्म का पुनरुत्थान करो अन्यथा तुम्हारे पूर्वज स्वर्ग में तुम्हारी हँसी करेंगे।"

10.9शिवाजी का प्रशासन

शिवाजी एक सफल शासन प्रबन्धक थे, उन्होंने सैनिक एवं असैनिक दोनो प्रकार की शासन-व्यवस्था में अदभुत योग्यता का परिचय दिया | इस युग के अन्य राजाओं की भांति शिवाजी भी एक निरकुंश शासक थे |राज्य की सम्पूर्ण शक्तियाँ उन्हीं के हाथों में केन्द्रित थीं। वही राज्य के सर्वोच्च न्यायधीश, प्रशासकीय प्रधान और प्रमुख सेनापति थे। शिवाजी ने अपने साम्राज्य के प्रशासन को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए इसे केन्द्रीय प्रशासन एवं प्रांतीय

प्रशासन में बांटा था | केन्द्रीय शासन-व्यवस्था के अंतर्गत आठ प्रधान अर्थात आठ प्रमुख मंत्रियों को नियुक्त किया गया था। जिसे शिवाजी की अष्ट प्रधान शासन व्यवस्था भी कहा जाता है |

10.9.1. अष्ट-प्रधान अथवा केन्द्रीय प्रशासन

शिवाजी की सहायता के लिए आठ बड़े अधिकारी या मंत्री थे। वे एक मंत्री-परिषद अथवा समिति की तरह से कार्य नहीं करते थे, प्रत्येक मंत्री अपने विभाग का प्रधान था और यह शिवाजी की इच्छा पर निर्भर करता था कि वह उनसे पृथक अथवा सम्मिलित रूप से सलाह लें। उनकी सलाह को मानने के लिए भी शिवाजी बाध्य न थे। ये आठ प्रधान शिवाजी के सचिवों की भांति कार्य करते थे। शिवाजी द्वारा दिये गये आदेशों का पालन करना और विस्तृत रूप से शासन की देखभाल करना उनका दायित्व था। ये आठ प्रधान निम्नलिखित थे-

10.9.1.1पेशवा या मुख्य प्रधान

यह मराठा राज्य में राजा के पश्चात्सर्वाधिक शक्तिशाली प्रशासक होता था और शासन व्यवस्था के सभी विभागों पर इसका नियंत्रण रहता था। राजा की अनुपस्थिति में उनके कार्यों की देखभाल करना, शासन में एकरूपता लाने के लिए शासन के अधिकारियों पर नियंत्रण रखना और प्रजा के हित के लिए प्रयत्न करना उसका मुख्य दायित्व था। राजा के सभी आदेश पत्रों पर राजा की मुहर के साथ पेशवा की भी मुहर लगायी जाती थी।

10.9.1.2 अमात्य या मजमुआदार

इसका कार्य राज्य की आय -व्यय की देखभाल करना तथा राजा को उससे अवगत कराना था |

10.9.1.3मंत्री या वाकिया नवीस

इसका कार्य राजा के दैनिक कार्यों को लेखबद्ध करना, राजा सेमिलने आने वालों की देखभाल करना और राजा के जीवन की सुरक्षा करना था |

10.9.1.4सचिव या शुरु-नवीस

इसका प्रमुख कार्य राजा के आदेश पत्रों को लिखना तथा उनका रख-रखाव करना, और परगनों की आय-व्यय की देखभाल करना था।

10.9.1.5 सुमन्त अथवा दबीर

यह राज्य का विदेश मंत्री था। इसका कार्य राजा को संधि अथवा युद्ध के बारे में समाचार प्राप्त करना, विदेशो में राजा के सम्मान की सुरक्षा, विदेशी राजदूतों की देखभाल और अपने राजदूतों को विदेशो में भेजना तथा उनके कार्यो की देखभाल करना था।

10.9.1.6सेनापति/सर-ए-नौबत

इसका कार्य सैनिकों की भर्ती, संगठन, शिक्षा, शस्त्रों और रशदकी व्यवस्था आदि करना था।

10.9.1.7पण्डितराव

राजा की ओर से दान -पुण्य के कार्यों का संचालन,धार्मिक कार्यों का सम्पादन, पाप के लिए दण्ड देना, धर्म और जाति के झगड़ों का निर्णय और प्रजा के नैतिक चरित्र को सुधारना इसका कार्य था।

10.9.1.8न्यायाधीश

सैनिक और असैनिक झगड़ों का हिन्दू कानून के आधार पर न्याय करना, भूमि संबंधी झगड़ों तथा गाँव के मुखिया के पद के झगड़ों का निर्णय करना इसका कार्य था।

सेनापति के अतिरिक्त ये सभी प्रधान ब्राहमण होते थे जिनमे पण्डितराव तथा न्यायाधीश के अतिरिक्त सभी को अवसरपड़ने पर सेनाओं का नेतृत्व करना पड़ता था।

इन आठ प्रधानों के अतिरिक्त राज्य के पत्र व्यवहार की देखभाल करने वाले **चिटनिस** और **मुंशी** भी महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। मुंशी फारसी भाषा में लिखता था। इस प्रकार शिवाजी ने केन्द्र के शासन की एक विस्तृत और सुनिश्चित योजना बनायी थी।

10.9.2 प्रांतीय शासन

शिवानी का सम्पूर्ण राज्य तीन प्रांतों- **उत्तरी प्रांत, दक्षिणी प्रांत और दक्षिण-पूर्वी प्रांत** में विभक्त था |प्रत्येक प्रांत में प्रांतपति नियुक्त थे | उत्तरी प्रांत में डांग, बगलाना, कोली प्रदेश, दक्षिणी सूरत, उत्तरी बम्बई का कोंकण प्रदेश और पूना की ओर का दक्षिणी पठारसम्मिलित थे। इस प्रांत का प्रांतपति**त्रिम्बक पिंगले** था। दक्षिणी प्रांत में दक्षिण बम्बई का कोंकण प्रदेश, सामन्तवाड़ी और उत्तरी कनारा का समुद्र- तट सम्मिलित था। इसका प्रांतपति**अन्नजी दत्तो** था |दक्षिण-पूर्वी प्रांत में सतारा और कोल्हापुर के जिले तथा कर्नाटक में तुंगभद्रा के पश्चिम में बेलगाँव, धारवार और कोसल के जिले थे | यह प्रांत **दत्तोजी पंत** के अधिकार में थे | प्रांतपतियों का कार्य अपने प्रांत में शासन व्यवस्था और शक्ति बनाये रखना होता था | राज्य की ओर से लगाये गये करों की वसूली करवाना और सीमांत दुर्गों की रक्षा एवं व्यवस्था करना आदि प्रान्तपतियों केप्रमुख दायित्व थे।

शिवाजी द्वारा अपने साम्राज्य का विभाजन प्रान्त, तरफ तथा मौजों में किया गया था। कुछ बड़े प्रांतों में सरसूबा नामक अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी परंतु छोटे प्रान्तों में मामलतदारों की नियुक्ति की जाती थी। तरफ के प्रशासन में मामलतदार एवं कामविसदार नामक अधिकारियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। ये अधिकारी कृषि एवं उद्योगों के विकास तथा सिंचाई के विकास से भी संबद्ध थे। किन्तु इन पर रोक और संतुलन स्थापित करने हेतु दो परंपरागत अधिकारी देशमुख तथा देशपाण्डे भी मौजूद थे। देशमुख तथा देशपाण्डे वंशानुगत अधिकारी थे। परन्तु क्षेत्रीय स्तर पर इनके प्रभाव और महत्व को देखते हुए शिवाजी के द्वारा इनकी विशेष भूमिका स्वीकार की गई होगी। उसी प्रकार प्रांतों में एक दरखदार नामक अधिकारी की भी नियुक्ति होती थी। वह विभिन्न विभागों पर निगरानी रखता था। प्रशासन की

सबसे छोटी इकाई गाँव या मौजा था। ग्राम प्रशासन से पटेल एवं कुलकर्णी नामक अधिकारी संबद्ध थे। पटेल गाँव का मुखिया होता था। कुलकर्णी अर्द्धसरकारी अधिकारी था।

10.9.3 सैन्य प्रशासन

शिवाजी ने एक स्थायी सेना स्थापित की। मुख्य सेना 'बार्गी' कहलाती थी और दूसरे प्रकार की सेना 'सिलहदार' कहलाती थी। सिलहदार सेना वह थी जिनकी स्वतंत्र रूप से नियुक्ति होती थी और जो विभिन्न सरदारों के अन्तर्गत थे। किन्तु जब वे राजकीय सेवा में लिए जाते थे तो उन्हें निश्चित कार्य के बदले भत्ता और मुआवजा दिया जाता था।शिवाजी की सेना के चार अंग थे, इनमें घुड़सवार सेना, पैदल सेना, हाथी सेना और तोपखाना था |

शिवाजी के अधीन घुड़सवार एवं पैदल सैनिक दोनों का विभाजन और संगठन बहुत ही उन्नत ढंग से किया गया था। शाही घुड़सवार एक प्रकार से सरकारी स्थायी सैनिक थे, जिन्हें पागा और बरगीर कहा जाता था | इन्हें सरकार की ओर से घोड़े एवं शस्त्र दिये जाते थे जबकि अस्थायी घुड़सवार सिलेदार कहलाते थे | इन्हें अपने घोड़ों और हथियारों की व्यवस्था स्वंय करनी होती थी| घुड़सवार सेना में सबसे छोटी इकाई 25 घुड़सवारों की थी जिसपर हवलदार नामक अधिकारी को नियुक्त किया जाता था। पाँच हवलदारों पर एक 'जुमालदार' होता था और 10 जुमालदार पर 'एक हजारी' होता था और सबके ऊपर सरनौवत होता था। उसी तरह पदाति सैनिकों में सबसे छोटी इकाई नौ सैनिकों की होती थी जो पैका कहलाती थी और उस पर एक नायक नामक अधिकारी नियुक्त होता था। पाँच नायकों पर एक हवलदार होता था और दो-तीन हवलदारों पर एक जुमालदार होता था और जुमालदार के ऊपर हजारी नामक अधिकारी होता था और पंच हजारी को सरनौबत कहा जाता था।

शिवाजी के 20 हजारनिजी अंगरक्षक थे, जिन्हें मावले सैनिक कहा जाता था | शिवाजी ने अपनी सेना में मुसलमान सैनिक भी रखे थे |बीजापुर की सेना से निकाले गये 700 पठान सैनिको को उन्होंने अपनी सेवा में अपने विभिन्न अधिकारियों की सलाह के विरुद्ध भी रख लिया था |शिवाजी की सेना अत्यन्त संगठित और नियमित थी। उनकी भर्ती, शिक्षा और नियन्त्रन का पूरा ध्यान रखा जाता था। सेना में भर्ती होने वाले व्यक्तियों को शिवाजी स्वयं भी देखते थे। प्रत्येक नये सैनिक को अपनी जमानत किसी एक अन्य सैनिक से दिलानी पड़ती थी। सैनिक और अधिकारियों को अधिकांशतया नकद वेतन दिया जाता था।

शिवाजी के राज्य में प्राय, 250 किले थे। जो उनकी सुरक्षा और आक्रमणकारी नीति के मुख्य आधार थे। शिवाजी ने किलों के प्रबंधन पर भी विशेष बल दिया। वह सुरक्षा की दृष्टि से एक अधिकारी के अंदर किला नहीं छोड़ता था। प्रत्येक किला तीन समान स्तरों के अधिकारियों के अन्तर्गत होता था, जो निम्नलिखित थे हवलदार, सरनौबत और सबनीश। तीनों एक-दूसरे पर रोक और संतुलन बनाये रखते थे। अतःकिले की रक्षा और प्रशासन तीनों का संयुक्त उत्तरदायित्व था |

शिवाजी ने नौ सेना का भी निर्माण किया था। कोकंण प्रदेश को जीतने के पश्चात जंजीरा के सीदियों के आक्रमणों से अपने समुद्र-तट की रक्षा के लिए उन्हें इसका निर्माण करना आवश्यक हो गया था।सभासद के अनुसार शिवाजी की नौ सेना में विभिन्न प्रकार के 400 जहाज थे |यह जल-बेडा दो भागों में विभक्त था - दरिया सारंग और माई नायक| इनमें से प्रत्येक एक भाग का प्रधान था। इसके अतिरिक्त शिवाजी ने एक बड़ी व्यापारिक नौसेना का भी निर्माण किया था | शिवाजी की नौ-सेना का मुख्य कार्य अपने समुद्र तट की रक्षा करना, अपने तट पर आये हुए जहाजों से व्यापारिक कर लेना और समुद्र - तर पर टूटे हुए हुए जहाजों के सामान को अपने अधिकार में करने तक सीमित था।

इस तरह हम देखते हैं कि एक विजेता और श्रेष्ठ सैनिक एवं योग्य कूटनीतिक के अतिरिक्त शिवाजी सिविल संस्थाओं का निर्माता भी था। अनवरत संघर्ष में रहने के बावजूद भी उसने मराठा प्रशासन का आधार तैयार किया जो व्यवहारिकता पर आधारित था। परंपरागत रूप में मराठा क्षेत्र में देशमुख और देशपाण्डे शक्तिशाली क्षेत्रीय शक्ति थे। शिवाजी ने दमन और वैवहिक संबंधों का सहारा लेकर 'देखमुखों' को पराभूत किया। किन्तु उनके परंपरागत आधार को समाप्त नहीं कर पाया। इन्हें सीमाओं के बीच शिवाजी ने एक मराठा राज्य का निर्माणकिया और वहाँ एक उन्नत प्रशासन देने की कोशिश की।

10.9.4 भूराजस्व सुधार एवं कर व्यवस्था

भूराजस्व सुधार में शिवाजी की विशेष भूमिका मानी जाती है। इसके माध्यम से उसने मराठा राज्य के आर्थिक एवं सामाजिक आधार को मजबूत करने की कोशिश की। इसने मलिक अम्बर की भू-पैमाईश पद्धति को अपनाया परंतु उसने इस पद्धति को और भी बेहतर बनाने की कोशिश की। भू-पैमाइश के लिए उसने जरीब के बदले काठी को अपनाया। 20 काठी का एक बीघा होता था तथा 120 बीघा का एक चावर। भूमि की पैमाईश करने के पश्चात् आरंभ में भूराजस्व की राशि कुल उत्पादन का 33 प्रतिशत निर्धारित की गई परंतु आगे इसे बढ़ाकर कुल उत्पादन का 40 प्रतिशत कर दिया गया जबकि अन्य प्रकार के करों को समाप्त कर दिया गया था। अब यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या शिवाजी द्वारा सभी प्रकार की जागीरों को समाप्त कर दिया गया? इस संदर्भ में दो भिन्न प्रकार के मतदेखने को मिलते हैं। अगर हम सभासद के विवरण को आधार बनाते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि शिवाजी ने सभी प्रकार की जागीर भूमि को समाप्त कर दिया तथा जागीरदारों को नियंत्रित किया परंतु आधुनिक शोधों के आधार पर यह स्थापित किया जाने लगा है कि सभी प्रकार की जागीर भूमि को समाप्त करना शिवाजी के लिए व्यवहारिक रूप में संभव नहीं रहा होगा तथा उसके सुधारों के बाद भी मोकासा या सरअंजामी भूमि का सीमित रूप में अस्तित्व बना ही रहा था। फिर भी शिवाजी का बल इस बात पर अवश्य रहा कि जागीर भूमि को समाप्त कर जमींदारों को नियंत्रित किया जाय यद्यपि इस उद्देश्य में वह पूरी तरह सफल नहीं रहा।

शिवाजी ने अपने राज्य को भूमिकर की वसूली के लिए तर्फ (मंडल) और कोजों (भूमण्डल) में विभक्त किया, तर्फ का प्रधान कारकून कहलाता था। गांवों के लिए पाटिल तथा नगरों से वसूली के लिए देशमुख और देशपांडे नामक

अधिकारी नियुक्त किये गए | शिवाजी ने कृषि योग्य भूमि की नपाई कराई तथा नपाई के लिए लकड़ी के मापक का प्रयोग किया गया जिसे काठी कहा जाता था । आरम्भ में शिवाजी ने किसानों से उनकी उपज का 33% भूमिकर के रूप में मांगा, परन्तु जब उन्होंने अन्य करों को समाप्त कर दिया तब किसानों से उपज का 40% भूमिकर के रूप में वसूल किया गया |

शिवाजी की स्वराज भूमि से प्राप्त यह आय मराठा राज्य के आर्थिक आवश्यकता हेतु पर्याप्त नहीं था। यही वजह है कि शिवाजी ने पूरक आय के रूप में चौथ एवं सरदेशमुखी जैसी पद्धति को अपनाया अर्थात् शिवाजी ने स्वराज क्षेत्र से बाहर दक्कन क्षेत्र में चौथ एवं सरदेशमुखी की माँग उठाई। चौध किसी क्षेत्र विशेष के राजस्व का 25 प्रतिशत होता था तो सरदेशमुखी कुल राजस्व का 10 प्रतिशत। वस्तुतः चौथ की पद्धति विकसित करने का श्रेय शिवाजी को नहीं दिया जा सकता क्योंकि शिवाजी से पूर्व भी गुजरात एवं महाराष्ट्र क्षेत्र में इसका प्रचलन था। वस्तुतः गुजरात में जमींदार बंठ अथवा वंठ के रूप में कुल राजस्व का 25 प्रतिशत ग्रहण करते थे। शिवाजी के पूर्व रामनगर के शासकने भी पुर्तगीजों से चौथ वसूल किया था। अब इस चौथ की प्रकृति एवं स्वरूप के संदर्भ में विवाद है क्योंकि एक दृष्टिकोण के अनुसार मराठे जिस क्षेत्र से चौथ प्राप्त करते थे उस क्षेत्र को सुरक्षा की गारंटी भी देते थे। इस संदर्भ में चौथ की तुलना वेलेजली की सहायक संधि से की गई परंतु सूक्ष्मतः अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि चौथ वसूली को भय दोहन की नीति के तहत ही देखा जाना चाहिए। अर्थात् चौथ देने वाले राज्य महज मराठे बारगीर के आक्रमण से बच पाते थे। चौथ से प्राप्त रकम का विभाजन विभिन्न मराठा सरदार, पेशवा एवं छत्रपति सभी के बीच होता था जबकि सरदेशमुखी पर केवल छत्रपति का ही दावा था। छत्रपति सभी देशमुखों के प्रधान के रूप में सरदेशमुखी का दावा करता था। एक दृष्टि से चौथ और सरदेशमुखी ने नवस्थापित मराठा राज्य को वैधता दिलाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई क्योंकि चौथ एवं सरदेशमुखी के दावे को स्वीकार करने का अर्थ था मराठा राज्य के अस्तित्व को मान्यता प्रदान करना परंतु चौथ तथा सरदेशमुखी से प्राप्त आय एक प्रकार की अनियमित आय थी। सबसे बढ़कर इसके कारण मराठा राज्य सदा युद्धरत राष्ट्र बना रहा।

10.9.5 धार्मिक नीति

शिवाजी एक सुसंस्कृत हिन्दू थे। हिन्दू धर्म की उदारता की भावना को उन्होंने ठीक प्रकार से समझा और अपने व्यवहार और नीति में उन्होंने उसका प्रयोग किया |गुरु रामदास उनके आध्यात्मिक और धार्मिक गुरु थे। शिवाजी पर गुरु रामदास का प्रभाव धर्म और सदाचार था और वे शिवाजी को प्रेरणा प्रदान करने वाली शक्ति थे।शिवाजी ने हिन्दुओं, ब्राह्मणों और गौरक्षा की दुहाई देते हुए भी अन्य धर्मो के प्रति पूर्ण सहिष्णुता का व्यवहार किया था। उन्होंने किसी भी धर्म के पैगम्बर या देवता का कभी भी अपमान नहीं किया ।इतिहासकार खाफ़ीखां ने भी, जो शिवाजी से सन्तुष्ट न था, उनकी धार्मिक नीति की प्रशंसा की है।

प्रशासनिक संगठन की सीमाऐं

1. शिवाजी तमाम कोशिशों के बावजूद अपने प्रशासन पर वंशानुगत तत्वों के प्रभाव को समाप्त नहीं कर सके। स्थानीय प्रशासन में हम देश जैसे अधिकारियों का विवरण पाते हैं। ये वंशानुगत अधिकारी थे।

2. शिवाजी जागीरदारी व्यवस्था (मोकासा अथवा सरअंजामी) को समाप्त नहीं कर सके। वस्तुतः शिवाजी की पद्धति में एक आंतरिक विरोधाभाष था। एक तरफ जहां वह जमींदारी अधिकारों को दबा रहे थे, वहीं दूसरी तरफ वह चौथ और सरदेशमुखी के माध्यम से जमींदारी अधिकारों का दावा कर रहे थे। शिवाजी मराठा प्रशासन को एक सशक्त आर्थिक आधार नहीं दे सके। चौथ और सरदेशमुखी की पद्धति महज एक तदर्थ प्रबंधन सिद्ध हुई।

10.10 सारांश

शिवाजी के व्यक्तित्व एवं कार्यों के विषय में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। कुछ इतिहासकार शिवाजी को आदर्श हिन्दू राज्य का निर्माता और हिन्दू धर्म और संस्कृति के रक्षक के रूप में चित्रित करते है। जबकि कुछ इतिहासकार शिवाजी को छल- कपट का प्रयोग करके अपने स्वार्थों को सिद्ध करने वाला और अवसरवादी बताते हैं|उक्त दोनो ही अभिमत अतिशयोक्तिपूर्ण हैं|यह सत्य है कि शिवाजी अत्यधिक साहसी और निडर व्यक्ति थे और उन्होंने उस समय की उन शक्तियों को चुन्नौती दी, जो उनसे कहीं अधिक शक्तिशाली थी, शिवाजी ने जिन परिस्थतियों में मराठों को एकत्र करके एक राज्य का निर्माण किया और जिस प्रकार से एक सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था को लागू किया। उसे देखकर कहा जा सकता है कि वह एक महान राज्य निर्माता ही नहीं, बल्कि एक महान शासक प्रबन्धक भी थे।

शिवाजी के शासन व्यवस्था की श्रेष्ठता इसी बात से सिद्ध होती है कि जब शिवाजी आगरा में औरंगजेब के द्वारा नजरबंद कर लिये गये थे उस समय में भी उनके राज्य में कोई अव्यवस्था नहीं हुई और सम्पूर्ण शासन उसी प्रकार चलता रहा जैसे कि उनकी उपस्थिति में चलता था| सर जदुनाथ सरकार ने शिवाजी को 'मध्ययुगीन राजतंत्र की अनोखी घटना' कहा है | अतः कहा जा सकता है कि शिवाजी एक महान राज्य-निर्मात ही नहीं बल्कि एक महान शासन-प्रबंधक भी थे।

विन्सेन्ट स्मिथ के अनुसार- "शिवाजी डाकू था और उसके द्वारा स्थापित किया हुआ राज्य डाकू राज्य था।"

महाजन के अनुसार- "शिवाजी केवल मराठा जाति के ही निर्माणकर्ता न थे, अपितु वेमध्यकालीन भारतवर्ष के निर्माणकर्ता थे।"

अन्त में हम सर यदुनाथ सरकार के शब्दों में कह सकते हैं, "शिवाजी ने हिन्दुओं को अधिक-से-अधिक उन्नति करने की शिक्षा दी थी। उन्होंने बताया कि हिन्दुत्व का वृक्ष वास्तव में मरा नहीं है किन्तु यह सदियों की राजनीतिक पराधीनता के कारण मरा-सा दिखायी देता है। यह फिर बढ़ सकता है और इसमें नई-नई पत्तियाँ और शाखाएँ आ सकती है। यह अपना सिर आकाश तक फिर उठा सकता है

10.11 तकनीकी शब्दावली

सरदेशमुखी –निर्धारित आय का दशांश

चौथ –भू- राजस्व का चौथाई हिस्सा, जो मूलतः गुजरात में जमींदारों द्वारा लिया जाता था लेकिन जिसकी मांग शिवाजी ने जमींदारी अधिकार के रूप में की |

वतन– मौरूसी जमीन या क्षेत्र

10.12 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1.पूरक आय के रूप में चौथ एवं सरदेशमुखी जैसी पद्धति को किस मध्यकालीन शासक द्वारा अपनाया गया था -

(अ). अकबर (ब). शेरशाह शूरी

(स). फिरोज शाह तुगलग (द). शिवाजी

2. पेशवा के पद को किस शासक द्वारा अपने प्रशासन में सम्मिलित किया गया था -

(अ). शिवाजी (ब). संभाजी

(स). अकबर (द). औरंगजेब

3. शिवाजी एवं मुगलों के मध्य पुरन्दर की सन्धि किस वर्ष हुई -

(अ). सन 1661 ईस्वी (ब).1665 ईस्वी

(स). 1670 ईस्वी (द). 1668 ईस्वी

10.13 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.(द), **2.** (अ), **3.** (ब)

10.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, हरिश्चंद्र., मध्यकालीन भारत, भाग-2, 1993, 28 वां पुनर्मुद्रण – 2017, नई दिल्ली.

2. चन्द्र, सतीश., मध्यकालीन भारत सल्तनत से मुग़ल काल तक (दिल्ली सल्तनत 1526-1761).

3. हबीब, इरफ़ान., मध्यकालीन भारत, भाग 1-12, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.

4. लूनिया, बी. एन., मराठा प्रभुत्व (भाग 1- 3).

5. रानाडे, महादेव गोविंद., **राइज ऑफ दि मराठा पॉवर, महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित, 2012.**

6. https://www.egyankosh.ac.in/handle/123456789/21798

7. gordan, Stewart., The Marathas 1600- 1818, CUP, 1992.

8. André Wink. Land and Sovereignty in India: Agrarian Society and Politics under the Eighteenth-Century Maratha Svarajya. Cambridge, 1986.

9. Sarkar, J.N., Shivaji and His Times, Calcutta, 1961.

10.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. शिवाजी की विजयों एवं सफलता के कारणों की समीक्षा कीजिए |

2. शिवाजी के प्रशासन की विशेषताओं का मूल्यांकन कीजिए |

इकाई ग्यारह- मराठों के उत्थान के कारण तथा पेशवाओं के अंतर्गत मराठा प्रशासन

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 मराठों के उत्थान के कारण

11.3.1 भौगोलिक कारक

11.3.2 महाराष्ट्र में धार्मिक एवं सामाजिक चेतना का प्रसार

11.3.3 मुग़ल एवं दक्षिणी राज्यों के बीचसंघर्ष

11.3.4 शिवाजी का चमत्कारी व्यक्तित्व

11.4 पेशवाओं के अंतर्गत मराठा प्रशासन

11.4.1 पेशवा

11.4.2 केन्द्रीय प्रशासन

11.4.3 प्रान्तीय तथा ज़िला प्रशासन

11.4.4 स्थानीय अथवा ग्राम प्रशासन

11.4.5 नगर प्रशासन

11.4.6 न्याय व्यवस्था

11.4.7 पुलिस प्रशासन

11.4.8 कर व्यवस्था

11.4.9 राज्य की आय के अन्य स्त्रोत

11.4.10 सैन्य व्यवस्था

11.4.10.1 घुड़सवार

11.4.10.2 पदाति

11.4.10.3 तोपखाना

11.4.10.4 नौसेना

11.4.10.5 विदेशियों की नियुक्तियां

11.5 पेशवाओं के अधीन मराठा प्रशासन में परिवर्तन

11.6 सारांश

11.7 तकनीकी शब्दावली

11.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न

11.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

1689 में शिवाजी के पुत्र और उत्तराधिकारी शम्भूजी को मुग़ल सेनाओं ने हरा कर मार दिया और उनके पुत्र शाहू को बन्दी बना लिया तो यह औरंगज़ेब की विशेष सफलता थी। मराठा हार तो गए परन्तु निर्जीव नहीं हुए। समस्त मराठा जनता मुग़लों के विरुद्ध युद्ध में जुट गई और यह सर्वसाधारण का युद्ध बन गया। शिवाजी का छोटा पुत्र राजाराम यह युद्ध अपनी मृत्युपर्यन्त (1700 तक) लड़ता रहा और उसके पश्चात् उसकी विधवा ताराबाई नेअपने अल्पवयस्क पुत्र शिवाजी द्वितीय के अभिभावक होने के नाते, यह युद्ध जारी रखा और औरंगज़ेब का कड़ा विरोध किया। 1707 के पश्चात् मुग़ल राज्य की शिथिलताओं ने मराठों को अवसर दिया। शाहू पुनः महाराष्ट्र में लौट आया। मराठों में नई स्फूर्ति आ गई। 18वीं शताब्दी के प्रथम चरण में मराठों का दक्षिण और उत्तर की ओर दोनों दिशाओं में प्रसार हुआ। इस नवीन मराठा साम्राज्यवाद के प्रवर्तक पेशवा लोग थे जो छत्रपति शाहू के पैतृक प्रधान मन्त्री थे। पेशवाओं के अधीन मराठा शक्ति का यह एक सर्वोच्च शक्तिशाली दौर था जब अटक के लेकर कटक तक मराठा साम्राज्य फैला हुआ था | इस मराठा शक्ति को आघात पंहुचा सन 1761 ईस्वी में हुए पानीपत के तृतीय युद्ध में जब अहमद शाह अब्दाली के विरुद्ध मराठाओं को हार का सामना करना पड़ा लेकिन मराठा शक्ति आगे भी निरंतर अपने समय की सबसे शक्तिशाली शक्ति के रूप में उपस्थित रही जिससे यूरोपीय शक्तियां उलझने से भी डरती थी |

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद

1. पेशवाओं के अधीन मराठा शक्ति के उत्थान के कारणों के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाएंगे |
2. पेशवाओं के अधीन मराठा प्रशासन के स्वरुप को जान पाएंगे |

11.3 मराठों के उत्थान के कारण

राजपूतों के उद्भव की ही तरह मराठों का उद्भव भी एक मध्ययुगीन सच्चाई है। राजपूतों की तरह मराठे भी भूमि से संबद्ध रहे थे तथा उन्होंने जमींदारों की भी भूमिका निभाई थी। यद्यपि दोनों की उपलब्धियों में महत्वपूर्ण अन्तर है। वह यह कि राजपूतों के द्वारा आरम्भ में ही कुछ राज्यों की स्थापना की गई परन्तु मराठों के अन्तर्गत राज्य निर्माण बहुत आगे चलकर ही संभव हुआ।

एक शक्ति के रूप में मराठों का उद्भव की व्याख्या मध्यकालीन इतिहासलेखन की प्रमुख समस्या रही है। आरंभ में ग्रान्ट डफ जैसे ब्रिटिश इतिहासकारों ने मराठों के उद्भव को सहयाद्री के जंगलों में होने वाले विद्रोही गतिविधियों का परिणाम करार दिया था। वहीं मराठों के उद्भव की आधुनिक व्याख्या आंद्रेवीक के द्वारा की गयी है। आंद्रेवीक ने मराठों के उद्भव की व्याख्या फितना के संदर्भ में की है। इसके अनुसार मराठों का उद्भव एक सुनिर्दिष्ट एवं सकारात्मक प्रक्रिया थी। उसने उसे षड्यंत्रों एवं प्रतिषडयंत्रों का भी परिणाम माना। परंतु आंद्रेवीक की इस मत को गंभीर चुनौती मिली है। इन दो भिन्न प्रकार के मतों के बीच अनेक विद्वान एवं इतिहासकारों के मत आते हैं। इन्होंने मराठों के उद्भव की व्याख्याअपने-अपने ढंग से की है। इस संदर्भ में परंपरागत मत मराठों के उद्भव में विदेशी शक्ति के विरूद्ध एक राष्ट्रीय प्रतिक्रिया तथा धार्मिक कट्टरता के विरूद्ध हिन्दू प्रतिक्रिया का नाम देता है। वहीं कुछ अन्य विद्वान उसकी व्याख्या मुगल जागीरदारों एवं मनसबदारों के विरूद्ध कृषक असंतोष के रूप में व्यक्त करते हैं। परंतु सूक्ष्म अवलोकन के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि मराठों का उद्भव तथा शिवाजी द्वारा मराठा राज्य की स्थापना एक जटिल प्रक्रिया का परिणाम था। अतः इसके लिए एक से अधिक कारक उत्तरदायी थे।

11.3.1 भौगोलिक कारक

महादेव गोविंद रानाडे ने अपनी प्रसिद्ध कृक्ति **'राइज ऑफ दि मराठा पॉवर'** में इस भौगोलिक स्थिति को दर्शाया है:यथा मराठों के उद्भव में मराठावाड़ा क्षेत्र की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति की महत्वपूर्ण भूमिका रही। मराठवाड़ा क्षेत्र उत्तर से दक्षिण एवं पूर्व से पश्चिम के बीच कई पहाड़ियों से घिरा था। यथा सहयाद्री पर्वत श्रृंखला, विंध्य क्षेत्र एवं सतपुरा की पहाड़ी। अतः सामरिक दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यधिक सुरक्षित था। इस क्षेत्र में किसी भी संगठित सेना का जाना कठिन एवं दुष्कर था। दूसरे इस क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों में एक स्वायत्तता की भावना विकसित हो गई थी। इसके अतिरिक्त चूँकि यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक पिछड़ा था तथा यहाँ जीवन यापन अत्यधिक कठिन था, इसलिए इस क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों में अतिरिक्त उद्यमशीलता एवं साहस का विकास हो गया। इस प्रकार मराठों के उद्भव में भौगोलिक कारक निश्चय ही एक महत्वपूर्ण कारक रहा था।

11.3.2 महाराष्ट्र में धार्मिक एवं सामाजिक चेतना का प्रसार

मराठा शक्ति के उद्भव में महाराष्ट्र धर्म की भी अपनी भूमिका रही। जैसा कि हम जानते हैं कि महाराष्ट्र संतों में ज्ञानदेव, नामदेव. तुकाराम, एकनाथ, रामदास समर्थ प्रमुख है। इन संतों ने कठोर जाति व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठाई। यद्यपि वे जाति व्यवस्था को समाप्त नहीं कर सके परंतु फिर भी उन्होंने जाति बंधन को शिथिल करने में अवश्य ही सफलता पाई। इसके फलस्वरूप महाराष्ट्र क्षेत्र में व्यक्ति एवं समूह दोनो के लिए जाति सोपान में ऊँचा उठना बहुत ही आसान एवं स्वभाविक हो गया। इसके फलस्वरूप मराठवाड़ा क्षेत्र में एक व्यापक सामाजिक उर्जा उत्पन्न हुई और निश्चय ही इस उर्जा का उपयोग मराठा राज्य के निर्माण के लिए संभव हुआ। शिवाजी ने इस स्थिति से लाभ उठाया तथा उसने मावले, कुन्बी तथा अन्य छोटे जातियों के लोगों को संगठित किया तथा उन्हें मराठी पहचान से जोड़ दिया। महाराष्ट्र

धर्म को राजनीतिक दिशा में उन्मुख करने का श्रेय शिवाजी के गुरू रामदास समर्थ को है। रामदास समर्थ ने धरकरी संप्रदाय की स्थापना की थी एवं राजनीतिक एवं आध्यात्मिक बातों की एकता पर बल दिया।

11.3.3 मुग़ल एवं दक्षिणी राज्यों के बीचसंघर्ष

इन बातों के अतिरिक्त मुगल एवं दक्षिणी राज्यों के बीच होने वाले निरंतर संघर्ष ने भी मराठों के उद्भव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यथा मराठा जमींदार देशमुख, देशपांडे एवं कुलकर्णी के रूप में मराठवाड़ा क्षेत्र में बसे हुए थे। आरंभ में बहमनी राज्य द्वारा इन्हे अपनी सेवा में लिया गया था फिर उत्तराधिकारी राज्यों ने भी इन्हें अपनी सेवा में ले लिया। फिर मुगल दबाव के परिणामस्वरूप दक्षिण राज्यों ने अधिक से अधिक मराठा सरदारों को अपनी सेवा में शामिल किया। दूसरी तरफ स्वयं मुगल भी दक्षिणी राज्यों के संघर्ष के विरूद्ध मराठा सरदारों का सहयोग चाह रहे थे। इसी स्थिति का लाभ आगे शाहजी तथा शिवाजी जैसे महत्वाकांक्षी सरदारों ने उठाया।

11.3.4 शिवाजी का चमत्कारी व्यक्तित्व

फिर मराठों के उद्भव में शिवाजी के चमत्कारी व्यक्तित्व एवं सामाजिक नीति की भी निर्णायक भूमिका रही। प्रथम मुगल तथा दक्षिणी राज्यों के बीच होने वाले संघर्ष में अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया। उसने यथाशक्ति अवसरवादी नीति का अनुगमन करते हुए अपनी कूटनीतिक चतुरता प्रदर्शित की। उसकी सैन्य नीति बहुत व्यवहारिक रही। अपने प्रतिपक्षी के विरूद्ध उसने गुरिल्ला पद्धति का भी सहारा लिया। सबसे बढ़कर शिवाजी की नीति का सामाजिक पक्ष बहुत ही व्यवहारिक सिद्ध हुआ। शिवाजी के द्वारा मराठा राज्य के निर्माण में सबसे बड़ी बाधा थी बड़े देशमुख। ये देशमुख बीजापुरी शासन के अंतर्गत अत्यधिक स्वायत्तता का उपभोग कर चुके थे। अतः वे अपनी शक्ति में किसी प्रकार की कटौती हेतु तैयार नहीं थे। शिवाजी ने उन बड़े देशमुखों की शक्ति को तोड़ने हेतु छोटे देशमुखों का सहयोग लिया। फिर उसने बड़े देशमुखों के प्रति भी दोहरी नीति अपनायी। एक तरफ उसने उनके किलों को भंग किया तथा उनकी सैन्य शक्ति में कटौती की वहीं दूसरी तरफ उसने कुछ महत्वपूर्ण देशमुख परिवारों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया। इस प्रकार दोहरी नीति का अनुगमन कर शिवाजी द्वारा एक स्वतंत्र मराठा राज्य की स्थापना की गई।

11.4 पेशवाओं के अंतर्गत मराठा प्रशासन

18वीं तथा 19वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में मराठा प्रशासन हिन्दू तथा मुस्लिम संस्थाओं का उत्तम सम्मिश्रण था। मराठा राज्य उस समय अस्तित्व में आया जब हिन्दू तथा मुस्लिम सरकार तथा वित्तीय सिद्धान्त कई शताब्दियों से एक-दूसरे को प्रभावित कर चुके थे। मराठा प्रशासन के मूल तत्व हिन्दू थे जिसमें कई मुस्लिम विशेषताएं प्रवेश कर चुकी थीं। यह सत्य है कि पेशवाओं ने समय के अनुसार उनमें कई परिवर्तन किए थे। मुग़ल सम्राट की स्थिति के स्थान पर मराठा प्रशासन में एक स्पष्ट परिवर्तन था। शिवाजी के अधीन मराठा संविधान में मुग़ल सम्राट के लिए कोई स्थान नहीं था। परन्तु शाहू के काल में मुग़ल सम्राट की सर्वोच्चता स्वीकार कर ली गई थी। 1719 की सन्धि के अनुसार शाहू

ने 10,000 का मनसब फर्रुखसीयर से स्वीकार किया तथा 10 लाख रुपया वार्षिक उसे ख़िराज देना स्वीकार किया। शाहू की सम्राट के प्रति निष्ठा इस बात से भी प्रमाणित होती है कि उसने पूने में उत्तर की ओर दिल्ली द्वार बनवाया। शाहू का कथन था कि वह सम्राट के अपमान तथा अवज्ञा का द्योतक है। इसी प्रकार महादजी सिन्धिया ने मुग़ल सम्राट से शाहू का वकील-ए-मुतलिक की पदवी दिलवाई तथा नाना फड़नवीस भी सम्राट को पृथ्वीसिंह की संज्ञा देते थे।

मराठा साम्राज्य का मुखिया शिवाजी का वंशज, छत्रपति था जो सतारा का राजा था। वहीं सभी नियुक्तियां करता था। परन्तु राजा की शक्तियां तथा प्रतिष्ठा कम हो गई थी, विशेषकर जब से पेशवा का पद बालाजी विश्वनाथ के वंश में वंशानुगत बन गया था। शाहू जब तक जीवित रहा राज्य तथा शासन दोनों करता रहा। शाहू का पुत्र केवल नाम मात्र का राजा रह गया। 1750 की संगोला की सन्धि से पेशवा ही राज्य का वास्तविक मुखिया बन गया तथा राजा केवल महलों का महापौर। परन्तु राजा की तथाकथित सत्ता राज्य के अन्त तक बनी रही। राजा की सत्ता का अपहरण चुपचाप तथा धीरे-धीरे हुआ। स्कॉटवारिंग का इस सम्बन्ध में कहना है कि "पेशवा द्वारा शक्ति अपहरण से न किसी को आश्चर्य हुआ न किसी ने इसकी ओर विशेष ध्यान दिया। वास्तव में यह संक्रमण, सरल, प्राकृतिक तथा क्रमिक था।" राजा की शक्ति का अपहरण शाहू के उत्तराधिकारियों के काल में इतना पूर्ण हो गया कि राजा के निजी व्यय पर पेशवा का सचिवालय कड़ी निगरानी रखता था। उसे अपने भृत्यों की नियुक्ति करने अथवा हटाने का अधिकार नहीं था तथा भृत्य पूने से भेजे जाते थे। राजा के आदेश प्रायः पेशवा रद्द कर देता था और उसे विशेष मदों के लिए अनुदान मांगना पड़ता था।

11.4.1 पेशवा

आरम्भ में पेशवा शिवाजी की अष्टप्रधान समिति का सदस्य होता था अर्थात् आठ मन्त्रियों में से एक। बालाजी विश्वनाथ सातवें पेशवा थे। परन्तु उन्होंने अपनी योग्यता तथा राजमर्मज्ञता से इस पद को वंशानुगत बनाया। उनके पुत्र ने इस पद को मराठा प्रशासन में सर्वोच्च बना दिया। प्रतिनिधि, जो मुख्य सरदारों की परिषद थी, के विरोध करने पर भी शाहू ने बाजीराव की उत्तर में प्रसार की नीति को स्वीकार किया तथा इससे यह क्रिया अधिक तीव्र हो गई। जैसे ही पेशवा को उत्तर में अधिकाधिक सफलताएं मिलती चली गईं, वैसे ही उसकी स्थिति और भी अधिक दृढ़ होती चली गई। पुर्तगाली बस्तियों के गवर्नर-जनरल मार्विवस ऑफ अलोरना ने राजा की शक्तियों के संदर्भ में लिखा है कि, 'राजा केवल एक छाया मात्र बन कर रह गया था जिसकी पूजा तो अवश्य होती थी परन्तु आज्ञा कोई नहीं मानता था।'

प्राचीन अभिजात वंश जैसे, अंग्रिया, भोंसले, गायकवाड़, पेशवा को अपने समान मानते थे तथा उसकी आज्ञा केवल इसलिए मानते थे क्योंकि वह राजा का नायब था। उदाहरण के रूप में अंग्रिया आशा करते थे कि उनके पूना आने पर पेशवा नगर से दो मील बाहर आकर उन्हें लेनें आएं तथा उनके आने पर घोड़े से उतर कर गशा, जो एक कढ़ाई किया हुआ कपड़ा होता था, पर खड़े होकर उनकी अगवानी करें। परन्तु नवीन अभिजात वंश, सिंधिया, होल्कर, रस्तिया लोग जिन्हें पेशवा ने ही महत्ता प्रदान की थी, उन्हें अपना स्वामी तथा अपनें बच्चों का अन्नदाता मानते थे। इस प्रकार

पेशवा के उत्थान ने सरदारों के बीच समानता की भावना समाप्त कर दी तथा भोंसले तथा अंग्रिया के लिए भी एक बुरा उदाहरण बना दिया था। डाक्टर एस. एन. सेन मराठा साम्राज्य की तुलना रोमन साम्राज्य से करते हुए लिखते हैं कि "इसके फलस्वरूप मराठा साम्राज्य पवित्र रोमन साम्राज्य की भांति बन गया अर्थात् महत्वाकांक्षी सरदारों का एक ढीला संगठन तथा पेशवा रोमन सम्राट की नाईं इस गठन का नेता मात्र रह गया | उसका प्रभुत्व केवल उन्हीं क्षेत्रों में रह गया जो सीधे उसके नियन्त्रण में थे।"

11.4.2 केन्द्रीय प्रशासन

पूना में पेशवा का सचिवालय, जिसे हजूर दफ़्तर कहते थे, मराठा प्रशासन का केन्द्र था। यह एक विशाल संस्था बन गया था जिसमें अनेक विभाग तथा कार्यालय थे। जे. मैक्लाउड नेइस सचिवालय के कार्य को निम्न शब्दों में वर्णित किया है, "जिलों की आय तथा व्यय का ब्योरा जो सरकार को ज़िलों के वंशानुगत अधिकारी भेजते थे, गांव के अधिकारियों द्वारा भेजा गया विवरण, लोक राजस्व की छूट, चाहे वह सरिंजाम, इनाम अथवा कुछ अन्य हो, सरकार तथा ग्राम के अधिकारियों के वेतन तथा भत्ते, सैनिकों की संख्या तथा वेतन, असैनिक, सैनिक तथा धार्मिक व्यय सभी का लेखा-जोखा यहां रहता था। रोज़ किरद (दैनिक रजिस्टर), सभी करों के लेन-देन के रजिस्टर, जिन में सभी अनुदानों तथा भुगतानों का ब्योरा होता था, यहीं रखे जाते थे। इन सभी पर विचार कर एक व्यापक दृश्य तरजुमा में प्रस्तुत किए जाते थे।" सबसे महत्वपूर्ण विभाग एलबेरीज़ दफ़्तर तथा चातले दफ़्तर होते थे। इनमें से प्रथम सभी प्रकार के लेखों से सम्बन्ध रखता था तथा पूना में स्थित था। यह शेष सभी विभागों का वर्गीकृत ब्योरा रखता था तरजुमा प्रस्तुत करता था जो राज्य की वार्षिक आय की कुल प्राप्ति, व्यय तथा बचत का ब्योरा होता था तथा एक ऐसी खतौनी तैयार करता था जो कि व्यय का अनुवर्णिक क्रम सारणीरूप से वर्णित सारांश होता था। चातले दफ़्तर सीधा फड़नवीस के अधीन होता था। नाना फड़नवीस ने हजूर दफ्तर की कार्य प्रणाली में बहुत से सुधार किए परन्तु पेशवा बाजीराव द्वितीय के काल में यह सभी अस्त-व्यस्त हो गया।

11.4.3 प्रान्तीय तथा ज़िला प्रशासन

पेशवाओं के अधीन, तरफ, परगना, सरकार तथा सूबा आदि शब्दों का अविवेक रूप से प्रयोग किया जाता था। प्रायः सूबे को प्रांत कहते थे तथा तरफ़ अथवा परगने को महल भी कहते थे। खानदेश, गुजरात तथा कर्नाटक जैसे बड़े-बड़े प्रान्त सर सूबेदारों के अधीन होते थे। कर्नाटक का सर सूबेदार अपने मामलतदार स्वयं नियुक्त करता था। परन्तु खानदेश के सर सूबेदार को केवल अधीक्षण का ही अधिकार थातथा उसके अधीनस्थ मामलतदार सीधे केन्द्रीय दफ़्तर को अपना ब्यौरा देते थे।

सर सूबेदार के अधीन एक मामलतदार होता था जिस पर मण्डल, ज़िले, सरकार, सूबा इत्यादि का कार्यभार होता था। मामलतदार तथा कामविसदार दोनों ही ज़िले में पेशवा के प्रतिनिधि होते थे। वे सभी प्रकार के कार्यों की देख-भाल करते थे जैसा कि खेती अथवा उद्योग का विकास, दीवानी तथा फौजदारी न्याय, स्थानीय हिबन्दी (नागरिक सेना),

पुलिस तथा सामाजिक और धार्मिक झगड़ों में विवेचना इत्यादि। ग्रामों में कर निर्धारण मामलतदार स्थानीय पटेलों के परामर्श से करता था, यदि आवश्यक हो तो मामलतदार कर वसूली के लिए हिबन्दीसैनिकों का प्रबन्ध भी करता था। मामलतदार तथा कामविसदार के वेतन तथा भत्ते भिन्न-भिन्न जिलों की महत्ता के अनुसार होते थे। शिवाजी के काल में ये अधिकार हस्तान्तरणीय होते थे परन्तु पेशवाओं के अधीन ये प्रायः वंशानुगत हो गए, जिससे रिश्वत तथा भ्रष्टाचार फैल गया।

देशमुख तथा देशपाण्डे अन्य ज़िला अधिकारी थे जो मामलतदार पर एक नियन्त्रण के रूप में कार्य करते थे। उनकी पुष्टि के बिना कोई लेखा स्वीकार नहीं किया जाता था, इसके अतिरिक्त दरख़दार जो एक वंशानुगत तथा मामलतदार से स्वतन्त्र अधिकारी था, इन पर नियन्त्रण के रूप में कार्य करता था। इसी प्रकार प्रत्येक ज़िले में कारकुन भी होता था जो विशेष घटनाओं की सूचना सीधे केन्द्र को देता था।

इससे छोटे प्रशासकीय भागों, महल अथवा तरफ का प्रशासन भी जिलों की भांति ही था। महल में मुख्य कार्यकर्त्ता हवलदार होता था तथा मजूमदार और फड़नवीस उसकी सहायता करते थे।

11.4.4 स्थानीय अथवा ग्राम शासन

ग्राम समुदाय, स्थानीय प्रशासन की इकाई के रूप में कार्य करते थे। यह स्वतः पूर्ण तथा आत्मनिर्भर ग्राम समुदाय सरकारी अधिकारियों के निरीक्षण में पूर्णतया स्वायत्तता भोगते थे। मुख्य ग्राम अधिकारी पटेल होता था जो कर सम्बन्धी, न्यायिक तथा अन्य प्रशासनिक कार्य करता था। वह ग्राम तथा पेशवा के अधिकारियों के बीच एक कड़ी था। पटेल का पद वंशानुगत था तथा इसका क्रय-विक्रय किया जा सकता था। इसका आंशिक हस्तान्तरण भी हो सकता था। उस अवस्था में एक ग्राम में एक से अधिक पटेल भी हो सकते थे। पटेल को सरकार से वेतन नहीं मिलता था। वह एकत्रित कर का एक छोटा सा भाग अपने लिए रख लेता था। वह ग्राम समाज का नेता भी होता था तथा उसके अपने ग्राम के प्रति कुछ उत्तरदायित्व भी होते थे।

पटेल को भूमि कर राज्य को देना होता था तथा न देने की अवस्था में उसे जेल में भी डाल दिया जाता था। राजनैतिक गड़बड़ी के समय ये अपने ग्राम की नेक चलनी की ज़मानत भी देते थे। उसके नीचे कुलकर्णी होता था जो ग्राम की भूमि का लेखा रखता था। पटेल की भांति कुलकर्णी को भी ग्रामवासी कुछ अनुलाभ (perquisites) देते थे। कुलकर्णी के नीचे चौगुले होता था जो पटेल की सहायता करता था तथा कुलकर्णी के लेखे की देखभाल करता था। इसके अतिरिक्त ग्रामों में बारह बलूटे अथवा शिल्पी होते थे जो ग्राम की भिन्न सेवाएं करते थे जिनके बदले उन्हें अन्न मिलता था। कुछ ग्रामों में बारह बलूटों के अतिरिक्त बारह अलूटे होते थे जो सेवक के रूप में काम करते थे।

11.4.5 नगर प्रशासन

मराठों का नागरिक प्रशासन मौर्य प्रशासन से मिलता-जुलता था। कोतवाल, मौर्य नांगरक के बराबर होता था। वह नगर का मुख्य शासक होता था। उसका कर्त्तव्य महत्वपूर्ण झगड़ों को निबटाना, मूल्यों को नियमित करना, नगर में आने-

जाने वालों का ब्यौरा रखना, राजपथों, मकानों तथा गलियों के झगड़ों आदि को निबटाना तथा सरकार को इन कार्यों का मासिक ब्योरा भेजना होता था। सब से महत्वपूर्ण यह था कि कोतवाल नगर का मुख्य दण्डाधिकारी तथा पुलिस का मुखिया होता था।

11.4.6 न्याय प्रणाली

प्राचीन हिन्दू स्मृतिकारों का सब से अधिक प्रभाव मराठा न्याय प्रणाली में देखने को मिलता है। मराठा कानून, प्राचीन संस्कृत स्मृति ग्रंथों, दायभाग तथा मनुस्मृति आदि पर आधारित थे।न्याय के लिए ग्राम में पटेल, ज़िले में मामलतदार, सूबे में सर सूबेदार तथा अन्त में सतारा का राजा होता था। नगरों में न्यायाधीश होते थे जो कि शास्त्रों में पारंगत होते थे तथा केवल न्याय कार्य ही करते थे। इस प्रकार मराठे न्याय तथा कार्यपालिका के पार्थक्य से अनभिज्ञ नहीं थे।

न्याय का प्रशासन साधारण तथा समय की आवश्यकता के अनुसार था। मुकदमों की कार्यविधि निश्चित नहीं थी तथा न ही कानून संहिताबद्ध था। आपस में मित्रतापूर्ण समझौता करने का प्रयत्न किया जाता था । छत्रपति तथा पेशवा आधुनिक न्यायाधीशों के स्थान पर प्राचीन कुलपिता की भूमिका निभाते थे।दीवानी मुकदमों का फैसला पंचायतें करती थीं। उन्हें प्रायः पंचपरमेश्वर कहते थे। पंचों को 'मां- बाप' के शब्द से सम्बोधित करते थे, पंचायत की आज्ञा दोनों पक्षों को स्वीकार करनी पड़ती थी। पंचायत से अपील मामलतदार के यहां होती थी। जब तक यह न सिद्ध हो जाए कि पंचायत ने बेईमानी की है वह प्रायः पंचायत के फैसले की पुष्टि कर देता था। इस अवस्था में पंचायत के निर्णय को पेशवा पुनः सुन सकता था।

फौजदारी मामलों में अधिकारी दीवानी वाले ही होते थे। प्रायः दोषी व्यक्ति को कोड़े लगाए जाते थे तथा देशद्रोह के मामलों में यातनाएं दी जाती थीं। डकैती, वध, देशद्रोह इत्यादि में जेल अथवा सम्पत्ति ज़ब्त करने की सज़ा भी दी जाती थी। न्याय का उद्देश्य सुधार था न कि अपराधी को निराश बनाना।

11.4.7 पुलिसप्रशासन

पुलिस के प्रबन्ध सन्तोषजनक थे। पूना की महानगरीय पुलिस ईमानदार तथा कार्यकुशल थी। उन्होंने एल्फिन्सटन तथा टोन जैसे यूरोपीय लेखकों से प्रशंसा प्राप्त की है। एल्फिन्सटन के अनुसार इस कार्य पर 9,000 रुपये वार्षिक व्यय किया जाता था। इसमें अनेक चपरासी, घुड़सवार, गश्ती टुकड़ियां तथा रामोशी थे। टोन ने भी इसकी प्रशंसा की है। वह लिखता है, "रात में 10 बजे तोप दागने के पश्चात मार्गों पर चलने वाले व्यक्ति पुलिस के हाथों नहीं बचते थे तथा प्रातः काल जब तक कोतवाल महोदय उन्हें न छोड़ दें वे जेल में बन्द रहते थे। यह अनुशासन इतना कठोर था कि पेशवा को भी इसी नियन्त्रण में रहना पड़ता था।"

11.4.8 कर व्यवस्था

शिवाजी के द्वारा भू-राजस्व सुधार के लिए कदम उठाए गए। उसने भूमि की पैमाइश कराई तथा जागीरदारी व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास किया। किन्तु अपने उद्देश्य में वह पूरी तरह सफल नहीं हो सका। क्योंकि प्रथम-मराठवाड़ा

क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से विकसित नहीं था और दूसरे-वह जागीरदारी व्यवस्था को समाप्त नहीं कर सका। इन दो कारणों से भू-राजस्व व्यवस्था में सुधार के बावजूद भी शिवाजी अपेक्षित संसाधन नहीं जुटा पाया।

अतः अतिरिक्त आय की जरूरत को पूरा करने के लिए उसने चौथ और सरदेशमुखी की पद्धति पर बल दिया। चौथ और सरदेशमुखी जमींदारी अधिकार थे तथा ये कुल राजस्व का क्रमशः 25% एवं 10% होते थे। किन्तु इनकी वसूली एक कठिन और कष्टसाध्य प्रक्रिया थी। इस वसूली को बनाए रखने के लिए एक बड़ी और संगठित सेना की जरूरत थी। इसे नियमित आय का साधन बनाना मुश्किल था। मराठा राज्य आरंभ से ही इस विरोधाभास का सामना करता रहा।

पेशवाओं के अधीन यह विरोधाभास अत्यधिक तीव्र रहा । इस काल में राजकोषीय व्यवस्था और भी जटिल बन गई। शिवाजी की उन्नत भू-राजस्व व्यवस्था को छोड़ दिया गया। बदले में राजस्व की वसूली की ठेके पर नीलामी आरंभ हुई। इसके कारण किसानों पर वित्तीय दबाव बढ़ गया। उसी प्रकार पेशवाओं के अधीन चौथ और सरदेशमुखी की पद्धति ने एक सार्वभौमिक आकर ले लिया क्योंकि बालाजी विश्वनाथ ने इनकी वसूली को विभिन्न मराठा सरदारों के बीच आवंटित कर दिया था। अगर तात्कालिक रूप में देखा जाए तो इस पद्धति के दो लाभ सामने आए:-

प्रथम - मराठवाड़ा के लिए संसाधनों की आवश्यकता पूरी हुई।

दूसरा- स्वराज्य क्षेत्र से बाहर मराठा शक्ति का प्रसार हुआ।

और फिर देखते देखते मराठा राज्य ने एक वृहद साम्राज्य का आकार ग्रहण कर लिया। किन्तु दूसरी तरफ चौथ और सरदेशमुखी ने मराठा राज्य के स्वरूप पर नकारात्मक प्रभाव छोड़ा। इसकी वसूली के लिए मराठा राज्य लगभग एक युद्धरत राज्य बन गया। यहाँ सैनिक तत्वों की प्रधानता बनी रही। राज्य का स्वरूप सामंती हो गया और फिर अंततोगत्वा मराठा शक्ति का पतन हो गया

भूमि कर मराठा प्रशासन की आय का मुख्य साधन था। शिवाजी खेत की वास्तविक उपज का भाग लेना पसन्द करते थे परन्तु पेशवाओं के काल में यह लम्बी अवधि के लिए निश्चित कर दिया जाता था। यह सिंचाई की सुविधाओं पर निर्भर होता था। परन्तु खेती तथा उर्वरता के अनुसार भी भूमि का वर्गीकरण होता था जो कि निश्चय ही मुग़ल प्रभाव था।कृषक को नई भूमि जोतने की प्रेरणा देने के लिए, उस पर कर कम होता था। पेशवा माधवराव ने बंजर तथा पथरीली भूमि को जोतने पर आज्ञा दी कि ऐसी भूमि का आधा भाग इनाम के रूप में किसान को दे दिया जाएगा तथा शेष आधे पर आने वाले 20 वर्ष तक रियायती दर से कर लिया जाएगा तथा अगले 5 वर्ष तक कम कर लगेगा। अकाल तथा सूखा पड़ने, खेत उजड़ने अथवा फसल नष्ट होने पर भूमि कर छोड़ दिया जाता था तथा किसान को साहूकार के हाथों बचाने के लिए उन्हें तगाई (तकावी) ऋण, थोड़े सूद पर दिए जाते थे।कर लगाने तथा एकत्रित करने की व्यवस्था समस्त मराठा क्षेत्र में एक सी नहीं थी। इस प्रकार मराठा कर व्यवस्था में करदाता को संरक्षण मिलता था

परन्तु बाजीराव द्वितीय के काल में यह व्यवस्था नष्ट हो गयी तथा कर वसूली का अधिकार नीलामी पर दिया जाने लगा।

11.4.9 राज्य की आय के अन्य स्त्रोत

राज्य की आय के अन्य स्त्रोत चौथ (25 प्रतिशत) तथा सरदेशमुखी (10प्रतिशत) थी जो उन प्रदेशों को देनी पड़ती थी जो मराठों की चपेट में आ जाते थे। उन्हें अपने बचाव के लिए ऐसा करना पड़ता था। चौथ की आय का बंटवारा इस प्रकार होता था - बबती अर्थात् 1/4 भाग राजा के लिए, सहोत्रा अथवा 6 प्रतिशत पन्त सचिव के लिए, नाड़गुण्डा अथवा 3 प्रतिशत राजा की इच्छा पर निर्भर तथा शेष मोकास अथवा 66 प्रतिशत मराठा सरदारों को घुड़सवार रखने के लिए दिया जाता था।सरदेशमुखी भी इसी प्रकार बांट ली जाती थी। जब यह प्रदेश सीधा मराठा साम्राज्य में विलय कर लिया जाता था तो अन्तिम 66 प्रतिशत जागीर के रूप में बांट दिया जाता था।

सरकार को कुछ आय वनों, सीमा शुल्क, उत्पादन शुल्क तथा टकसाल से भी होती थी। जंगलों से लकड़ी काटने, बांस काटने तथा ईंधन वाली लकड़ी तथा शहद इत्यादि के लिए आज्ञापत्र भी बेचे जाते थे। इसी प्रकार सरकार प्रमाणित सुनारों से निजी टकसाल चलाने की अनुमति के बदले भी धन प्राप्त करती थी।

जे. ग्रांट ने 18वीं शताब्दी के अन्त में पेशवा की आय का अनुमान 6 करोड़ रुपया वार्षिक का लगाया है, जिसमें 3 करोड़ रुपये चौथ के थे। एल्फिन्सटन ने दिसम्बर 1815 में 69,71,735 रु. का अनुमान लगाया है जिसमें चौथ तथा सरदेशमुखी सम्मिलित नहीं थी।

11.4.10 सैन्य व्यवस्था

मराठा सेना का गठन भी मुग़ल व्यवस्था पर आधारित था। मराठा सैन्य विनिमय दक्षिण के मुस्लिम राज्यों के अधिनियमों पर आधारित थे। उसमें पदातियों की अपेक्षा घुड़सवारों पर अधिक बल दिया जाता था। वेतन देना, सैनिकों को नए पद जीतने पर पुरस्कृत करना, आश्रितों के लिए व्यवस्था इत्यादि में मुग़ल प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ता है तथा यह प्राचीन हिन्दू पद्धति से सिद्धान्त तथा व्यवहार में भिन्न था।

शिवाजी प्रायः महाराष्ट्र से ही सैनिक लेते थे परन्तु पेशवा समस्त भारत से अपनी सेना में सैनिक लेते थे। उनकी सेना में सभी जातियों, धर्मों तथा वर्णों के लोग होते थे जैसे कि कर्नाटकी, अरबी, हब्शी, तैलिंग, बीदरी, राजपूत, सिक्ख, रुहेले, भारतीय ईसाई, तथा पुर्तगाल के भारतीय प्रदेशों से आए शैण्वी अर्थात् अब यह सेना राष्ट्रीय न रहकर व्यावसायिक बन गई थी। सम्भवतः यह मराठा शक्ति के प्रसार का अवश्यंभावी परिणाम था। शिवाजी सामन्तशाही सेना पर निर्भर नहीं थे तथा सेना को सीधे वेतन देना पसन्द करते थे। पेशवा लोग सामन्तशाही पद्धति पसन्द करते थे तथा बहुत सा साम्राज्य जागीरों में बांट दिया गया था।

11.4.10.1 घुड़सवार

मराठा सेना का प्रमुख अंग शिवाजी के काल से ही घुड़सवार थे। सरदारों को निश्चित जागीर के उपलक्ष्य में घुड़सवारों की निश्चित संख्या रखनी पड़ती थी। वर्ष में एक बार उन्हें निरीक्षण के लिए भी लाना पड़ता था। बाजीराव के काल में 400 रु. मूल्य का घोड़ा उत्तम, 200 रु. का मध्यम वर्गीय तथा 100 रुपये मूल्य वाला निम्न वर्गीय माना जाता था। इससे कम मूल्य के घोड़े सेना के लिए उपयोगी नहीं समझे जाते थे।सामन्तशाही के भय को कम करने के लिए भिन्न सरदारों को एक ही क्षेत्र में जागीरें दी जाती थीं ताकि वे आपस में नियन्त्रण का काम करें।

11.4.10.2 पदाति

पेशवाओं के अधीन मराठा साम्राज्य का नर्मदा पार विस्तार होने पर पदाति सेना की अधिक आवश्यकता हुई जिसके लिए राजपूत, रुहेले, सिक्ख, सिन्धी तथा अरब के सैनिकों को भरती किया गया। यूरोपीय लोग भी पेशवा की कुछ टुकड़ियों में कार्य करते थे। बॉयड (Boyd) द्वारा प्रशिक्षित रेजिमेन्ट का व्यय 26,242 रुपये प्रति मास था। कमाण्डर को 3000 रु. प्रति मास तथा कप्तान को 450 रु., लेफ्टिनेन्ट को 250 रु., सार्जेंट को 90 रु. तथा हवलदार को 15 रु. प्रति मास मिलता था।विदेशियों को पदाति सेना में भरती होने के लिए अधिक वेतन का प्रलोभन दिया जाता था। अतएव एक अरब सैनिक को 15 रु., हिन्दुस्तानी को 8 रु. तथा मराठा और दक्कनी सैनिक को केवल 6 रुपए मासिक मिलता था।

11.4.10.3 तोपखाना

मराठों के तोपखाने में मुख्यतः पुर्तगाली अथवा भारतीय ईसाई ही कार्य करते थे। पेशवाओं ने तोपें तथा गोले बनाने के लिए अपने कारखाने स्थापित कर रखे थे। जुन्नार ज़िले के अन्तर्गत अम्बेगांव में एक गोले बनाने का कारखाना 1765 में लगा तथा पूना में 1770 में स्थापित हुआ, परन्तु अधिकांशत पेशवा अपनी तोपों तथा गोलों की आवश्यकताओं के लिए अंग्रेजों तथा पुर्तगालियों पर ही निर्भर थे।

11.4.10.4 नौसेना

अंग्रियों के पास पश्चिमी तट पर एक शक्तिशाली नौसेना थी। परन्तु अंग्रिये पेशवा के अधीन नहीं थे। पेशवाओं ने भी अपनी नौसेना बनाई परन्तु इसका प्रयोग प्रायः समुद्री डाकुओं को रोकने, आने-जाने वाले जहाज़ों से ज़कात प्राप्त करने तथा मराठा बन्दरगाहों की रक्षा के लिए ही किया जाता था। बालाजी बाजीराव के अधीन एक एडमिरल को 1186 रु. वार्षिक तथा अन्य अनुलाभ मिलते थे। विजय के पश्चात पुरस्कार की भी सम्भावना होती थी। एक सरटण्डल को 10 रु. प्रति मास, टण्डल को साढ़े सात, नाविक को चाढ़े चार से पांच रुपया मासिक मिलता था।

11.4.10.5 विदेशियों की नियुक्तियां

पेशवा अपनी सेना में बहुत से विदेशी भर्ती करते थे। मराठों को यूरोपीय व्यक्तियों के विरुद्ध भी लड़ना पड़ता था अतएव वे इन्हीं विदेशियों को इनके विरुद्ध प्रयोग करते थे। इसके अतिरिक्त अपनी सेना के लिए भी वे अंग्रेज़,

फ्रांसीसी, पुर्तगाली, जर्मन, स्विस, इटालियन, तथा आर्मीनियन लोगों का प्रयोग करते थे। उन्हें ऊंचे-ऊंचे वेतन देते थे, तथा उनकी टुकड़ियों के भरण-पोषण के लिए जागीरें भी देते थे। परन्तु ये लोग केवल धन के लाभ के लिए काम करते थे उनकी मराठों इत्यादि के प्रति कोई स्वामिभक्ति नहीं होती थी। अंग्रेज़ों से यह आशा करना कि वे अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ेंगे सरासर मूर्खता थी। जिस सुगमता से अलीगढ़ अथवा कोइल का दुर्ग जीत लिया गया उस पर टिप्पणी करते हुए थोर्न महोदय लिखते हैं, "यह ध्यान रहे कि यह सफलता मिस्टर लूसन जो एक अंग्रेज़ था उसकी वीरता तथा देशभक्ति के कारण ही मिली, यह व्यक्ति सिन्धिया की सेना छोड़ आया था ताकि अपने ही देश के विरुद्ध न लड़ना पड़े। अपनी सेना में भरती होने के पश्चात वह कर्नल मोनसन को दुर्ग के द्वार तक ले गया तथा दुर्ग में से गुज़रने का मार्ग दिखलाया ताकि कमाण्डर-इन-चीफ तथा सरकार का धन्यवाद प्राप्त कर सके।"

11.5 पेशवाओं के अधीन मराठा प्रशासन में परिवर्तन

1. पेशवाओं के अधीन मराठा राज्य का चरित्र अधिकाधिक सामंती होता गया। बालाजी विश्वनाथ के समय 'चौथ'और 'सरदेशमुखी' वसूलने का अधिकार विभिन्न मराठा सरदारों के बीच आवंटित कर दिया गया था। इसके परिणामस्वरूप मराठा क्षेत्र से बाहर मराठा राज्य के विस्तार का स्वरूप सामंती था। बालाजी बाजीराव के अंतर्गत एक मराठा परिसंघ स्थापित था। इस परिसंघ के केन्द्र में पूना का पेशवा था तथा इसके अन्य घटक इंदौर का होल्कर, नागपुर का भोंसले, बड़ौदा का गायकवाड़ तथा ग्वालियर के सिंधिया थे। मराठा परिसंघ के अंतर्गत एक आंतरिक दरार विद्यमान थी।
2. पहली बार राजाराम के अधीन अष्टप्रधान में एक नए अधिकारी 'प्रतिनिधि' का विवरण मिलता है। यह अधिकारी आगे भी बना रहा।
3. शिवाजी के अंतर्गत अष्टप्रधान के अधिकारी वंशानुगत नहीं थे किन्तु पेशवाओं के अधीन ये अधिकारी वंशानुगत हो गए।
4. शिवाजी ने एक सक्षम भू-राजस्व व्यवस्था की स्थापना की थी किन्तु पेशवाओं के अधीन अधिक-से-अधिक रकम प्राप्त करने के लिए भू-राजस्व की वसूली की ठेके पर नीलामी की जाने लगी। इसके कारण किसानों का शोषण हुआ।

11.6 सारांश

मराठा प्रशासन पद्धति की तुलना अंग्रेज़ इतिहासकारों ने आधुनिक यूरोपीय पद्धति से की है, न कि समकालीन यूरोपीय मानदण्डों से। ऐसे इतिहासकारों ने इस पद्धति को घृणित कहा है तथा मराठा सेनापतियों अथवा पेशवाओं को "डाकू, लुटेरे और बदमाश" की संज्ञा दी है।जैसा कि टोन संकेत करते हैं; मराठा साम्राज्य स्वयमेव, विश्वास पर नहीं अपितु ईर्ष्या पर आधारित था तथा इसमें राष्ट्रभक्ति को व्यापक नीति बनाने की क्षमता नहीं थी जैसा कि शिवाजी का उद्देश्य था। जब यह एक ऐसे राष्ट्र से टकराया जिसमें व्यक्तिगत त्याग तथा राष्ट्रीय महत्वाकांक्षा का सम्मिश्रण था तो यह चूर-चूर हो गया।एस.एन. सेन (S.N. Sen) के शब्दों में कह सकते है कि –"समस्त मराठा संविधान जनतंत्र तथा एकतन्त्र का कुछ अद्भुत सा सम्मिश्रण था। वास्तव में इसके लिए किसी विशेष राजनैतिक दर्शन की संज्ञा का प्रयोग करना

कठिन है।"इतिहासकार सेन इसे राजतन्त्र, अभिजात तन्त्र अथवा जनतन्त्र न कहकर, इसे 'सैनिक गणतन्त्र' की संज्ञा देते हैं। यह केवल आंशिक रूप में सत्य है क्योंकि छोटे से छोटा सैनिक भी यदि उसमें प्रतिभा थी, तो वह तार्किक रूप से साम्राज्य का सरदार बन सकता था।

परन्तु निष्पक्ष अध्ययन से पता चलता है कि मराठा प्रशासन पद्धति उत्तम नियमों पर आधारित थी जो उन्होंने अपने पूर्वजों से प्राप्त की थी तथा जिसे वे आगे अंग्रेज़ उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ गए। निश्चय ही यह साम्राज्य लूटपाट पर निर्भर नहीं था क्योंकि यदि वह उत्तम नियमों पर आधारित नहीं होता तो 150 वर्ष तक कैसे चलता रहता।

11.7 तकनीकी शब्दावली

तगाई (तकावी) ऋण-राज्य द्वारा कृषकों को दिया गया अग्रिम ऋण |

हजूर दफ़्तर - पूना में स्थित पेशवा का सचिवालय, जोमराठा प्रशासन का केन्द्र था।

11.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. किस संधि के माध्यम से पेशवा ही मराठा साम्राज्य का वास्तविक शासक बन गया था ?

(अ).1750 की संगोला की सन्धि (ब). सालबाई की संधि

(स). पुरंदर की संधि (द). इलाहाबाद की संधि

2. चौथ की आय का कितना प्रतिशत मराठा सरदारों को घुड़सवार रखने के लिए दिया जाता था।

(अ). 10 प्रतिशत (ब). 5 प्रतिशत

(स). 66 प्रतिशत (द). 50 प्रतिशत

11.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.(अ), 2.(स)

11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, हरिश्चंद्र., मध्यकालीन भारत, भाग-2, 1993, 28 वां पुनर्मुद्रण – 2017, नई दिल्ली.

2. चन्द्र, सतीश., मध्यकालीन भारत सल्तनत से मुग़ल काल तक (दिल्ली सल्तनत 1526-1761).

3. ग्रोवर, मेहता एवं यशपाल., आधुनिक भारत का इतिहास, एक नवीन मूल्यांकन 1707 ईस्वी से आधुनिक काल तक, नई दिल्ली, 36 वां संस्करण- 2018.

4. रानाडे, महादेव गोविंद., **राइज ऑफ दि मराठा पॉवर, महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित, 2012.**

5. https://www.egyankosh.ac.in/handle/123456789/21798

6. लूनिया, बी. एन., मराठा प्रभुत्व (भाग 1- 3).

7. gordan, Stewart., The Marathas 1600- 1818, CUP, 1992.

8. André Wink. Land and Sovereignty in India: Agrarian Society and Politics under the Eighteenth-Century Maratha Svarajya. Cambridge, 1986.

9. Sarkar, J.N., Shivaji and His Times, Calcutta, 1961.

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मराठों के उत्थान के लिए कौन सी परिस्थितियां उत्तरदायी रही ? विस्तार से बताइए |
2. पेशवाओं के अधीन मराठा प्रशासन की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए |

इकाई बारह-उत्तरकालीन मुगल, नादिरशाह का आक्रमण, पानीपत का तृतीय युद्ध

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 उत्तरकालीन मुगल

12.3.1 बहादुरशाह प्रथम (1707-1712)

12.3.1.1 राजपूतों से संघर्ष

12.3.1.2 सिक्खों से संघर्ष

12.3.1.3 मराठा शक्ति से संघर्ष

12.3.2 जहाँदारशाह (1712-13)

12.3.3 फर्रूखसियर (1713-19)

12.3.3.1राजपूतों के प्रति नीति

12.3.3.2 सिक्खों से संघर्ष

12.3.3.3जाटों से संघर्ष

12.3.3.4 फर्रुखसियर का अन्त

12.3.4 मुहम्मदशाह (1719-1748)

12.3.4.1 सैयद भाइयों का अन्त

12.3.4.2 हैदराबाद में निजामशाही की नींव

12.3.4.3 अन्य प्रान्तों की स्वतन्त्रता

12.3.4.4नादिरशाह एवं अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण

12.3.4.5 मुहम्मदशाह की मृत्यु

12.3.5अहमदशाह तथा अन्य मुगल सम्राट (1748-1759)

12.3.6शाहआलम द्वितीय (1759-1806)

12.3.7बहादुरशाह द्वितीय (1837-58)

12.4 नादिरशाह का आक्रमण

12.4.1 नादिरशाह का परिचय

12.4.2 करनाल का युद्ध, 24 फरवरी, 1739

12.4.3 नादिरशाह का दिल्ली की ओर प्रस्थान

12.4.4 नादिरशाह का वापस अपने देश लौटना

12.5 पानीपत का तृतीय युद्ध

12.5.1 पानीपत के युद्ध के कारण

12.5.2 पानीपत का तृतीय युद्ध

12.5.3 पानीपत युद्ध में मराठों की विफलता के कारण

12.5.3.1 मराठाओं द्वारा अपनी पुरानी युद्ध रणनीति का त्याग

12.5.3.2 मराठाओं मेंपारस्परिक कलह एवं मराठा सेनापतियों की भूलें

12.5.3.3 अफगानों का संगठनएवं नवीन युद्ध तकनीकी का प्रयोग

12.5.3.4 अन्य कारण

12.5.4 पानीपत के तृतीय युद्ध के परिणाम

12.5.4.1 अपार जन-क्षति

12.5.4.2 उत्तरी भारत से मराठों के प्रभाव की समाप्ति

12.5.4.3 हिन्दू साम्राज्य के स्वप्न का अंत

12.5.4.4 मराठा संघ का अंत

12.5.4.5 मुगल साम्राज्य का पतन

12.5.4.6 क्षेत्रीय शक्तियों का उदय

12.5.4.7 अंग्रेजों का उत्कर्ष

12.6 सारांश

12.7 तकनीकी शब्दावली

12.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न

12.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

औरंगजेब की मृत्यु के समय उसके तीन पुत्र-मुअज्जम, आजम तथा कामबख्श जीवित थे। मुअज्जम काबुल का, आजम गुजरात का तथा कामबख्श बीजापुर के सूबेदार थे। इन तीनों ही पुत्रों ने अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। मुअज्जम चाहता था कि उत्तराधिकार के लिए भाइयों में पारस्परिक युद्ध न हो। इसीलिए उसने साम्राज्य-विभाजन के लिए आजम को पत्र लिखा, लेकिन आजम ने इस ओर ध्यान नहीं दिया, बल्कि सेना लेकर आगरा के निकट जाजऊ नामक स्थान पर आ डटा। मुअज्जम भी युद्ध के लिए तैयार था। 18 जून, 1707 को 'जाजऊ' नामक स्थान पर दोनों सेनाओं में बड़ा घमासान युद्ध हुआ, जिसमें मुअज्जम विजयी हुआ और आजम अपने दो पुत्रों के साथ मारा गया। इसके बाद मुअज्जम ने कामबख्श से सन्धि-वार्ता चलाई, किन्तु उसने मुअज्जम के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। फलतः हैदराबाद के निकट दोनों की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ, जिसमें कामबख्श बुरीतरह घायल हुआ और उसी रात उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार मुअज्जम उत्तराधिकार के युद्ध में विजयी हुआ और **'बहादुरशाह'**नाम से गद्दी पर आसीन हुआ।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन द्वारा उत्तरकालीन मुग़ल शासकों के बारे में जान पाएंगे | साथ ही यह भी जान पाएंगे कि मुग़ल शासकों की वह कौन सी कमजोरियाँ रही जिसका फायदा नादिरशाह एवं अहमदशाह अब्दाली जैसे विदेशी शासकों द्वारा उठाया गया एवं भारत में अनेकों बार आक्रमण कर भारत को न केवल लूटा गया अपितु राजनीतिक नियंत्रण करने का भी प्रयास किया गया | जब मराठाओं द्वारा इन शक्तियों को भारत की राजनीति से खदेड़ने का प्रयास किया गया तो पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठाओं को अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध हार का सामना करना पड़ा |

12.3 उत्तरकालीन मुगल

उत्तरकालीन मुग़ल शासकों में बहादुर शाह प्रथम से लेकर बहादुरशाह द्वितीय (जफ़र) तक के मुग़ल शासकों का कार्यकाल आता है | इस समयअन्तराल में मुग़ल शासकों के वर्चस्व में कमजोरी की शुरुआत होती है, इस कमजोरी को बढावा मिलता है मराठाओं की बढती हई शक्ति से, मुग़ल शासकों की कमजोरियों से एवं विदेशी शक्तियों के बढते प्रभुत्व से |

12.3.1 बहादुरशाह प्रथम (1707-1712)

जिस समय बहादुरशाह राज-सिंहासन पर आसीन हुआ, उसके सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ विद्यमान थीं। राजपूत, सिक्ख तथा मराठे अपनी शक्ति का विस्तार करके मुगल साम्राज्य को क्षति पहुँचा रहे थे। अतः बहादुर शाह द्वारा इन शक्तियों के विरुद्ध निम्नलिखित कदम उठाये गए -

12.3.1.1राजपूतों से संघर्ष

जोधपुर के राणा अजीतसिंह ने अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित करके मुगल क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया था। बहादुरशाह ने आमेर पहुँचकर वहाँ के उत्तराधिकार के प्रश्न में हस्तक्षेप करके विजयसिंह को आमेर का राजा घोषित किया। इसके पश्चात् वह जोधपुर गया और अजीतसिंह को परास्त कर उसे मारवाड़ का राजा स्वीकार कर साढ़े तीन हजार का मनसब प्रदान किया। जब बहादुरशाह कामबख्श के विरुद्ध दक्षिण की ओर जा रहा था तब अजीतसिंह तथा दुर्गादास ने आमेर के राजा विजयसिंह को परास्त कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। बहादुरशाह को पुनः राजपूताना जाना पड़ा, किन्तु उसने उनसे सन्धि कर ली और उन्हें अपने-अपने राज्यों में भेज दिया।

12.3.1.2 सिक्खों से संघर्ष

बहादुरशाह को सिक्खों के नेता बन्दा बैरागी के विद्रोह का भी सामना करना पड़ा । उसने 'सच्चा बादशाह' की उपाधि धारण की और सिक्ख वर्ग को धर्म-युद्ध करने के लिए प्रोत्साहितकिया। उसने सरहिन्द को लूट कर उस पर अधिकार कर लिया। बहादुरशाह 1710 में पंजाब गया और सिक्खों के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ हो गया। मुगल सेना ने बन्दा बैरागी को कई स्थानों पर परास्त किया। विवश होकर उसे जम्मू की पहाड़ियों में शरण लेनी पड़ी। इसी बीच बहादुरशाह की मृत्युहो जाने के कारण मुगलों का सिक्खों के विरुद्ध कार्य शिथिलहो गया।

12.3.1.3 मराठा शक्ति से संघर्ष

मराठों की शक्ति कम करने तथा उनमेंआपसी फूट डालने के लिए बहादुरशाह ने शम्भाजी के पुत्र साहूजी को 1707 में कैद से मुक्त कर दिया और उसको दक्षिण के 11 प्रान्तों से चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने काअधिकार प्रदान किया। साहूजी के पहुँचते ही मराठा-संघ दो दलों में विभाजित हो गया और उनका गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार बहादुरशाह अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में सफल हुआ।पाँच वर्ष शासन-करने के पश्चात् 1712 में 69 वर्ष की आयुमें बहादुरशाह की मृत्यु हो गई।

12.3.2 जहाँदारशाह (1712-13)

बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों- जहाँदारशाह, अजीमउसशान, रफी-उसशान तथा जहाँनशाह में उत्तराधिकार का युद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमें जहाँदार को सफलता मिली। वह एक विलासी तथा अयोग्य व्यक्ति था। उसकी इस स्थिति का लाभ उठाकर उसके भाई के पुत्र फर्रूखसियर ने जो बंगाल का गवर्नर था, 13 फरवरी, 1713 को उसका वध कर दिया। फर्रुखसियर ने जहाँदारशाह का वध करने में सैयद अब्दुल्ला खाँ तथा हुसैन अली नामक दो सैयद भाइयों की सहायता प्राप्त की थी।

12.3.3 फर्रूखसियर (1713-19)

फर्रूखसियर सैयद अब्दुल्ला खाँ और हुसैनअली की सहायता से 13 फरवरी, 1713 को गद्दी पर आसीन हुआ था। अतः उसने उन्हें पर्याप्त परितोषिक दिया। किन्तु वह अत्यन्त कायर, अविवेकी तथा चरित्रहीन था। समकालीन स्रोतों से

प्राप्त जानकारी के अनुसार, "फर्रूखसियर स्वेच्छा से शासन करने की योग्यता से रहित था और उसमें दूसरों पर नियन्त्रण रखने की क्षमता न थी। वह किसी भी योग्य कर्मचारी का विश्वास नहीं करता था, परन्तु बच्चोंके समान अपने मन्त्रियों के उत्तेजना दिलाने पर सन्देहशील हो उठता था तथा उनके द्वारा उठाये गये षड्यन्त्रों में भाग लेने लगता था।"

12.3.3.1राजपूतों के प्रति नीति

फरूखसियर को मारवाड़ के राजा अजीतसिंह से संघर्ष का सामना करना पड़ा। अजीतसिंह ने मुगलों के प्रदेशों पर आक्रमण करके अजमेर पर अपना अधिकार कर लिया था। हुसैनअली ने अजीतसिंह को सन्धि के लिए विवश किया। अजीतसिंह ने अपने पुत्र अभयसिंह को मुगल दरबार में भेजना स्वीकार कर लिया |

12.3.3.2 सिक्खों से संघर्ष

बन्दा बैरागी ने सिधौरा के निकट एक दुर्ग का निर्माण कर आस-पास के प्रदेशों पर शासन करना प्रारम्भ कर दिया था। सम्राट ने उस पर आक्रमण करने का आदेश दिया। लाहौर के सूबेदार अब्दुल समद खाँ ने सिधौरा के दुर्ग का घेरा डाल दिया। सिक्खों को विवश होकर दुर्ग छोड़ना पड़ा और उन्होंने लौहगढ़ के दुर्ग में शरण ली। अब अब्दुल समद खाँ ने इसका भी घेरा डाल दिया। बैरागी पुनः पहाड़ियों में चला गया और वहाँ से मुगल प्रदेशों में लूटमार करनी प्रारम्भ कर दी। अन्त में 1715 में बन्दा बैरागी तथा उसके 140 साथियों को बन्दी बना लिया गया। सम्राट ने बन्दा वैरागी तथा उसके साथियों की नृशंसतापूर्वक हत्या करवा दिया।

12.3.3.3जाटों से संघर्ष

इसकेपश्चात् चूड़ामन जाट को दबाने का प्रयास किया गया, जिसने आगरा के निकट छापे मारना प्रारम्भ कर दिया था। जयपुर के राजा जयसिंह को जाटों का दमन करने के लिए भेजा गया, लेकिन वह जाटों का दमने करने में सफल न हो सका। अन्त में सैयद भाइयों के प्रयास से दोनों में सन्धि हो गई। चूड़ामन को 50 लाख रुपया भेंट स्वरुप दिया गया जिसके फलस्वरूप उसने मुगल साम्राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली।

12.3.3.4 फर्रुखसियर का अन्त

फर्रुखसियर सैयद भाइयों की सहायता से राजसिंहासन पर आसीन हुआ था, किन्तु वह उनके चंगुल से छुटकारा पाना चाहता था। उसने उनके विरुद्ध अनेक षड्यन्त्र रचने प्रारम्भ कर दिये, लेकिन सफलता नहीं मिली। अन्त में 1719 में सैयद भाइयों ने उसकी हत्या कर दी।

12.3.4 मुहम्मदशाह (1719-1748)

फर्रुखसियर की हत्या के बाद सैयद भाइयों ने रफीउद दरजात तथा रफी-उद्दौला को क्रमशः गद्दी पर बैठाया, परन्तु वे नाममात्र के शासक थे। शीघ्र ही उनको गद्दी से उतार दिया गया। अन्त में उन्होंने बहादुरशाह के पौत्र मुहम्मदशाह को गद्दी पर बैठाया। वह सम्राट भी अत्यन्त अयोग्य तथा दुर्बल था। उसके शासनकाल की प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित हैं:

12.3.4.1 सैयद भाइयों का अन्त

गद्दी पर आसीन होने के पश्चात् ही मुहम्मदशाह ने सैयद भाइयों के प्रभाव को समाप्त कर देने का षड्यन्त्र रचना प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि मुग़ल प्रशासन में सैयद भाइयों का बहुत अधिक प्रभाव बढ़ गया था। हुसैनअली कहा करता था, "जिसके सर पर मेरे जूतों का साया पड़ जायगा, वह दिल्ली का बादशाह हो जायेगा।" षड्यन्त्र के परिणामस्वरूप मुहम्मदशाह ने हुसैन अली को दक्षिण भेजा। हुसैनअली के दक्षिण जाने पर मार्ग पर ही उसका वध कर दिया गया। अब्दुल को भी बन्दी बना लिया गया। 1722 में विषपान कराकर उसकी जीवन-लीला समाप्त कर दी गई। इस प्रकार मुहम्मदशाह को सैयद भाइयों से मुक्ति मिल गई।

12.3.4.2 हैदराबाद में निजामशाही की नींव

सैयद भाइयों के पतन के उपरान्त मुहमदशाह ने दक्षिण के सूबेदार निजामुलमुल्क को मंत्री पद पर आसीन किया, किन्तु वह दरबारी षड्यन्त्रों से ऊबकर 8 दिसम्बर, 1723 को शिकार का बहाना कर पुनः दक्षिण चला गया, वहाँ उसने निजामशाही नामक एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। मुगल सम्राट ने उसका दमन करने के लिए एक सेना दक्षिण भेजी लेकिन निजाम ने उसे पराजित कर दिया। इस प्रकार सम्राट ने उसे आसफशाह की उपाधि देकर सन्धि करने का प्रयास किया | निजाम ने पेशवा बाजीराव से सन्धि कर ली, ताकि मराठा उसके प्रान्तों पर आक्रमण न करें।

12.3.4.3 अन्य प्रान्तों की स्वतन्त्रता

निजामुल्मुल्क का अनुसरण अन्य मुग़ल प्रान्तों ने किया। सआदत खाँ ने अवध में, अलीवर्दी खाँ ने बंगाल में तथा रुहेला सरदारों ने रुहेलखण्डमें अपना राज्य स्थापित कर लिया। मराठों ने दक्षिण में अपनी शक्ति सुदृढ़ कर ली और मुगल प्रान्तों पर आक्रमण करने लगे।

12.3.4.4नादिरशाह एवं अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण

मुहम्मदशाह के शासनकाल की प्रसिद्ध घटना नादिरशाह का आक्रमण है। नादिरशाह खुराशानी तुर्क था। वह बड़ा ही महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने 1737 में भारत के सीमान्त प्रान्तों पर आक्रमण किया और 1738 में कन्धार तथा काबुल पर अधिकार कर अटक की ओर बढ़ा और शीघ्र ही लाहौर पर अधिकार कर लिया। जब मुहम्मदशाह को नादिरशाह के आक्रमण का समाचार ज्ञात हुआ तो वह एक विशाल सेना के साथ करनाल नामक स्थान पर पहुँचा। यहीं पर 28 फरवरी, 1739 को करनाल का युद्ध हुआ जिसमें मुगल सेना पराजित हुई। मुहम्मदशाह ने नादिरशाह को युद्ध के हरजाने के रूप में 2 करोड़ रुपये देना स्वीकार किया लेकिन नादिरशाह ने 20 करोड़ रुपये की माँग की। अन्त में विवश होकर उसने नादिरशाह को दिल्ली चलकर धन देने का वायदा किया। 20 मार्च को विजेता नादिर ने दिल्ली में प्रवेश किया जहाँ उसका भव्य स्वागत हुआ। नादिरशाह 15 मई तक दिल्ली में रहा। भारत से जाते समय वह अपने साथ 'कोहेनूर हीरा', 'तख्ते ताऊस' तथा अतुल धन ले गया। हेग के शब्दों में, "नादिरशाह के आक्रमण से मुहम्मदशाह

और उसके दरबारियों पर इतना भीषण आघात लगा कि वे उसके दिल्ली से जाने के बाद मूर्क्षित होकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ से रह गये

1747 में नादिरशाह की मृत्यु के उपरान्त अहमदशाह अब्दाली अफगानिस्तान का शासक हुआ। पंजाब के सूबेदार शाहनवाज खाँ ने अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। अतएव अब्दाली ने लाहौर पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया तथा वहाँ से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। मुहम्महदशाह के पुत्र अहमद ने सरहिन्द के मैदान में उसे पराजित करके अफगानिस्तान को वापस लौटने पर विवश कर दिया।

12.3.4.5 मुहम्मदशाह की मृत्यु

26 अप्रैल, 1748 को मुहम्म्दशाह की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र अहमदशाह सिंहासन पर बैठा। मुहम्मदशाह के सम्बन्ध में सियाउल मुख्तरीन ने लिखा है, "दिल्ली साम्राज्य की नींव गल और सड़ चुकी थी, परन्तु मुहम्मदशाह ने अपनी चतुरता से उसे स्थिर रखा। उसे बाबर के वंश का अन्तिम सम्राट कहा जा सकता है,

12.3.5 अहमदशाह तथा अन्य मुगल सम्राट (1748-1759)

मुहम्मदशाह की मृत्यु के उपरान्त 28 अप्रैल, 1748 को अहमदशाह राजसिंहासन पर आसीन हुआ और 1754 तक शासन किया। उसके शासन काल में उसके मंत्री गाजीउद्दीन का शासन पर विशेष प्रभाव रहा। 1748 में अहमदशाह अब्दाली ने दूसरी बार भारत पर आक्रमण किया और पंजाब के सूबेदार को 14 हजार रुपये वार्षिक कर के रूप में देने को बाध्य किया। 1754 में अहमदशाह को उसके वजीर गाजीउद्दीन ने गद्दी से उतार दिया और उसके स्थान पर जहाँदारशाह के पुत्र आलमगीर द्वितीय को राजसिंहासन पर बैठाया। इसके समय में अब्दाली ने 1757 में भारत पर तीसरी बार आक्रमण किया और दिल्ली, मथुरा आदि प्रदेशों को लूट कर वापस चला गया। आलमगीर द्वितीय भी एक अयोग्य तथा निकम्मा शासक था। फलतः थोड़े दिनों के बाद ही 1759 में उसका वध कर दिया गया और उसके पुत्रशाहआलम द्वितीय को राज-सिंहासन पर बैठाया गया।

12.3.6 शाहआलम द्वितीय (1759-1806)

1759 में शाहआलम द्वितीय राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। शासन की सत्ता पर गाजीउद्दीन का प्रभुत्व स्थापित था। उसकी नीति से क्षुब्ध होकर अनेक अमीर उसके विरोधी हो गये। फलतः गाजीउद्दीन ने मराठों की सहायता प्राप्त की और उन्हें साम्राज्य की नीति में हस्तक्षेप का अधिकार दे दिया। मराठों ने पंजाब पर अधिकार कर लिया। मराठों के प्रभाव को बढ़ता देखकर दिल्ली के अमीरों ने अहमदशाह अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया और उसकी मदद करने का वचन दिया।

दिल्ली के अमीरों के आमन्त्रण पर 1761 में अहमदशाह अब्दाली ने चौथी बार भारत पर आक्रमण किया। मराठों ने पानीपत के मैदान में बड़ी वीरता से सामना किया। घमासान युद्ध के पश्चात् मराठे पराजित हुए। इस युद्ध से मराठों को गहरा आघात लगा। अब्दाली ने शाहआलम को दिल्ली का सम्राट स्वीकार कर लिया। बंगाल की ओर से

अंग्रेज अपनी शक्ति का विस्तार कर रहे थे। उन्होंने 1764 में बक्सर युद्ध में विजय प्राप्त की और 1765 में इलाहाबाद की सन्धि के अनुसार बिहार, बंगाल और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त की। अंग्रेजों ने शाहआलम को इलाहाबाद और कड़ा के जिले तथा 26 लाख रुपये वार्षिक पेंशन देना स्वीकार कर लिया। 1771 में मुग़ल शासक शाहआलम द्वारा मराठों के संरक्षण में चले जाने के कारण अंग्रेजों द्वारा उसकी पेंशन बन्द कर दी गई। 1778 में अब्दुल कादिर ने दिल्ली पर अधिकार कर शाहआलम को गद्दी से उतार दिया। अब शाह आलम पुनः अंग्रेजों के संरक्षण में आ गया और 1806 में उसकी मृत्यु हो गई। शाहआलम की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अकबर द्वितीय राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। वह नाममात्र का सम्राट था। वह भी आजीवन अंग्रेजों का पेंशनभोक्ता बना रहा |

12.3.7 बहादुरशाह द्वितीय (1837-58)

अकबर द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र बहादुरशाह द्वितीय 1837 में राज-सिंहासन पर आसीन हुआ। यह अन्तिम मुगल सम्राट था। 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम में उसने क्रान्तिकारियों का नेतृत्व ग्रहण किया। क्रांति के असफल हो जाने पर अंग्रेजों ने उसे सिंहासन से उतार दिया और उसको कालापानी का दण्ड देकर रंगून भेज दिया। वहीं 7 नवम्बर, 1862 को उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार मुगल साम्राज्य का टिमटिमाता दीप सदैव के लिए बुझ गया और भारत पर अंग्रेजों की सत्ता स्थापित हो गई।

12.4 नादिरशाह का आक्रमण(Nadir Shah's Invasion, 1738-39)

औरंगज़ेब ने उत्तर-पश्चिमी सीमाओं की सुरक्षा और प्रान्तों के प्रशासन पर विशेष ध्यान दिया था। काबुल का प्रशासन बहुत उत्तम ढंग से चल रहा था और लोग ठीक ढंग से अपना कर देते थे। सीमाओं पर रहने वाली जन जातियां शान्त थीं। उन्हें आर्थिक सहायता निश्चित रूप से मिल रही थी। राजमार्ग खुले रहते थे और दिल्ली और काबुल के बीच प्रशासनिक पत्र-व्यवहार समुचित ढंग से चल रहा था। परन्तु 1707 में बहादुरशाह के काबुल से वापस दिल्ली चले आने पर काबुल और गज़नी का प्रशासन बिगड़ गया। मुग़ल साम्राज्य की शक्ति लगातार इतनी कमजोर होती जा रही थी कि सीमाएं पूर्णतया असुरक्षित पड़ी थीं। वही स्वार्थ, भ्रष्टाचार और असावधानी इतना बढ़ गया था, जिसके कारण गुजरात और मालवा मराठों के आक्रमणों के शिकार बने।

सियारुल-मुत्खैरीन के लेखक गुलाम हुसैन लिखते हैं कि –"पक्षपात के कारण अयोग्य वाइसराय नियुक्त होते थे। उत्तर-पश्चिमी सीमाओं पर नियुक्त सेना सर्वथा उपेक्षित थी। जन जातियों को दिया जाने वाला धन रोक लिया जाता था और यह धन अधिकारी अथवा उनके आश्रित लोग ही खा जाते थे। स्वेच्छाचारी सम्राट अथवा उनके मन्त्री पर्वतों के उस पार की अवस्था से पूर्णतया उदासीन हो गए थे। उदाहरणस्वरूप जब मुग़ल गवर्नर ने फारस से आक्रमण के भय का समाचार दिल्ली भेजा तो खान-ए-दौरान ने कपोल कल्पित कह कर इसकी हंसी उड़ाई और जब गवर्नर ने कहा कि सैनिकों का वेतन पिछले 5 वर्षों से बकाया है तो उसे टाल दिया गया" | इन्ही सब कारणों एवं परिस्थितियों के कारणवश नादिरशाह की महत्वाकांक्षाएं जाग्रत हुईं।

12.4.1 नादिरशाह का परिचय

नादिरशाह का जन्म 1688 में खुरासान के तुर्कमान वंश में हुआ था। उसका यौवन तूफानी दौर से गुज़रा। जब अफ़ग़ानों ने फारस पर आक्रमण किया तो वह फारस का रक्षक बन कर सामने आया। अफगानों ने (महमूद) नाम के एक व्यक्ति के नेतृत्व मेंकन्धार क्षेत्र को फारसी लोगों से छीन लिया और 1722 में फारस की राजधानी इसफहान को भी जीत लिया। नादिर ने देश को अफगानों से मुक्त कराने का बीड़ा उठाया और 1727 में निशापुर से अफगानों को निकाल दिया। नादिर अपने आप को सफवी राजा शाह तहमास्प का मुख्य सेनापति ही मानता था। शीघ्र ही समस्त फारस अफ्गानों से मुक्त हो गया। कृतज्ञ शाह ने उसे आधा राज्य दे दिया जिसमें वह पूर्ण स्वतन्त्र होकर अपने सिक्के भी चला सकता था। 1736 में सफवी वंश का अन्तिम सम्राट मर गया और नादिर समस्त देश कास्वामी बन गया।

14.4.2 नादिरशाह द्वारा भारत पर आक्रमण करने के कारण

नादिरशाह एक महत्वाकांक्षी शासक था और उसने अपने राज्य के आस-पास के क्षेत्रों में अपने राज्य का विस्तार करना चाहा। उसका प्रथम लक्ष्य कन्धार को जीतना था क्योंकि इस क्षेत्र में अधिकार किए बिना उसके साम्राज्य की शान्ति कभी भी भंग हो सकती थी। साथ ही इसके बिना वह सफवी वंश का पूरा उत्तराधिकारी भी नहीं कहला सकता था। उसने कन्धार के अफगान शासकों को अकेला करने की इच्छा से मुग़ल सम्राट मुहम्मद शाह को एक पत्र लिखा जिसमें लिखा था कि –"कन्धार के अफगान शासकों को काबुल में शरण नहीं मिलनी चाहिए।" मुहम्मद शाह ने नादिरशाह को ऐसा ही विश्वास दिलाया | परन्तु जब नादिरशाह ने 1738 में कंधार पर आक्रमण किया तो वहां के कुछ अफगानों ने गज़नी और काबुल में शरण ले ली। नादिरशाह के सैनिकों ने मुगल साम्राज्य की सीमाओं का आदर किया और अफगान भगोड़ों का काबुल और गजनी में पीछा नहीं किया। परन्तु नादिरशाह ने एक दूत दिल्ली भेजा। इस दूत और उसके साथियों की मुगल सैनिकों ने जिलालाबाद में हत्या कर दी।जिस अवहेलना से मुगल सैनिकों ने नादिरशाह के दूतों के साथ व्यवहार किया था, उसी को नादिरशाह नेभारत पर आक्रमण का कारण बना लिया।

दूसरी ओर मुहम्मद शाह ने नादिर शाह से दूतों का आदान-प्रदान भी स्वीकार नहीं किया था यद्यपि नादिरशाह से पहले दोनों देशों के दूतों का आदान-प्रदान बना हुआ था। यह भी नादिरशाह का अपमान था। इसके अतिरिक्त नादिरशाह को भारत लूटने की भी इच्छा थी। उसे मुग़लों की सैनिक दुर्बलता का भी आभास था। उसे निश्चित रूप से मुग़ल शासन की कमजोरियों का पता था और आन्तरिक झगड़ों के कारण मुगल शक्ति के क्षीण होने की भी सूचना थी। यहां तक कि मुग़ल दरबारियों ने भी उसे आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया था।

नादिरशाह ने 11 जून को गज़नी नगर में प्रवेश किया और 29 जून को काबुल पर अधिकार कर लिया। उसने एक दयालु शत्रु और उदार स्वामी के रूप में अपनी ख्याति बना रखी थी। वह भगोड़ों को भिन्न-भिन्न प्रलोभन देता था। काबुल के मुगल शासक नादिर खां ने बिना प्रतिरोध के नादिर शाह के सम्मुख घुटने टेक दिए और फिर क्षमा याचना कर, नादिरशाह से काबुल और पेशावर की गवर्नरी स्वीकार कर ली। नादिरशाह ने अटक के स्थान पर सिन्ध नदी को

पार किया और बहुत सरलता से लाहौर के गवर्नर को हरा दिया। नासिर ख़ां भी नादिरशाह से मिलकर दिल्ली की ओर बढ़ गया।

12.4.2 करनाल का युद्ध, 24 फरवरी, 1739

नादिरशाह के इस तीव्रगामी आक्रमण से मुगल सम्राट घबरा गया। 80,000 सैनिक और निज़ामुलमुल्क, कमरुद्दीन और खान दौरान को साथ लेकर वह आक्रमणकारी से टक्कर लेनेचल पड़ा। शीघ्र ही सआदत खां भी उससे आ मिला। मुग़लों की दुर्बलता का अनुमान इससे भी लग सकता है कि सम्राट को यह भी मालूम नहीं था कि आक्रमणकारी किस स्थान पर है। उसे आक्रान्ता का तब पता लगा जब नादिर शाह के अग्रिम सैनिकों ने सआदत खां की संभरण गाड़ियों पर आक्रमण कर दिया। मुगलों के पास निश्चित कार्यवाही की भी कोई योजना नहीं थी। न ही कोई निश्चित नेता था। करनाल का युद्ध केवल 3 घण्टे चला। खान दौरान युद्ध में मारा गया और सआदत खां बन्दी बना लिया गया।

निज़ामुलमुल्क ने अब शान्तिदूत की भूमिका निभाई। यह निश्चित हुआ कि नादिरशाह को 50 लाख रुपया मिलेगा, 20 लाख तुरन्त और 10-10 लाख की तीन किस्तें लाहौर, अटक और काबुल मेंलौटते हुए दी जायेंगीं |मुग़ल सम्राट निज़ामुलमुल्क की इस सेवा से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने निजाम को तुरन्त अपना मीर बख्शी नियुक्त कर दिया क्योंकि यह स्थान खान दौरान की मृत्यु के कारण रिक्त हो चुका था।

12.4.3 नादिर का दिल्ली की ओर प्रस्थान

मुगल सरदारों ने स्वार्थ भाव तथा आपसी द्वेष का जो रूप इस समय दिखलाया वह इससे पहले सम्भवतः भारत के इतिहास में कभी देखने को नहीं मिला। सआदत खां ने जो स्वयं मीर बख्शी बनना चाहता था, जब यह देखा कि वह इस पद से वंचित रह गया है तो उसने नादिरशाह से भेंट की और कहा कि यदि आप दिल्ली पर आक्रमण करें तो 20 लाख नहीं 20 करोड़ रुपया आपको मिल सकता है। नादिरशाह को मुगल राजनीति का आभास निज़ाम से पहले ही मिल चुका था। नादिरशाह ने निज़ाम से पूछा था कि उस जैसे वीर योद्धाओं के होते हुए मराठे मुगल साम्राज्य का इतना बड़ा भाग कैसे जीत सके थे तो निज़ाम ने स्पष्ट रूप से कह दिया था कि दरबार में गुटबन्दी के कारण ही यह सब सम्भव हुआ था और इसीलिए वह दुःखी होकर दक्कन चला गया था। अब निज़ाम के कथन का सत्य नादिरशाह के सम्मुख था। उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान की आज्ञा दे दी। 20 मार्च, 1739 को वह दिल्ली पहुंचा। नादिर के नाम का खुत्वा पढ़ा गया तथा सिक्के जारी किए गए। मुग़ल राज्य समाप्त हो गया और फारसी राज्य आरम्भ हो गया।

22 मार्च को दिल्ली में यह अफवाह फैल गई कि नादिरशाह की मृत्यु हो गई है। नगर में विद्रोह हो गया और नादिर के 700 सैनिक मार दिए गए। इस पर नादिरशाह ने आम नर-संहार की आज्ञा दे दी। लगभग 30,000 व्यक्ति हताहत हुए। मुहम्मद शाह की प्रार्थना पर ही यह आज्ञा वापिस ली गई।

12.4.4 नादिरशाह का वापस अपने देश लौटना

नादिरशाह दिल्ली में लगभग दो माह ठहरा और अधिकाधिक लूटने का प्रयत्न किया। समस्त अमीरों और जनता को इसमें अपना योगदान देने को कहा गया। सआदत खां को स्पष्ट कहा गया कि यदि 20 करोड़ रुपया एकत्रित नहीं हुआ तो उसे शारीरिक यातना दी जाएगी। उसने विष खा लिया। सआदत खां के उत्तराधिकारी सफदर जंग ने 12 करोड़ रुपया दिया और नादिरशाह लगभग 30 करोड़ रुपया नकद और सोना, चांदी, हीरे, जवाहरात के अतिरिक्त 100 हाथी, 7,000 घोड़े, 10,000 ऊंट, 100 डोजड़े, 130 लेखपाल, 200 उत्तम लोहार, 100 संगतराश (stone-cutters) और 200 बढ़ई भी ले गया। मुग़ल शासक शाहजहाँ का तख्तेताऊस (peacock throne) जिसका मूल्य एक करोड़ रुपए था, इसे भी ले गया| इसके अतिरिक्त मुगल सम्राट ने अपनी पुत्री का विवाहनादिर शाह के पुत्र नासिरूल्लाह मिर्जा से कर दिया। इसके अतिरिक्त कश्मीर तथा सिन्ध नदी के पश्चिमी प्रदेश, थट्टा का प्रान्त और उसके अधीनस्थ बन्दरगाह भीनादिर शाह को मिल गए। पंजाब के गवर्नर ने नादिरशाह को 20 लाख रुपया वार्षिक कर देना स्वीकार किया और यह भी वचन दिया कि नादिरशाह की सिन्ध के पार सेना कोशिकायत का कोई अवसर नहीं मिलेगा। दूसरी ओर नादिरशाह ने मुहम्मद शाह को पुनः मुग़ल साम्राज्य का सम्राट घोषित कर दिया, एवंखुत्वा पढ़ने और सिक्के चलाने का भी अधिकार लौटा दिया। उसने दिल्ली राज्य को किसी भी प्रकार के कठिन समय में सैनिक सहायता का वचन भी दिया। साथ ही प्रस्थान से पूर्व नादिरशाह ने मुहम्मद शाह को कुछ सुझाव दिए और दिल्ली के लोगों को उसकी आज्ञा मानने का आदेश भी दिया।

12.5 पानीपत का तृतीय युद्ध

अहमदशाह अब्दाली एक अच्छे कुल का अफगान पदाधिकारी था। नादिरशाह उसका बहुत आदर करता था। उसने एक बार कहा भी था कि मैंनेअहमदशाह अब्दाली जैसे चरित्र का व्यक्ति सारे ईरान, तूरान और हिन्दुस्तान में नहीं देखा। 1747 में नादिर शाह का वध कर दिए जाने पर अहमदशाह अब्दाली कन्धार का स्वतन्त्र शासक बन बैठा और उसने अपने सिक्के भी चला दिए। शीघ्र ही उसने काबुल को जीत लिया और आधुनिक अफगान राज्य की नींव रखी। उसने 50,000 सैनिकों की एक सेना एकत्रित की और नादिरशाह के वैध उत्तराधिकारी के रूप में पश्चिमी पंजाब पर अपना दावा किया एवं पंजाब पर लगातार आक्रमण किए|

1748 में उसका पंजाब पर प्रथम आक्रमण, असफल रहा। परन्तु वह इतनी आसानी से हार मानने वाला नहीं था और 1749 में उसने पुनः पंजाब पर आक्रमण किया और पंजाब के गवर्नर मुईनुलमुल्क को परास्त किया। परन्तु 14,000 रुपया वार्षिक कर के वचन देने पर वह लौट गया। नियमित रूप से यह रुपया न मिलने पर उसने 1752 में पंजाब पर तीसरा आक्रमण किया। मुग़ल सम्राट अहमदशाह ने अफगान शासक के आक्रमण के डर से उसे पंजाब तथा सिंध का प्रदेश दे दिया। नवम्बर 1753 में मुईनुलमुल्क की मृत्यु हो गई और पंजाब में अव्यवस्था फैल गई। वज़ीरइमादुलमुल्क ने अदीना बेग खां को पंजाब का सूबेदार नियुक्त कर दिया। अहमदशाह अब्दाली ने इसे पंजाब के काम में हस्तक्षेप बतलाया और नवम्बर 1756 में वह भारतीय सीमाओं का उल्लंघन कर उसमें प्रवेश कर गया। जनवरी 1757 में उसने

दिल्ली में प्रवेश किया और मथुरा और आगरा तक लूटमार की। अपनी वापसी से पहले अहमदशाह अब्दाली भारत में आलमगीर द्वितीय को मुग़ल सम्राट, इमादुलमुल्क को उसका वजीर और रुहेला सरदार नजीबुद्दौला को साम्राज्य का मीर बख्शी और अपना मुख्य ऐजन्ट बना कर वापिस अपने प्रदेश चला गया।

12.5.1 पानीपत के युद्ध के कारण

1.पानीपत के युद्ध के कारण एक दशक पूर्व ही निर्धारित हो चुके थे। मुगल शक्ति विखंडित हो चुकी थी और उत्तर भारत में एक राजनीतिक शून्य की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इस राजनीतिक शून्य की स्थिति को अहमदशाह अब्दाली के निरंतर आक्रमणों ने और भी पेचीदा बना दिया। 1752 ई. में मराठे और मुगल वजीर सफदरजंग के बीच एक समझौता हुआ था। इसके अनुसार मराठों को पंजाब, सिंध और दोआब में जागीर प्रदान की जानी थी। बदले में मराठों को मुगल साम्राज्य के बाह्य आक्रमण से रक्षा करनी थी। माना जाता है कि यह संधि स्वीकृत नहीं हो सकी क्योंकि मुगल बादशाह को यह मंजूर नहीं था। किन्तु मराठे उत्तर भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए कृत संकल्प थे।

2.1757 ई. में अपने आक्रमण के मध्य अहमदशाह अब्दाली नेआलमगीर द्वितीय को मुग़ल बादशाह व मुगल दरबार में रूहेला सरदार नजीबुद्दौला को मीर बख्शी और अपने व्यक्तिगत एजेंट के तौर पर स्थापित किया। जब अहमदशाह अब्दाली वापस लौट गया तो मुगल वजीर इमादउलमुल्क ने मराठों से यह अपील की कि नजीबुदौला को मुग़ल राजनीति के केंद्र से हटाया जाय | अतःमार्च 1858 में पेशवा रघुनाथ राव दिल्ली पहुंचा और उसने दिल्ली से नजीबुद्दौला को खदेड़ दिया। फिर मराठे पंजाब की तरफ बढ़े और अहमदशाह अब्दाली के उत्तराधिकारी तैमूर को भी पंजाब से बाहर कर दिया। फिर आदिनावेग को पंजाब का गवर्नर नियुक्त किया गया और जब आदिनावेग की मृत्यु हो गयी तो सवाजी सिंधिया पंजाब का नया गवर्नर नियुक्त हुए। इधर गाजीउद्दीन ने आलमगीर द्वितीय की आँखे निकालकर सत्ता से च्युत कर दिया। इस तरह उत्तर भारत में अहमदशाह अब्दाली द्वारा किया गया समस्त राजनीतिक प्रबंध टूट गया था। अतः अहमदशाह अब्दाली का क्रुद्ध होना स्वभाविक था ।

3.नजीब एवं बंगश पठानों ने भी अहमदशाह अब्दाली से यह अपील की कि वह भारत आकर अपनी बनायीं हुई पुरानी व्यवस्था को स्थापित करें | अतः पठानों एवं रूहेलों से प्रतिबद्ध और एक कट्टर मुस्लिम होने के कारण वह मराठों के अपने सहधर्मियों के विरूद्ध अभियानों का विरोधी था। अहमदशाह अब्दाली को अवध के नवाब शुजाउद्दौला और रूहेला सरदार हाफीज रहमत खाँ एवं सादुल्ला खाँ का भी समर्थन प्राप्त हुआ। अतः 1759 ई. में अब्दाली ने भारत की ओर कूच किया।

12.5.2 पानीपत का तृतीय युद्ध (1761)

1759 ईस्वी में अहमदशाह अब्दाली एक विशाल सेना लेकर भारत पर आक्रमण करने के लिए बढ़ा| पंजाब में सावाजी सिंधिया और दत्ताजी सिंधिया दोनों ने उसके मार्ग को रोकने की कोशिश की परंतु सफलता नहीं मिली।

दिल्ली के पास एक युद्ध में दत्ता जी मारे गए। रघुनाथ राव और मल्हार राव होल्कर ने भी अब्दाली का मार्ग अवरूद्ध करना चाहा परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। जब इस घटना की सूचना पेशवा बालाजी बाजीराव को मिली तो उसने अपने पुत्रविश्वासराव और चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊ की अध्यक्षता में उसका सामना करने के लिए विशाल सेना दिल्ली की ओर भेजी। लतीफ के अनुसार भाऊ की सेना में 3 लाख और अब्दाली की सेना में 91 हजार सैनिक थे। गायकवाड, सिन्धिया तथा होल्कर भी अपनी सेनाओं सहित सहायतार्थ चल पड़े। पानीपत के मैदान में दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने आक्रमण की प्रतीक्षा करती रहीं। अन्त में रसद के अभाव में मराठों ने 14 जनवरी, 1761 को सुबह 9 बजे अब्दाली की सेना पर आक्रमण कर दिया। कई घण्टों तक चले घमासान युद्ध के दौरान12 बजे दोपहर को पेशत्रा का ज्येष्ठ पुत्र विश्वासराव लड़ता हुआ मारा गया। सदाशिवराव भी हाथी से कूदकर युद्ध करने लगा और वीर-गति को प्राप्त हुआ। दोनों सेनापतियों की मृत्यु से मराठा सेना में भगदड़ मच गई और नेतृत्व के अभाव में सैनिक युद्ध-स्थल से भागने लगे। अब्दाली की सेना ने मराठा सेना का पीछा किया और उनके शिविर को बुरी तरह लूटा। इस प्रकार पानीपत के युद्ध में मराठों कीपराजय हुई और विजयमाला अब्दाली के गले में पड़ी। इस युद्ध ने मराठों की रीढ़ तोड़ दी। महाराष्ट्र में कोई ऐसा घर नहीं बचा था, जिसका कोई लाल इस युद्ध में काम न आया हो।

अहमदशाह अब्दाली ने 20 मार्च, 1761 को दिल्ली छोड़ने से पहले पुनः शाह आलम को मुग़ल सम्राट, नजीबुद्दौला को उसका मीरबख़्शी और इमादुलमुल्क को उसका वज़ीर नियुक्त किया। अहमदशाह अब्दाली का अन्तिम आक्रमण 1767 में हुआ। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों से मुग़ल साम्राज्य के पतन की गति और भी तेज हो गई। उसके बार-बार आक्रमण करने से मुगल साम्राज्य का खोखलापन और भी स्पष्ट हो गया और देश में अराजकता और गड़बड़ी फैल गई। मुग़ल सम्राट की शक्तिहीनता का उदाहरण यह था कि सम्राट शाहआलम द्वितीय बारह वर्ष तक दिल्ली में प्रवेश नहीं कर सका और केवल मराठा सेना ही 1772 में उसे दिल्ली ला पाई और सिंहासन पर बैठाया। रुहेला सरदार नजीबुद्दौला, उसके पश्चात उसका पुत्र जाब्ता खां और फिर उसका पोता गुलाम कादिर दिल्ली के एकमात्र स्वामी थे। 30 जुलाई, 1788 को गुलाम कादिर ने राजमहल में प्रवेश कर शाहे आलम को सिंहासन से उतार उसकी आंखें निकलवा दीं, परन्तु अक्टूबर 1788 में महादजी सिंधियाने पुनः सम्राट की ओर से, दिल्ली पर अधिकार कर लिया और फिर 1803 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और शाह आलम कम्पनी का पेन्शनर बन गया।

12.5.3 पानीपत युद्ध में मराठों की विफलता के कारण

पानीपत के तीसरे युद्ध में अफगानों के विरुद्ध मराठों की पराजय के निम्नलिखित कारण थे :

12.5.3.1 मराठाओं द्वारा अपनी पुरानी युद्ध रणनीति का त्याग

बालाजी बाजीराव के समय तक मराठों ने युद्ध की पुरानी तकनीकी तथा पुरानी गतिशीलता छोड़ दी। अब मराठा सेना मुगल सेना के निकट आ गई थी। मराठों के सैन्य बल में बड़ी संख्या में महिलायें भी मौजूद थीं।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि पानीपत के तीसरेयुद्ध में मराठों की पराजय का प्रमुख कारण छापामार रणनीति का परित्याग था। परन्तु इतिहासकार सर देसाई इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते। उनका कथन है कि छापामार रणनीति का प्रयोग उत्तरी भारत के मैदानों में नहीं किया जा सकता था। इस नीति का प्रयोग केवल महाराष्ट्र के पर्वतीय प्रदेशों के लिए उपयुक्त था। अतः मराठों को विवश होकर पाश्चात्य रणनीति को ही अपनाना पड़ा जिसकेसम्बन्ध में वे पूर्ण रूप से परिचित नहीं थे। अतः उन्हें पराजय का आलिंगन करना पड़ा।

12.5.3.2 मराठाओं मेंपारस्परिक कलह एवं मराठा सेनापतियों की भूलें

मराठों की पराजय काकारण उनकी पारस्परिक कलह थी। शाहू की मृत्यु के पश्चात् मराठों में पारस्परिक कलह प्रारंभ हो गई थी। ताराबाई ने पेशवा का विरोध किया था। सतारा और कोल्हापुर के छत्रपतियों में भी मतभेद था। राजपूत नीति पर सिन्धिया और होल्कर में मतभेद पैदा हो गया था। इसके अतिरिक्त मराठा सेनापतियों की भूलें भी मराठाओं की पराजय का कारण बनीं। सदाशिव ने युद्ध करने में देर की। उसने आक्रमण तब किया जब उसके पास रसद का अभाव हो गया तथा सेना भूख से बेचैन थी। इसके अतिरिक्त विश्वासराव की मृत्यु के बाद सदाशिवराव हाथी से कूदकर साधारण सैनिक की भाँति युद्ध करने लगा। इससे हाथी को खाली देखकर मराठा सैनिक निराश हो गये तथा अब्दाली के सैनिकों का उत्साह बढ़ गया। इसके अतिरिक्त मराठों की सेना में विशालता आ गई थी जिसके कारण शीघ्रता से इधर-उधर नहीं हट सकती थी और न तेजी से शत्रु पर आक्रमण ही कर सकती थी। फलतः मराठों की सेनाओं को अब्दाली की सेना के सम्मुख पराजित होना पड़ा।

12.5.3.3अफगानों का संगठनएवं नवीन युद्ध तकनीकी का प्रयोग

अफगानों के पास मराठों की तुलना में बेहतर हथियार थे । मराठे अब भी लगभग तलवार और भाले जैसे परंपरागत हथियारों पर ही निर्भर थे, जबकि अफगानों ने **Flint-lock**तकनीकी पर आधारित बंदूकों का प्रयोग शुरू कर दिया था।

12.5.3.4अन्य कारण

1. उत्तर भारत में मराठा शक्ति के द्वारा निरंतर धनदोहन करने के कारण उत्तर भारत की लगभग सभी शक्तियां मराठों से विक्षुब्ध हो गयीं थीं।

2. बालाजी बाजीराव के काल तक मराठों ने हिन्दू पदपादशाही का नारा छोड़ दिया था। इसके कारण हिन्दू शक्तियों का समर्थन भी इसे प्राप्त नहीं हुआ।

3. मराठा नेताओं ने कूटनीतिक योग्यता भी नहीं दिखाई। उन्होंने अवध और रूहेला राज्य के बीच विद्यमान मतभेद का लाभ नहीं उठाया और फिर ये दोनों राज्य मराठों के विरूद्ध ही खड़े हो गए।

4. मराठों ने युद्ध मैदान का चयन भी गलत किया। मल्हार राव होल्कर का यह सुझाव था कि युद्ध मैदान का चयन मध्य भारत में किया जाना चाहिए किन्तु इस पर न हो सका।

12.5.4 पानीपत के तृतीय युद्ध के परिणाम

पानीपत का तृतीय युद्ध भारत में निर्णायक युद्धों में एक था किन्तु इसने यह निर्णीत नहीं किया कि भारत पर कौन शासन करने जा रहा है वरन् यह सिद्ध कर दिया कि भारत पर कौन शासन नहीं करने जा रहा है। मराठों के भाग्य पर इस युद्ध के प्रभाव के विषय में इतिहासकारों में भिन्न-भिन्न मत हैं। मराठा इतिहासकारों को विश्वास है कि मराठों ने 75 हजार सैनिकों के अतिरिक्त राजनीतिक महत्व का कुछ भी नहीं खोया। अब्दाली को भी विशेष लाभ नहीं हुआ। **जी.एस. सरदेशाई** लिखते हैं कि युद्ध स्थल में मराठों के सैन्य बल को बहुत अधिक क्षति हुई। इसके अतिरिक्त इस युद्ध ने कुछ भी निर्णय नहीं किया। इस जाति के दो प्रमुख व्यक्तियों नाना फड़नवीश तथा महादाजी सिंधिया, जो भाग्य से इस घातक दिन मृत्यु के हाथों बच गए थे, मराठों की शक्ति को पुनर्जीवित कर दिया तथा पुनः इसके भाग्य को पूर्णरूपेण चमकाया। पानीपत के युद्ध के पश्चात् ही मराठा शक्ति पहले की भाँति उभरने लगी तथा आने वाले 40 वर्षों में वह पुनः एक महत्वपूर्ण शक्ति बन गयी।

दूसरी ओर **यदुनाथ सरकार** का मत है कि मराठों के इतिहासकारों की एक परंपरा बन गयी है कि पानीपत के युद्ध के परिणामोंको घटाकर दिखाया जाय। इस तरह हम देखते हैं कि पानीपत के युद्ध ने निश्चय ही भारतीय राजनीतिक क्षेत्रों में मराठा प्रतिष्ठा को ठेसपहुँचायी। मराठों का समस्त भारत पर राज्य बनाने का स्वप्न टूट गया। यह सत्य है कि 1772 ई. में और 1789 ई. में मराठों ने मुगल सम्राटको पुनः संरक्षण दिया परंतु उन्होंने पंजाब तथा मुल्तान को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया तथा न ही सीमा संरक्षक की भूमिका निभाने की बात सोची। पानीपत की लड़ाई के बाद ब्रिटिश एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरने लगे। दूसरी तरफ पंजाब में एक पृथक राज्य का निर्माण हुआ।

इस युद्ध के परिणाम निम्न प्रकार से रहे -

12.5.4.1 अपार जन-क्षति

इस युद्ध में मराठों की बहुत अधिक जन-क्षति हुई।अनुमानतः मराठों के एक लाख सैनिक मारे गये। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इस युद्ध में मराठा-जाति के एक पीढ़ी का अन्त हो गया। इस युद्ध में मराठों की जन-क्षति के सम्बन्ध में यदुनाथ सरकार ने लिखा है, "इस युद्ध में सम्पूर्ण मराठा-जाति पर विपत्ति टूट पड़ी और महाराष्ट्र में ऐसा एक भी घर नहीं था,जिसमें एक सदस्य की और कुछ में प्रधान की क्षति पर शोक न मनाया गया हो।"मराठों की पराजय का आघात बालाजी बाजीराव के हृदय पर इतना अधिक लगा कि पाँच महीने के भीतर ही 23 जून, 1761 को उनका निधन हो गया।

12.5.4.2 उत्तरी भारत से मराठों के प्रभाव की समाप्ति

पानीपत के तीसरे युद्ध में पराजित होने के बाद पंजाब, दोआब आदि प्रदेश मराठों के अधिपत्य से निकल गये। इस प्रकार उत्तरी भारत में मराठों के प्रभाव की समाप्ति हो गई।अतःउनके द्वारा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मराठा साम्राज्य के प्रसार का सपना चूर हो गया।

12.5.4.3 हिन्दू साम्राज्य के स्वप्न का अंत

इस युद्ध ने मराठों अथवा हिन्दुओं की शक्ति का अन्त ही कर दिया, जिससे बहुत समय तक के लिए हिन्दू साम्राज्य के स्थापित करने के स्वप्न का अन्त हो गया।

12.5.4.4 मराठा संघ का अंत

इस युद्ध के परिणामस्वरूप मराठा संघ का अन्त हो गयातथा मराठा सरदारों में पारस्परिक कलह प्रारम्भ हो गई। सिन्धिया, होल्कर तथा गायकवाड़ आदि ने अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये।

12.5.4.5 मुगल साम्राज्य का पतन

इस युद्ध से मुगल साम्राज्य का भी पतन हो गया। मुगल सम्राट केवल नाममात्र के रह गये और चारों ओर स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये।इसके अतिरिक्त पानीपत के तीसरे युद्ध ने यह भी सिद्ध कर दिया कि मुग़लों की शक्ति अपना अस्तित्व खो चुकी थी। जैसा कि हम जानते हैं कि पानीपत के पहले दो युद्धों में मुगलों की भूमिका निर्णायक रही थी जबकि पानीपत के तीसरे युद्ध में, जो मुगलों की दहलीज पर ही लड़ी जा रही थी, मुगलों की कोई भूमिका नहीं थी।

12.5.4.6 क्षेत्रीय शक्तियों का उदय

इस युद्ध में मराठों की विफलता ने मराठा परिसंघ की आंतरिक संरचना को भी प्रभावित किया। एक दृष्टि से यह केन्द्रीकरण की शक्ति तथा क्षेत्रीयतावाद के बीच के संघर्ष को भी उजागर करता है। इस युद्ध में मराठाओं की विफलता के पश्चात् पेशवा के अधीन केन्द्रीकरण का प्रयास धराशायी हो गया तथा फिर होल्कर, सिंधिया, भोंसले तथा गायकवाड़ के अधीन क्षेत्रीय शक्तियों को बल मिला। यह गौर करने की बात है कि 1772 में मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय को दिल्ली की गद्दी पर स्थापित करने वाला शासक पेशवा नहीं अपितु सिंधिया शासक महादजी सिंधिया था।

उसी प्रकारउत्तर पश्चिम में सिक्ख भी एक लम्बे काल से राज्य निर्माण के लिए प्रयासरत थे। पानीपत के युद्ध के पश्चात् जो उत्तर पश्चिम में एक राजनीतिक शून्य की स्थिति उत्पन्न हुई थी, उसे भरने के क्रम में सिक्ख राज्य की स्थापना हुई। 1764 में सिक्खों के द्वारा शुद्ध चांदी के सिक्के जारी किए गए तथा स्वतंत्र राज्य की स्थापना की घोषणा की गई। इस प्रकार पानीपत के तीसरे युद्ध का लाभ न तो मराठों को और न ही अफगानों को प्राप्त हुआ वरन् ब्रिटिश एवं सिक्खों को मिला।

12.5.4.7 अंग्रेजों का उत्कर्ष

मराठों की पराजय से अंग्रेजों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर प्राप्त हो गया। मराठों और मुसलमानों के आपसी भीषण संघर्षों ने दोनों को ही निर्बल बनाकर अंग्रेजों के लिए भारतीय प्रभुसत्ता की प्राप्ति के द्वार खोल दिए | इस युद्ध के परिणामस्वरूप क्षेत्रीयतावादी ताकतें भी पूर्णतः सफल नहीं हो सकीं वरन् शीघ्र ही ब्रिटिश के अधीन औपनिवेशिक

संबंधों पर आधारित एक केन्द्रीयकृत सत्ता का उत्थान हुआ। इस युद्ध के तीन वर्षों के पश्चात् ही बक्सर के युद्ध में ब्रिटिश कम्पनी को भारत की तीन संयुक्त शक्तियों के विरूद्ध सफलता मिली। उत्तर भारत में मराठा शक्ति की अनुपस्थिति ने ब्रिटिश कम्पनी की प्रगति का मार्ग खोल दिया था।

12.6 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुग़ल शक्ति उसके अयोग्य शासकों की वजह से इतनी कमजोर हो गई थी कि इसका फायद न केवल मुग़ल सूबादारो ने उठाकर अपने- अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र शासन सत्ता स्थापित कर ली अपितु मराठा शक्ति ने भी अपनी शक्ति को दक्षिण भारत से बढाकर उत्तर भारत तक करने का प्रयास किया जिसके फलस्वरूप मुग़ल एवं मराठाओं के मध्य संघर्ष होना स्वाभाविक था | खंडित हो चुके मुग़ल साम्राज्य के पतन पर नादिरशाह एवं अहमदशाह के आक्रमणों ने अंतिम मोहर लगा दी | अहमदशाह अब्दाली एवं मराठाओं के मध्य हुए पानीपत के तृतीय युद्ध का एक दिलचस्प पहलू यह था कि यह युद्ध मुगलों की दहलीज (पानीपत) पर लड़ा जा रहा था किन्तु इसमें मुगलों की कोई भूमिका नहीं थी। इसका अर्थ है कि इस काल तक मुगल शक्ति अपना अस्तित्व खो चुकी थी।

12.7 तकनीकी शब्दावली

पेशवा –मराठा शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलने के लिए प्रधानमंत्री के रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति, जो आगे चलकर मराठा शक्ति का सर्वोच्च केंद्र बन गया |

वजीर –मुग़लों का प्रधानमंत्री|

मीरबक्शी –मुग़लों का मुख्य सेना अधिकारी|

12.8 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. पानीपत के तृतीय युद्ध के समय मुग़ल शासक कौन था ?

(अ). नादिरशाह (ब). बहादुर शाह

(स).शाहआलम द्वितीय (द). अहमदशाह

2. शाहआलम द्वितीय को दिल्ली की गद्दी पर किस शासक ने स्थापित किया था |

(अ). बालाजी बाजीराव (ब).महादजी सिंधिया

(स). सदाशिव राव (द). मल्हार राव होल्कर

3. पानीपत के तृतीय युद्ध के समय पेशवा कौन थे ?

(अ). बाजीराव प्रथम (ब). बाजीराव द्वितीय

(स). बालाजी बाजीराव (द). नाना साहब

12.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (स), 2.(ब), 3. (स)

12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. चन्द्र, सतीश., मध्यकालीन भारत सल्तनत से मुग़ल काल तक (दिल्ली सल्तनत 1526-1761).

2. ग्रोवर, मेहता एवं यशपाल., आधुनिक भारत का इतिहास, एक नवीन मूल्यांकन 1707 ईस्वी से आधुनिक काल तक, नई दिल्ली, 36 वां संस्करण- 2018.

3. लूनिया, बी. एन., मराठा प्रभुत्व (भाग 1- 3).

4. रानाडे, महादेव गोविंद., **राइज ऑफ दि मराठा पॉवर, महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित, 2012.**

5. https://www.egyankosh.ac.in/handle/123456789/21798

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. औरंगजेब के पश्च्यातउत्तरकालीन मुग़ल राजनीति का विस्तार से वर्णन कीजिए|

2. पानीपत के युद्ध के कारण एवं परिणामों का उल्लेख कीजिए|

3. नादिरशाह के भारत पर आक्रमण के कारण एवं प्रभावों का मूल्यांकन कीजिए|

इकाई तेरह : मुग़ल साम्राज्य का पतन

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 राज्य के रूप में मुग़ल साम्राज्य की प्रकृति
13.3 केंद्रीकृत राज्य आधारित व्याख्याएँ
13.3.1 अयोग्य उत्तराधिकारी
13.3.2 हिंदुओं का विद्रोह
13.3.3 जागीरदारी संकट
13.3.4 कृषिगत संकट
13.4 क्षेत्र-आधारित व्याख्याएँ
13.4.1 संशोधनवादी व्याख्याएँ
13.4.2 ग्रेट फ़र्म सिद्धांत
13.5 विभिन्न व्याख्याओं की समीक्षा
13.6 सारांश
13.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
13.8 शब्दावली
13.9 संदर्भस्रोत

13.0 प्रस्तावना

मध्यकालीन विश्व के इतिहास में तीन साम्राज्यों का विशेष रूप से उदय हुआ, ईरान का सफ़वी साम्राज्य, तुर्की का उस्मानली साम्राज्य और भारत का मुग़ल साम्राज्य। हाल के समय में विद्वानों ने इन साम्राज्यों के उदय और पतन को लेकर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किए हैं।मार्शल जी एस हॉज़सन और विलियम मैकनील ने इन साम्राज्यों को 'गन-पाउडर' साम्राज्यों के रूप में चिह्नित किया है, अर्थात् ये साम्राज्य अपनी सत्ता के लिए गोला-बारूद के इस्तेमाल पर निर्भर थे। वहीं इनकी विशिष्ट भू-राजस्व व्यवस्थाओं और प्रशासनिक प्रणालियों की ओर भी अन्य विद्वानों ने ध्यान आकर्षित किया है, जिन पर ये साम्राज्य बहुत हद तक निर्भर थे।इन साम्राज्यों को देखने के इन विभिन्न परिप्रेक्ष्यों ने ही इनके पतन की व्याख्याओं को भी प्रभावित किया है। भारत के इतिहास में मुग़ल साम्राज्य लगभग तीन सदी तक

अस्तित्व में रहा, किंतु 1707 में औरंग़ज़ेब की मृत्यु के बाद इस साम्राज्य की भव्यता और वैभव कमज़ोर पड़ने लगे।1739 में नादिरशाह के आक्रमण ने साम्राज्य की शक्ति के भ्रम को भी तोड़ कर रख दिया। अठारहवीं सदी की शुरुआत से ही हमें क्षेत्रीय शक्तियों के उदय के प्रमाण मिलने लगते हैं। अवध में नवाबों का उदय, हैदराबाद की निज़ामशाही, बंगाल में स्वतंत्र निज़ामत और इसी तरह दक्कन और पश्चिमी भारत में मराठे, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में रूहेले और बंगश पठान और पंजाब में सिक्खों का स्वतंत्र सत्ता के रूप उदय हुआ। अठारहवीं सदी की वे क्या परिस्थितियाँ थीं, जिनके कारण इस साम्राज्य का पतन हुआ, इसका इस इकाई में अध्ययन किया जाएगा। विभिन्न विद्वानों के इस सम्बंध में जो व्याख्याएँ पेश की हैं, उन पर चर्चा की जाएगी। एक तरफ़ तो विद्वानों का वह समूह है जो यह मानकर चलता है कि मुग़ल साम्राज्य अत्यंत केंद्रीकृत स्वरूप का था और इससे उत्पन्न समस्याओं ने साम्राज्य का अंत कर दिया है, दूसरी ओर विद्वानों का अन्य समूह है जो मुग़ल साम्राज्य को शुरुआत से ही एक ढीली-ढाली संरचना के रूप में देखता है और जैसे ही क्षेत्रीय उभार हुआ, मुग़ल साम्राज्य का भव्य आभासी-छत्र हवा में ग़ायब हो गया। यद्यपि इन दोनों ही प्रकार के विद्वानों के समूहों के भीतर ही पतन की व्याख्या काफ़ी विविधता लिए हुए है, जिसका अध्ययन इस इकाई में किया जाएगा।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- मुग़ल साम्राज्य की प्रकृति के विषय में जान पाएँगे;
- मुग़ल साम्राज्य के पतन के सम्बंध में विभिन्न इतिहासकारों के दृष्टिकोणों को समझ पाएँगे;
- अठारहवीं सदी के भारत की परिस्थितियों का संक्षिप्त अवलोकन कर पाएँगे।

13.2 राज्य के रूप में मुग़ल साम्राज्य की प्रकृति

मुग़ल साम्राज्य की प्रकृति को लेकर इतिहासकारों के बीच काफ़ी दिलचस्प बहस रही है। यहाँ मुग़ल साम्राज्य की प्रकृति पर चर्चा इसलिए की जा रही है कि आप समझ सकें कि किस तरह इतिहासकार इस साम्राज्य के पतन को राज्य के ढाँचे से जोड़कर देखते है- क्या यह राज्य सुव्यवस्थित ढंग से केंद्रीकृत और शक्तिशाली था ? या, यह क्या मात्र एक 'काग़ज़ी शेर' था जिसकी छत्रछाया में स्थानीय और क्षेत्रीय तत्व हमेशा प्रभावी रूप से मौजूद थे? क्या यह एक आततायी धर्मतंत्र मात्र था या एक परस्पर सुलह की नीति पर आधारित राज्य था?

औपनिवेशिक ब्रिटिश इतिहासकारों के समय से ही मुग़ल साम्राज्य को सर्वसत्तावादी राज्य के रूप में देखा जा रहा था, औपनिवेशिक अधिकारियों ने मुग़ल साम्राज्य को 'एक निरंकुश' राज्य के रूप में पेश किया, जो बादशाह के व्यक्तित्व और सैन्य-बल पर अत्यधिक निर्भर था। चूँकि ब्रिटिश साम्राज्य की दिलचस्पी भू-राजस्व में थी, इन ब्रिटिश अधिकारियों ने मुग़ल राजस्व प्रणाली के अध्ययन में गहरी दिलचस्पी दिखाई और यह तर्क रखा कि मुग़ल राजस्व

प्रणाली केंद्रीकृत स्वरूप की थी।मार्क्स की शुरुआती टिप्पणियाँ भी मुग़ल साम्राज्य को 'प्राच्य-निरंकुशता' के उदाहरण के रूप में पेश करती हैं। भारत में मुग़ल काल का अध्ययन करने वाले राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भी मुग़ल साम्राज्य की सु-केंद्रित प्रशासनिक प्रणाली के बारे में तर्क रखे, यद्यपि उनमें से कई विद्वानों ने निरंकुश मुग़ल शासकों के आततायी और धार्मिक रूप से कट्टर शासन को उजागर करने पर अपना ध्यान केंद्रित किया। वहीं मार्क्सवादी इतिहासकार मुग़ल साम्राज्य की राजस्व प्रणाली पर ध्यान केंद्रित करते हुए इसके शोषक चरित्र को अतिरेक की सीमा तक सामने लाए हैं, इनका मानना है कि मुग़ल राज्य आधारभूत रूप से एक अधिग्रहणकारी राज्य था, जो किसानों से सारा अधिशेष वसूल लेता था और उन्हें मात्र निर्वाह की स्थिति में छोड़ दिया जाता था, इस अधिशेष का उपयोग कुलीन वर्ग द्वारा विलासिता में किया जाता था।अलीगढ़ दृष्टिकोण के रूप में विख्यात इन इतिहासकारों का मत मुग़ल साम्राज्य को एक सुव्यवस्थित केंद्रीकृत प्रणाली मानता है, जिसमें अंतर्निहित समस्याओं ने इसके पतन को अवश्यंभावी बना दिया था।

हालाँकि, 1970 के दशक के बाद से, इतिहासकारों के एक नए समूह की बदौलत भारत में साम्राज्य की प्रकृति के बारे में बहस ने नई दिशा ग्रहण कर ली है। उन्होंने साम्राज्यिक संस्थानों के बारे में अलीगढ़ दृष्टिकोण के प्रतिष्ठितविचार पर सवाल उठाया, यह तर्क देते हुए कि पूर्व-आधुनिक समाजों ने जिस बिखरे हुए और विखंडित ढंग से कार्य किया, उसने न केवल भारत में बल्कि पूर्व आधुनिक दुनिया के अन्य हिस्सों में भी मजबूत केंद्रीकृत संस्थानों की संभावना ख़ारिज़ हो जाती है।

स्टीफन ब्लेक ने मुगल राज्य का विश्लेषण एक पैतृक-नौकरशाही वाले साम्राज्य के रूप में किया है। प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में अधिकारीबादशाह की इच्छानुसार कार्य करते थे।बादशाह के प्रति एक निश्चित वफादारी और निष्ठा प्रदर्शित करने वाले अधिकारियों के वर्ग कोराज्य के राजस्व का एक बड़ा भाग सौंपा गया था। समय के साथ, इस प्रणाली के कारण सम्राट के पास मौजूद शक्ति कम होजाती थी। इसलिए, राज्य के अधिकारियोंद्वारा शक्ति बढ़ाने के प्रयासोंपर सम्राट द्वारानियंत्रण और संतुलन रखा गया था, उदाहरण के लिए, अधिकारियों की समय-समय पर बदली की जाती थी, जिसके साथ ही सीधे सम्राट को सूचना देने वाले जासूसीअमलों का एक विशाल नेटवर्क भी था।बादशाह और प्रजा के बीच पितृसत्तात्मक सम्बंधों को पुष्ट करने वाले विस्तृत नियम दरबार और तख़्त को नियंत्रित करते थे।

1980 के दशक के अंत में आंद्रे विंक ने अपने अध्ययन में राज्य गठन में चली प्रक्रियाओं को समझने पर ज़ोर दिया। उन्होंने पूर्व-आधुनिक राज्यों के निर्माण में गठबंधन बनाने और तोड़ने की प्रक्रियाओं के महत्व को बताया है, उपहारों के आदान-प्रदान, वैवाहिक गठबंधन, दावतों का आयोजन और बातचीत के अन्य अनौपचारिक नेटवर्क के साथ-साथ, संघर्ष और टकराव को राज्य को आकार देने के लिए महत्वपूर्ण गतिविधियों के रूप में देखा है।इस तरह की व्याख्या मुग़ल राज्य को किसी सुव्यवस्थित ढाँचे के बजाय एक प्रक्रिया मानती है।

कैम्ब्रिज दृष्टिकोण वाले इतिहासकारों के रूप में विख्यात विद्वानों ने राज्य को मात्र राजकोषीय-प्रशासनिक उपकरण के रूप में देखने की आलोचना की है। सी. ए. बेयली का यह मानना है कि राज्य की एजेंसी पर दिए गए अत्यधिक बल के कारण व्यावसायिक समुदायों और प्रबल क्षेत्रीय तत्वों की अनदेखी कर दी गई है। इस राज्य-व्यवस्था में मध्यस्थों और संरक्षक-संरक्षित सम्बंधों का अत्यंत महत्व था।

हाल ही में, फ़रहत हसन द्वारा किए गए अध्ययन में मुगल राज्य को किसी केंद्रीकृत, एकीकृत या पितृसत्तात्मक-नौकरशाही के खाँचे में नहीं रखा गया है, इसके बजायमुगल सत्ता को स्थानीय अभिजात्यों के साथ दिन-प्रतिदिन की अंतःक्रिया का परिणाम माना गया है। साम्राज्य का स्थानिक तत्वों से गठबंधन और संबंध ही मुगलों की शक्ति के स्रोत को बनाए रखता था। अभिजात्य घराने राज्य के प्राधिकारियों के अधीनस्थ नहीं थे। वे राज्य के अधिकारियों द्वारा उनके उत्पीड़न के ख़िलाफ़ तथा राज्य तक अपनी माँग पहुँचाने के लिए कई तरह की युक्तियाँ अपनाते थे।

डगलस ई. ब्रूसैंड जैसे इतिहासकारों ने एक नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया है जिसे मिश्रित इस्लामी प्रशासन सिद्धांत कहा जाता है। इस सिद्धांत के मुताबिकसाम्राज्य नियंत्रित क्षेत्र में प्रशासन ऊपर से आरोपित होता था, जबकि प्रांतीय स्तर पर स्थानीय रूप से विकसित प्रशासन अस्तित्व में बना हुआ था।

बादशाहों के संरक्षण में मुग़ल दरबार में समकालीन इतिहासकारों की इतिहासलेखन की पद्धति हो या विभिन्न क्षेत्रों में विजय प्राप्त कर सत्ता की उद्घोषणा की सामान्य प्रवृत्ति, यथा 'काफ़िर' और 'कुफ़्र' जैसे संदर्भ, मुग़ल राज्य के धर्म-प्रचार की इच्छा को दर्शाती हैं। लेकिन प्रश्न यह है कि किस हद तक इस्लाम राज्य के कार्य-संचालन में संस्थागत रूप से शामिल था। इतिहासकार हरबंस मुखिया के अनुसार प्रजा के इस्लाम में धर्मांतरण और अलग-अलग बादशाहों की अपने शासनकाल में सहिष्णुता की प्रकृति के आधार पर इसका आकलन किया जाना चाहिए। मुगलों द्वारा शासित केंद्रीय क्षेत्रों में भी कभी मुस्लिम जनसंख्या का अनुपात 15 प्रतिशत से अधिक नहीं रहा था। किसी ठोस साक्ष्य के अभाव में मुगल राज्य को एक धर्मतंत्रीय व्यवस्था के रूप में चिह्नित करना अतिरेक ही होगा।मुगल शासनकाल में इस्लाम एक वैधता प्रदान करने वाला तत्व था लेकिन यह केवल एकमात्र तत्व नहीं था। केंद्रीय सत्ता को वैधता प्रदान करने के लिए कई अन्य युक्तियाँ भी इस्तेमाल की गई थीं। उदाहरणार्थ, अकबर के शासनकाल के दौरान बादशाह द्वारा सुलह-ए कुल का नया सिद्धांत विकसित किया गया।जहां इस्लाम ने शासकों को एक पहचान प्रदान की, वहीं एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था के आधार पर शासन को चलाया जाता था जिसमें शक्ति और संसाधनों की समाज के विभिन्न तबकों के बीच साझेदारी होती थी।इस प्रकार हम देखते हैं कि मुग़ल काल में राज्य की प्रकृति को समझने के लिए इतिहासकारों ने विभिन्न दृष्टिकोणों का उपयोग किया गया है। राज्य की प्रकृति की इस समझ ने ही साम्राज्य के पतन के सम्बंध में उनकी व्याख्याओं को प्रभावित किया है। अगले खंड में हम मुग़ल साम्राज्य के पतन के सम्बंध में इन इतिहासकारों की व्याख्याओं का अवलोकन करेंगे।

13.3 केंद्रीकृत राज्य आधारित व्याख्याएँ

मुग़ल राज्य को केंद्रीकृत राज्य के रूप में देखने वाले इतिहासकारों की शुरुआत ब्रिटिश-कालीन अधिकारियों के समय से ही हो गई थी। चूँकि इनका मानना था कि बादशाह का व्यक्तित्व और प्रशासनिक प्रणाली ही राज्य की मज़बूती का आधार थी, अतः इनकी व्याख्या इनकी असफलता को केंद्र में रखती है।शुरुआती तौर पर मुग़लों का विस्तृत इतिहास लिखने वाले विलियम इरविन और जदुनाथ सरकार ने मुग़लों के पतन के लिए बादशाहों की नीतियों और व्यक्तिगत चरित्र को ज़िम्मेदार ठहराया। इसके बाद बहुत से राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने मुग़ल राज्य को धर्म-केंद्रित व्यवस्था के रूप में भी देखा जिसके कारण हिंदू जनसंख्या ने अलगाव महसूस किया और अंततः विद्रोह कर दिया; मार्क्सवादी इतिहासकारों ने राज्य की प्रशासनिक प्रणाली की असफलता और शोषणकारी चरित्र के फलस्वरूप पैदा हुए विद्रोहों को पतन का ज़िम्मेदार माना है।

13.3.1अयोग्य उत्तराधिकारी

विलियम इरविन और जदुनाथ सरकार ने औरंग़ज़ेब और उसके उत्तराधिकारियों को ही मुख्यतः साम्राज्य के पतन का कारण माना है. इन इतिहासकारों का विशेष रूप से मानना है कि मुग़लों की विलासिता, शराबख़ोरी और सैन्य रूप से अक्षम होने के कारण वे अपने मनसबदारों और जागीरदारों को नियंत्रण में रखने में असफल रहे थे. वे राजाओं और अमीरों के व्यक्तिगत पतन और प्रशासन की अकुशल कार्यप्रणाली के परिणामस्वरूप उत्तरकालीन मुगलों के अधीन मुगल साम्राज्य के पतन की व्याख्या करते हैं।। जदुनाथ सरकार ने इस संबंध में शाहआलम द्वितीय के एक पत्र का हवाला दिया है जो उसने ब्रिटिश गवर्नर जनरल को लिखा था और जिसमें विनती की गई थी कि उसके लिए 2 मन पटना की बढ़िया अफ़ीम भेज दी जाए। लेकिन यह सिद्ध करना बहुत मुश्किल है कि 16 वीं और 17 वीं शताब्दी के मुगल शासक 18 वीं शताब्दी के अपने उत्तराधिकारियों से कितने कम ऐयाश थे? अफ़ीम, शराब और दूसरी नशे वाली चीजें मुगल सम्राटों और मुग़ल उमरा में सदा से प्रचलित थीं।

13.3.2 हिंदुओं का प्रतिरोध

जदुनाथ सरकार ने विशेष रूप से औरंगजेब की ग़ैर-इस्लामी प्रथाओं को खत्म करने, मंदिरों को नष्ट करने, हिंदुओं पर भेदभावपूर्ण कर लगाने और दक्कन में लंबे समय तक चलने वाले अभियान को मुगल साम्राज्य के पतन के लिए जिम्मेदार माना है। जैसे ही सरकार ने कानून और व्यवस्था के संदर्भ में उस अवधि के विकास क्रम का परीक्षण किया, उन्होंने औरंगजेब को प्रमुख रूप से दोषी माना है। मराठों के विद्रोह की विशेष रूप से इस संदर्भ में व्याख्या की गई है. इसी क्रम में जाट, सतनामी और बुंदेलों के विद्रोहों की व्याख्या भी की गई है।मुग़ल साम्राज्य को राजपूतों के समर्थन का प्रबल आधार हासिल था, विशेष रूप से, औरंग़ज़ेब के राजपूतों के साथ उसके सम्बंधों के बिगाड़ ने मुग़ल राज्य के आधार को कमज़ोर कर दिया, ऐसा इन इतिहासकारों का मानना है।

13.3.3 जागीरदारी संकट

मुग़ल साम्राज्य की प्रशासनिक प्रणाली की कमज़ोरियों और जटिलताओं पर ध्यान केंद्रित करने वाली व्याख्याओं ने व्यवस्थागत और संस्थागत कारणों पर अधिक बल दिया है. 1959 में सतीश चन्द्र की पुस्तक "पार्टिज एंड पॉलिटिक्स एट द मुग़ल कोर्ट, 1707-40 के प्रथम संस्करण का प्रकाशन हुआ। इसमें पहली बार मुग़ल साम्राज्य की संरचना के अध्ययन का गंभीर प्रयास किया गया था। सतीश चन्द्र ने साम्राज्य की कुछ प्रमुख संस्थाओं, मुख्य रूप से मनसबदारी और जागीरदारी व्यवस्था का अध्ययन किया। राज्य के मुख्य अधिकारी मुग़ल कुलीन वर्ग का हिस्सा थे। मुगल पदानुक्रम व्यवस्था में उनके स्थान के अनुसार उन्हें दर्ज़ा प्रदान किया जाता था। ये दर्जे मनसब के रूप में जाने जाते थे। मनसब पाने वालों को मनसबदार कहा जाता था, उन्हें भू-राजस्व (जागीर) के माध्यम से वेतन दिया जाता था।अन्य जिम्मेदारियों के अलावा मनसबदारों को एक फ़ौज भी रखनी पड़ती थी। सैनिकों के वेतन की व्यवस्था और फ़ौज का रखरखाव इस जागीर की आमदनी से ही होता था। ये सैनिक मनसबदार की ताकत के आधार थे और उसे भू-राजस्व वसूल करने में भी मदद करते थे। सतीश चन्द्र के अनुसार औरंगजेब के शासन के अंतिम वर्षों में मुगल प्रशासन मनसबदार-जागीरदार व्यवस्था को बनाए रखने में असफल सिद्ध हुआ। जैसे ही यह व्यवस्था अव्यवस्थित होने लगी वैसे ही साम्राज्य का पतन की ओर अग्रसर हो गया।

मुगल साम्राज्य की स्थिरता के लिएमनसबदार-जागीरदार व्यवस्था का स्पष्ट ढंग से कार्य करते रहना आवश्यक था, मुगल शासक वर्ग कृषि से उत्पन्न सामाजिक अधिशेष पर निर्भर था। अठारहवीं शताब्दी में सामाजिक अधिशेष तथा शासक वर्ग की बढ़ती हुई माँगों के बीच अंतर बढ़ जाने से दोनों का संतुलन समाप्त हो गया। दिन-प्रतिदिन शासन का बोझ, लड़ाइयों के खर्चे और उमरा वर्ग के ऐशो-आराम से भरे जीवन की आवश्यकताएँ बढ़ती गईं और उसी अनुपात से सामाजिक अधिशेष घटता चला गया।

दक्षिण के इलाक़ों में साम्राज्य के विस्तार से भी इस कमी की पूर्ति न हो सकी क्योंकि दक्षिण खुद घाटे को भूमि थी। दक्षिण की भूमि और उमरा को मुग़ल राज्य में मिलाने के लिए औरंगज़ेब ने दक्षिणी कुलीन वर्गों को मनसब और जागीर देने के वायदे किए। इस प्रकार उमरा की एक विशाल संख्या मनसब और जागीर की हकदार हो गई। राजनीतिक परिस्थितियों को देखते हुए सरकार के लिए यह ज़रूरी था कि इस दक्षिणी उमरा को संतुष्ट रखा जाए क्योंकि सम्राट के हाथ में जागीरें कम थीं और उम्मीदवार हिसाब से कहीं ज्यादा। इसलिए इस असंतुलन को अस्थायी रूप से समाप्त करने के लिए पुराने मनसबदारों के भाग में कटौती की जाने लगी। औरंगजेब की इस नीति को पुराने मनसबदारों ने अपने अधिकारों पर हमला माना और मुग़ल दरबार राजनीतिक गुटों में विभाजित हो गया। विभाजन से क्रमशः तनाव बढ़ता चला गया। जागीर का जमा दाम (अनुमानित आय) और हाले हासिल (वास्तविक आय) के बीच का अंतर, जो औरंग़ज़ेब से भी पहले से चला आ रहा था, इस राजनीतिक गुटबंदी और तनाव को बढ़ाने का कारण बना। उमरा अपने गुट के लिए अच्छी आय वाली और आसानी से नियंत्रण में आने वाली जागीरें प्राप्त करने की दौड़ में

लग गए। दूसरी तरफ, इन सब कार्रवाइयों का किसान और भूमि पर बुरा प्रभाव पड़ा। इस तरहसंक्षेप में जागीरदारी के संकट को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकते हैं:

- मुग़ल प्रशासनिक प्रणाली की केंद्र में मनसबदारी जागीरदार व्यवस्था मौजूद थी पहले के दौर से ही किसी जागीर की अनुमानित आय और वास्तविक आय के बीच अंतराल मौजूद रहे थी।
- उमरा यानी अधिकारी वर्ग की संख्या में होने वाली वृद्धि के बाद और विशेष रूप से दक्कन में साम्राज्य के विस्तार के बाद जागीर की उम्मीद रखने वाले समूहों की संख्या में वृद्धि हुई, लेकिन देने की लिए जागीरें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं थीं।

अतहर अली ने 1966 ई. में अठारहवीं शताब्दी के अंत में कुलीन और उनकी राजनीति पर एक पुस्तक लिखी (एम. अतहर अली, द मुगल नोबिलिटी अंडर औरंगजेब, बम्बई, 1966, पुनः प्रकाशन, 1970)। इस पुस्तक में दक्कनी राज्यों के अधिग्रहण, मुगल कुलीन वर्ग में मराठों और दक्कनियों के समावेश और जागीरों में आई कमी जैसी समस्याओं का विशेष रूप से अध्ययन किया गया है। अतहर अली के अनुसार दक्कन और मराठा राज्य क्षेत्रों में इस साम्राज्य के विस्तार के कारण कुलीनों की संख्या तेजी से बढ़ी और इससे जागीर व्यवस्था की कार्य पद्धति में संकट उत्पन्न हो गया। दक्षिण के कुलीनों के समावेश के कारण जागीरों की कमी पड़ने लगी और अच्छी जागीरें प्राप्त करने के लिए कुलीनों में होड़ लग गई। इससे बहुत हद तक जागीरदारी पर आधारित राजनैतिक संरचना चरमराने लगी।

13.3.4 कृषिगत संकट

सतीश चन्द्र की महत्वपूर्ण पुस्तक के प्रकाशन के बाद अनेक विद्वानों ने साम्राज्य के राजनैतिक पतन के कारणों का पता लगाने के लिए इसकी कार्य-पद्धति के विभिन्न पहलुओं पर विचार करना शुरू किया। अब कारणों की खोज व्यक्तियों और शासक की नीतियों के बजाए मुगल साम्राज्य के आधारभूत ढाँचे में की जाने लगी जिस पर मुगल साम्राज्य टिका हुआ था। इरफान हबीब ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तकद एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया में साम्राज्य के पतन का गहराई में जाकर विश्लेषण किया। हबीब के अनुसार मुगलों द्वारा राजस्व की वसूली की व्यवस्था मेंअंतर्निहित दोष थे। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए बड़ी से बड़ी सेना रखने की कोशिश की जाती थी और इस कारण मुग़ल राज्य का हित राजस्व की दर कोअधिकतम रखे जाने में था। दूसरी तरफ कुलीन अपनी जागीरों से ज्यादा से ज्यादा प्राप्त करना चाहते थे। जागीरदारी व्यवस्था के तहत जागीरदारों का समय-समय पर स्थानांतरण किया जाता था, ताकि वे स्थानीय स्तर पर शक्तिशाली न हो जाएँ, लेकिन इसका परिणाम हुआ कि जागीरदार खेती-किसानी के विकास में कोई दिलचस्पी नहीं रखते थे और किसानों से अधिकतम वसूली करते थे. इस अतिशय शोषण की प्रतिक्रिया में किसानों के पास विरोध के अलावा और कोई चारा नहीं रहा। मध्यकालीन भारत में इस प्रकार के ग्रामीण विरोधों के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। इरफ़ान हबीब जाटों, मराठों, सिक्खों तथा सतनामियों के विद्रोहों को ऐसे ही किसानों

के विद्रोहों के रूप में देखते हैं, किसानों ने अपनी सामुदायिक पहचानों के आधार पर अपनी जात-बिरादरी के ज़मींदारों की अगुआई में मुग़ल सत्ता के ख़िलाफ़ विद्रोह कर दिया था।

1969 में प्रकाशित अपने एक महत्वपूर्ण आलेख में प्रो. एस. नुरुल हसन ने बताया कि मुगल शासन के तहत कृषि संबंधों में ऊपर से नीचे तक पिरामिड की शक्ल में अधिकारों की एक संरचना का विकास हुआ। इस संरचना के तहत विभिन्न प्रकार के अधिकार एक दूसरे के ऊपर अध्यारोपित थे, यानी एक ही भूमि पर अधिकारों का एक पदानुक्रम था। इसके परिणामस्वरूप राज्य की राजस्व मांग का सबसे अधिक बोझ किसानों पर पड़ता था. अठारहवीं शताब्दी में मुगल सत्ता के पतन के साथ जागीरों पर दबाव बढ़ने लगा और कृषि व्यवस्था पर संकट छा गया।

नुरुल हसन के अनुसार एक वर्ग के रूप में ज़मींदार राज्य के प्रति काफी निष्ठावान थे। पर मुगल साम्राज्य में कृषि व्यवस्था का विकास इस रूप में हुआ कि उनके और राज्य के बीच और उनके अपने बीच के संघर्षों को नियंत्रित नहीं किया जा सका। इससे अक्सर कानून और व्यवस्था की समस्या पैदा हुई.ज़मींदारों को एक ऐसा वर्ग ही नियंत्रित कर सकता था जो ज़मींदारों की सहायता पर निर्भर नहीं था। इस समय तक ऐसे किसी वर्ग का उदय नहीं हो पाया था अतः कृषि-संबंध भी नहीं बदल सके। ऐसी स्थिति में व्यवस्था का पतन अवश्यंभावीथा।

13.4 क्षेत्र आधारित व्याख्याएँ

मुज़फ़्फ़र आलम और चेतन सिंह ने अपने अध्ययनों में क्षेत्रीय परिवर्तनों को ध्यान में रखा है, जहां चेतन सिंह का अध्ययन पंजाब में होने वाले विकासक्रम को ध्यान में रखता है, वहीं आलम का अवध और पंजाब सूबे की गतिविधियों से सम्बंधित है।

13.4.1 संशोधनवादी व्याख्याएँ

संशोधनवादी व्याख्याएँ यह तर्क रखती हैं कि मुग़ल साम्राज्य कोई सुदृढ़ केंद्रीकृत ढाँचा नहीं था। मुज़फ़्फ़र आलम ने अपने अध्ययन में यह दिखाया है कि 17वीं सदी के अंत और 18वीं सदी के प्रारम्भ में पंजाब और अवध के सूबे में आर्थिक प्रगति देखने को मिलती है, इस आर्थिक प्रगति के कारण इन सूबों में क्षेत्रीय ताक़तों का उदय होना स्वाभाविक था। आलम का यह मानना है कि मुग़ल राज्य साम्राज्य के भीतर विभिन्न राजनैतिक समुदायों और सामाजिक तबकों के बीच एक समन्वयक की भूमिका निभाता था। विभिन्न स्थानीय राजनैतिक तत्व जिनके हित परस्पर विपरीत भी थे, राज्य ने इनके बीच एक संतुलन क़ायम किया हुआ था। मुग़ल सम्राट विभिन्न कुलीनों की अलग-अलग ओहदों पर नियुक्ति करता था और वे अपनी सत्ता के लिए सम्राट पर निर्भर थे. जागीरों के स्थानांतरण से भी इस व्यवस्था पर सम्राट का नियंत्रण था, लेकिन जागीरदारों को यह व्यवस्था परेशान करती थी। इसके साथ ही अवध प्रांत का उदाहरण लेते हुए आलम ने यह दिखाया है कि अवध में बादशाह द्वारा मदद-ए माश के अनुदान के माध्यम से स्थानीय तत्वों पर नियंत्रण रखने की कोशिश की थी, शुरुआती समय में तो यह व्यवस्था सही चली पर सत्रहवीं सदी के आख़िरी दौर से क्षेत्रीय स्तर मार मौजूद कुलीनों ने स्थानीय ज़मींदारों के साथ स्वतंत्र रूप से गठजोड़

करना शुरू कर दिया, स्थानीय रूप से प्रबल हो चुके इन तत्वों ने मुग़ल साम्राज्य की सत्ता को चुनौती देना शुरू कर दिया।

चेतन सिंह ने अपनी पुस्तक 'रीज़न एंड एंपायर' में पंजाब सूबे का अध्ययन किया है और यहाँ होने वाले विकासक्रम को मुग़ल राज्य के साथ-साथ पश्चिम एशिया में होने वाली गतिविधियों के बरक़्स रखकर देखा है।सिंह का भी यह मानना है कि मुग़ल प्रशासनिक व्यवस्था और राजस्व व्यवस्था में स्थानीय ज़रूरतों के हिसाब से बदलाव किया जाता था और स्थानीय रीतियों को भी ज़रूरत के मुताबिक़ अपना लिया जाता था, जिससे मुग़ल राजसत्ता एक लचीली संरचना की तरह कार्य करती थी और इसी लचीलेपन से इसे स्थायित्व हासिल होता था।सिंह का यह तर्क है कि 17वीं सदी के अंत में सिंधु नदी में गाद भर जाने से यहाँ का जलमार्ग बाधित हुआ और इससे पंजाब की वाणिज्यिक-आर्थिक व्यवस्था पर बुरा असर पड़ा। इसके साथ ही तुर्की की राजनैतिक उथल-पुथल, ईरान के शाह द्वारा कंधार पर कब्ज़ा और इसे वापस लेने हेतु मुग़ल सेना के अभियान, अफ़रीदियों के विद्रोह, युसूफ़ज़ाइयों के विद्रोह ने पंजाब के थल मार्ग को भी बंद कर दिया था।चूँकि पंजाब की अर्थव्यवस्था बहुत हद तक व्यापार और वाणिज्य पर टिकी थी, इसने पंजाब में आर्थिक संकट पैदा किया, जिसका परिणाम राजनैतिक और सामाजिक विद्रोह में निकला। उनका यह भी तर्क है कि ऐसे विद्रोह पंजाब के समृद्ध क्षेत्रों में हुए थे, जहां व्यापार और वाणिज्य का अत्यंत महत्व था, ऐसे विद्रोहों के फलस्वरूप मुग़ल साम्राज्य पंजाब में अपनी शक्ति खो चुका था। चेतन सिंह ने यह भी स्पष्ट किया है कि ऐसा अचानक ही नहीं हुआ था बल्कि दीर्घकाल से चली आ रही प्रक्रियाओं से भी जुड़ा हुआ था। इस तरह हम देखते हैं कि इन इतिहासकारों ने सूबों में चलने वाली प्रक्रियाओं के माध्यम से मुग़ल साम्राज्य के पतन को देखा है और सूबों की विशिष्ट परिस्थिति के सम्बंध में मुग़ल साम्राज्य के पतन की व्याख्या की है।

13.4.2 ग्रेट फ़र्म थ्योरी

कैरेन लियोनार्ड ने यह सिद्धांत पेश किया है कि मुग़ल राज्य बड़े-बड़े बैंकिंग फ़र्मों के समर्थन पर निर्भर था, कालांतर में इन बैंकिंग और व्यापारिक घरानों ने 1650-1750 के काल में अपना समर्थन स्थानीय और क्षेत्रीय तत्वों के पक्ष में कर दिया और अंततः ईस्ट इंडिया कम्पनी के। इस सिद्धांत को व्यापक स्वीकृति नहीं मिली है क्योंकि इक्का-दुक्का उदाहरणों को छोड़कर इसकी पुष्टि नहीं की जा सकी है। यह कहना बेहद मुश्किल है कि मुग़ल वित्तीय व्यवस्था किस हद तक इन बैंकिंग घरानों पर निर्भर थी।

13.5 विभिन्न व्याख्याओं की समीक्षा

चूँकि मुग़ल राज्य का आधार कृषि था और इस पर निर्भर जागीरदारी राज्य की प्रशासनिक मशीन की जान थी, इस कारण इन व्याख्याओं में से जागीरदारी संकट का तर्क लम्बे समय तक इतिहासकारों के बीच लगभग सर्वमान्य रहा है। यद्यपि इस पर कई इतिहासकारों ने अपनी विश्लेषणात्मक दृष्टि डाली है। जे. एफ़. रिचर्ड्ज़ ने गोलकुंडा के अपने अध्ययन के आधार पर यह तर्क पेश किया है कि जागीरदारी का संकट कृषि की आय का संकट होने के बजाय एक

प्रशासनिक संकट था। अर्थात्, दक्कन को मुग़ल साम्राज्य में मिलाने के बाद कुलीनों की संख्या में तो वृद्धि हुई ही, साथ ही राजस्व वाली पर्याप्त जागीरें भी साम्राज्य का हिस्सा बनीं यानी ये बेजागीरी की समस्या न थी। औरंग़ज़ेब ने युद्धों का खर्चा निकालने के लिए इन जागीरों को खालसा ज़मीन में शामिल कर लिया था। अतः यह समस्या पायबाकी (जागीरदारों को देने के लिए आरक्षित भूमि) जागीरों की थी और इस तरह से यह समस्या मुख्य रूप से एक प्रशासनिक समस्या थी।

पियर्सन ने अपने अध्ययन में यह तर्क रखा है कि मुग़ल साम्राज्य का नियंत्रण अप्रत्यक्ष था, स्थानीय समाज मुग़ल राज्य के बजाय स्थानीय विधियों और रीतियों से चलता था और कुलीन केवल संरक्षण के कारण मुग़ल राज्य से जुड़े हुए थे, और पहले से मौजूद स्थानीय सम्बंध काफ़ी महत्व के थे जिन्हें मुग़ल कुलीन वर्ग देखने में सक्षम नहीं था। मुग़ल सत्ता से जुड़ाव मुग़ल राज्य की निरंतर सैन्य सफलताओं पर निर्भर था, जैसे ही मुग़ल सैन्य शक्ति कमज़ोर पड़ने लगी, ये तत्व स्वतंत्र होने लगे।

जागीरदारी संकट पर नई दृष्टि डालते हुए सतीश चंद्र ने अपने नए अध्ययन में इसे एक नए ढंग से व्याख्यायित किया है। उनका कहना है कि मुग़ल राज्य किसान-ज़मींदार और जागीरदार, इन तीन ध्रुवों के सम्बंध पर टिका था। मुग़ल राज्य की सफलता मनसबदारों/जागीरदारों द्वारा ज़मींदारों से राजस्व की सहज वसूली और किसानों को खेती के कार्य में लगाए रखने में निहित थी। जब तक जागीरदार के पास अच्छी-ख़ासी फ़ौज थी वह आसानी से राजस्व की वसूली कर लेता था। फ़ौज रखना तभी सम्भव था जब राजस्व और संसाधनों की पर्याप्त वसूली हो। इस तरह इस त्रिध्रुवीय सम्बंध में आने वाला कोई भी संकट मुग़ल साम्राज्य के लिए संकट हो सकता था। चंद्र का यह भी कहना है कृषि और ग़ैर कृषि व्यवस्था में सुधार करके ऐसे वित्तीय संकट को टाला जा सकता था, लेकिन मुग़ल राज्य ऐसा करने में असफल रहा। ख़ुद-काश्त (अपने खेतों के खेती करने वाला समृद्ध किसान) को भाड़े के श्रमिकों की मदद से खेती करने से रोका जाता था और पाही काश्त (भूमि न धारण करने वाले किसान जो अपने औज़ारों और जानवरों की मदद से किसी गाँव में बसकर खेती करते थे) को हटाकर अपनी भूमि में वृद्धि करने से रोका जाता था। इसी तरह छोटे किसान सूदख़ोरों और महाजनों का शिकार भी हो जाते थे। और, मुग़ल राज्य को अपना हित छोटे किसानों को बनाए रखने में प्रतीत होता था, इस कारण खेती का आवश्यक विस्तार न हो सका। इसी तरह व्यापारी वर्ग कोई सम्पन्न पृथक समुदाय नहीं था और राजनीति से दूर ही था जिसके कारण ग़ैर कृषि अर्थव्यवस्था का भी विकास अवरूद्ध ही रहा। इस प्रकार सतीश चंद्र जागीरदारी संकट का मूल मध्यकालीन समाज की संरचना में देखते हैं।

जैसा कि हमने ऊपर (उपखंड-13.4) देखा है, हाल के समय में ऐसी केंद्रीय व्याख्याओं को संशोधनवादी इतिहासकारों ने चुनौतियाँ दी हैं, इसके साथ ही अब हम देखेंगे कि कुछ नवीन दृष्टियाँ भी हमारे सामने प्रस्तुत हुई हैं। अतहर अली ("द पासिंग ऑफ़ एम्पायर: द मुगल केस", मॉडर्न एशियन स्टडीज़, 9,3, 1975) इस्लामी राजनीतिक संरचनाओं द्वारा अपनी सेनाओं और उत्पादक क्षमताओं को आधुनिक बनाने या क्रांतिकारी ढंग से बदलने में असमर्थ

होने को महत्वपूर्ण मानते हैं, जिसके पीछे " सांस्कृतिक और वैचारिक विफलता" ज़िम्मेदार थी. प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कोई नया नवाचार सामने नहीं आ पाया था। सारी सांस्कृतिक क़वायद अभी भी मज़्म-अल बहरीन जैसी कृतियों को संकलित करने और वेदांत की सार्वभौमिकता को साबित करने तक सीमितथी। इक़्तिदार आलम ख़ान ने भी अपना विचार सामने रखा है, जिसमें बेहतर तकनीक विकसित करने में विफलता को मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बताया गया है।उनके अनुसार 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में किसानों और जमींदारों के बीच भीबारूद के निर्माण और उपयोग की कला और पिस्तौलों के प्रसार ने स्थानीय तत्वों को शाही अधिकारियों से भिड़ने के लिए मज़बूर किया। ख़ान के अध्ययन से पता चलता है कि मुग़लों ने शुरू से ही उत्तर भारत में पिस्तौल का इस्तेमाल किया: 1528 में बाबर ने आग्नेयास्त्रों के निर्माण और तुफ़ंगचियों को भुगतान के लिए अपने उमरा के हिस्से को 1/3 कम कर दिया। यह भी स्पष्ट है कि उमरा से तुफ़ंगचियों को रखने की उम्मीद नहीं की जाती थी: उन्हें केवल केंद्रीय प्राधिकारी द्वारा रखा जाता था। मुंशाअत-ए-नमाकिन में एक फ़ौजदार की नियुक्ति का आदेश दिया है। ऐसा कहा जाता है कि इस फ़ौजदार के अधीन तुफंगची क्षेत्र के जागीरदारों की तभी सहायता करते थे जब वे प्रति बीघा एक दाम (केंद्रीय सरकार को) देते थे। इसके बाद आइन-ए कोतवाल में कोतवाल को लोहारों पर प्रतिबंध लगाने के लिए कहा गया है: यह फिर से एक बहुत ही सोची-समझी नीति थी जो मुग़ल अधिकारियों की इस चिंता के कारण निर्धारित की गई थी कि यदि किसानों (पियादों आदि) को पिस्तौलें उपलब्ध हो गईं तो वे मुग़ल घुड़सवार सेना का तिरस्कार कर देंगे। स्थानीय अधिकारियों के अधीन पियादों की कुल संख्या उनतीस लाख साठ हजार सात सौ छियानवे (39,60,716) थी। पिस्तौल की कीमत 8 आने से लेकर 9 रुपये (आइन) तक होती थी। धनुष की कीमत 4 आने से लेकर 18 रुपये तक होती थी। अलाउद्दीन बरनवी की किताब-ए चिश्तिया व बहिश्तिया, जो 1055-56 हिजरी में संकलित की गई थी और जिसमें जहाँगीर के काल के चिश्ती संत बहाउद्दीन बरनवी का वर्णन है, में कहा गया है कि संत ने बंदूक से निशाना लगाने की कला सीखी थी और पहले के समय के बंदूकधारी कायर और मूर्ख थे, लेकिन अब वे चतुर हो गए हैं, वे जहाँ भी जाते हैं, बंदूक लेकर चलते हैं और उससे गोली चलाते हैं।

17वीं शताब्दी तक बंदूकों का खुलकर इस्तेमाल किया जाने लगा था। रफ़ीउद्दीन इब्राहिम शिराजी ने अपनी किताब तज़किरात-उल मुलुक में लिखा है कि जगदीशपुर के पास हुई गोलीबारी में कुलीन लोग भी मारे गए थे। मनुची ने बंदूकों रखने वाले किसानों का उल्लेख किया है। ज़ख़ीरत-उल ख़्वानिन में हमें इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि अपने खेत जोतते समय किसानों की बंदूक ज़मीन में धँसी रहती थी। और इस प्रकार यह बिल्कुल भी आश्चर्यजनक नहीं है कि किसान-ज़मींदार अब मुग़ल सत्ता का सामना करने के लिए उठ खड़े हुए; वे ही किसान विद्रोहों का नेतृत्व कर रहे थे।

13.6 सारांश

इस इकाई में हमने मुग़ल साम्राज्य के पतन के संदर्भ में विभिन्न इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत व्याख्याओं का अध्ययन किया है। पहले हमने मुग़ल साम्राज्य की प्रकृति को समझने का प्रयास किया है और उसके बाद पतन के कारणों की समस्या की है। 1707 में औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य कमज़ोर पड़ने लगा था। अठारहवीं सदी में नए क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ, जिन्हें इतिहासकार सी. ए. बेयली ने तीन श्रेणियों में बाँटा है: मुग़लों के उत्तराधिकारी राज्य अर्थात् हैदराबाद, अवध और बंगाल; मुस्लिम विद्रोही राज्य यथा रोहिल्लों का राज्य और हिंदू प्रतिरोधी राज्य यथा मराठा राज्य। इस प्रकार हम देखते हैं कि अठारहवीं सदी में नए राज्यों के उदय ने मुग़ल सत्ता को कमज़ोर कर दिया था, यद्यपि इनमें से कई प्रतीकात्मक रूप से अभी भी मुग़ल बादशाह को वैधानिकता का स्रोत मानते थे, मुग़ल बादशाह 1857 तक उपमहाद्वीप में सत्ता की वैधानिकता का स्रोत बना रहा जबकि अंततः उसे क़ानूनी रूप से ब्रिटिश सत्ता ने समाप्त कर दिया।

मुग़ल राज्य को कुछ इतिहासकारों ने अयोग्य उत्तराधिकारियों और हिंदुओं के दमन की प्रतिक्रिया के रूप में समझने की कोशिश की थी, वहीं बाद के इतिहासकारों ने इसे संरचनागत दोष के संदर्भ में समझा है, हाल के समय में सूबों यानी प्रांतों या क्षेत्रीय स्तर पर होने वाले विकासक्रमों के महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

13.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के लिए सही विकल्प का चयन कीजिए:

1. जागीरदारी संकट का सिद्धांत किस इतिहासकार ने दिया था?

A. इरफ़ान हबीब

B. सतीश चंद्र

C. सी. ए. बेयली

D. जे. एफ़. रिचर्ड्स

2. 'रीज़न एंड एंपायर' पुस्तक के लेखक हैं:

A. मुज़फ़्फ़र आलम

B. संजय सुब्रह्मण्यम

C. चेतन सिंह

D. इरफ़ान हबीब

उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर:

1. B; 2.C

13.8 शब्दावली

उमरा	अमीर अर्थात् अधिकारी का बहुवचन।
जागीर	वेतन के बदले दिया जाने वाला भू-राजस्व अधिन्यास जो हस्तांतरणीय था।
मदद-ए माश	विद्वानों या आलिमों को दिया गया भू-अनुदान।
ख़ालसा	जिस भूमि का राजस्व बादशाह के ख़ज़ाने में जाता था।
पायबाकी	जागीर के रूप में दिए जाने के लिए आरक्षित भूमि।

13.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. जागीरदारी संकट से आप क्या समझते हैं?
2. मुग़ल राज्य के पतन की क्षेत्रीय व्याख्याओं पर प्रकाश डालिए।
3. मुग़ल राज्य की प्रकृति की समीक्षा कीजिए।

13.9 संदर्भ स्रोत

- Irfan Habib,Agrarian System of Mughal India(1556-1707), Asia Publishing House, 1963.
- Muzaffar Alam, THE CRISIS OF EMPIRE IN MUGHAL NORTH INDIA, 2ND EDIT P: Awadh and Punjab, 1707-48 (Oxford India Perennials Series), 2013.
- Sekhar Bandyopadhyay, FROM PLASSEY TO PARTITION AND AFTER (2ND EDN), 2014.
- Satish Chandra, Parties and Politics at the MUGHAL COURT(1707-1740), 2017.
- The 'Great Firm' Theory of the Decline of the Mughal Empire Author(s): Karen Leonard Source: Comparative Studies in Society and History, Vol. 21, No. 2 (Apr., 1979), pp. 151-167 Published by: Cambridge University Press Stable URL: http://www.jstor.org/stable/178414 .
- The Passing of Empire: The Mughal Case Author(s): M. Athar Ali Reviewed work(s): Source: Modern Asian Studies, Vol. 9, No. 3 (1975), pp. 385-396 Published by: Cambridge University Press Stable URL: http://www.jstor.org/stable/311728 . Accessed: 26/09/2012 13:54

इकाई चौदह- भारत में यूरोपियों का आगमन एवं औपनिवेशिक शक्ति का सुदृढ़ीकरण

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 भारत में यूरोपियों का आगमन और औपनिवेशिक शक्तियों का सुदृढ़ीकरण

14.3.1 पुर्तगाली

14.3.2 डच

14.3.3 डेनिश

14.3.4 फ्रांसीसी

14.3.5 अंग्रेज

14.4 सारांश

14.5 तकनीकी शब्दावली

14.6 स्वमूल्यांकित प्रश्न

14.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.8 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

1453 ई. में कुस्तुनतुनिया के पतन के साथ ही यूरोप का भारत के साथ होने वाला व्यापार बाधित हो गया। यही वह क्षण था जिसने यूरोप वासियों को नवीन जलमार्गों की खोज के लिए प्रेरित किया। 15वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पुर्तगाल, स्पेन, नीदरलैंड, फ्रांस और ब्रिटेन जैसी यूरोपीय शक्तियों ने मसालों, वस्त्रों और अन्य आकर्षक वस्तुओं के लालच में भारतीय उपमहाद्वीप में अपने पाँव पसारने शुरू किये। पूर्व और पश्चिम की इस भिड़ंत ने न केवल क्षेत्र के आर्थिक परिदृश्य को प्रभावित किया बल्कि इसके गहरे सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक निहितार्थ भी थे। जिसके फलस्वरूप आगामी कुछ सदियों तक भारत में औपनिवेशिक शासन चला और अंततः स्वतंत्रता के लिए संघर्ष

हुआ। इतिहास के इस अध्याय को समझने से वैश्विक अंतर्संबंधों की जटिलताओं और आधुनिक भारत में उपनिवेशवाद की स्थायी विरासतों पर प्रकाश पड़ता है।

भारत में औपनिवेशिक शक्ति का सुदृढ़ीकरण यूरोपीय साम्राज्यवादी विस्तार की रणनीतिक महत्वाकांक्षाओं और स्थायी विरासतों का प्रमाण है। कई शताब्दियों तक फैली इस प्रक्रिया में सैन्य विजय, आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक अधिरोपण और राजनीतिक पैंतरेबाज़ी की जटिल अंतर्क्रिया देखी गई। पुर्तगालियों से शुरू होकर डच, फ्रांसीसी और अंततः ब्रिटिशों के आगमन तक प्रत्येक लहर अपनी गतिशीलता और चुनौतियाँ लेकर आई, जिसने भारत के भाग्य को गहन तरीके से आकार दिया। भारत में औपनिवेशिक शासन के सुदृढ़ीकरण ने न केवल इसके राजनीतिक मानचित्र को नया रूप दिया, बल्कि महत्वपूर्ण सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को भी उत्प्रेरित किया। पश्चिमी शिक्षा, कानूनी व्यवस्था और प्रशासनिक ढाँचे के लागू होने से भारतीय समाज पर अमिट छाप पड़ी, जबकि औपनिवेशिक लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से बनाई गई आर्थिक नीतियों ने आत्म निर्भरता और असमानता को और भी अधिक बढ़ा दिया।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भारत में आने वाली यूरोपीय शक्तियों के बारे में विस्तार से जान पाएंगे साथ ही आप इन विदेशी शक्तियों द्वारा भारत में अपनाई गई नीतियों का मूल्यांकन कर सकेंगे। इस अध्याय के वाचन के बाद आप ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा भारत में अपने वर्चस्व स्थापित करने की प्रक्रिया को भी समझेंगे साथ ही भारत में औपनिवेशिक शक्ति के सुदृढ़ीकरण के विभिन्न पहलुओं पर विचार कर सकेंगे

14.3 भारत में यूरोपियों का आगमन और औपनिवेशिक शक्तियों का सुदृढ़ीकरण

भारत में यूरोपियों द्वारा प्राचीन काल से ही यात्राएँ की जा रही थी अर्थात भारत के साथ यूरोप के व्यापारिक सम्बन्ध रहे थे। इन यात्राओं का उद्देश्य व्यापार, नवीन खोज, और धर्म का प्रचार प्रसार करना था। लेकिन धर्मयुद्ध के काल में (१२वीं शताब्दी) यूरोपवासियों के मध्य पूर्वी माल की मांग को लेकर वृद्धि हो गई थी, यूरोप के वासी इस दौरान रेशम, जड़ी-बूटियों, सुगन्धित इत्र, नील, मसालों तथा अन्य विलासिता के पर्याय भारतीय मलमल के कपड़े इत्यादि के संपर्क में आए जिससे उनके बीच इन वस्तुओं का शौक पैदा हुआ। और खासकर मसालों की मांग तो समूचे यूरोप में अपने चरम पर थी, क्योंकि शीतकाल में चारे की कमी होने के कारण अनेक पशुओं को मारकर उनके मांस को नमक लपेटकर संरक्षित कर लिया जाता था और इन्हें स्वादिष्ट बनाने के लिए मसाले अनिवार्य रूप से महत्त्वपूर्ण थे। इस प्रकार धीरे धीरे यह यूरोपीय शक्तियां भारतीय समाज, संस्कृति और राजनीति के साथ संपर्क में आए। आगे चलकर 15वीं और1 6वीं सदी में भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन तब आया जब यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों की स्थापना हुई। पुर्तगाली और फ्रांसीसी ,डच ,ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी जैसी कंपनियां भारत में अपना प्रभाव बढ़ाने आईं और अंततः उन्होंने भारत पर अपना साम्राज्यिक नियंत्रण कायम कर लिया। आगे आप क्रमशः इन्हीं व्यापारिक

कंपनियों की नीतियों का अध्ययन करेंगे और उन सभी परिस्थितियों का मूल्यांकन कर सकेंगें जिनके कारण भारत में औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना हो सकी। भारत में प्रवेश करने के आधार पर इन विदेशी शक्तियों का क्रम इस प्रकार है -पुर्तगाली, डच, अंग्रेज, डेनिश, फ्रेंच।

14.3.1 पुर्तगाली: भारत में प्रवेश करने वाली सबसे पहली विदेशी शक्ति पुर्तगाली ही थे। सन 1498 ई. में भारत तक के समुद्री मार्ग (आशा अंतरीप से भारत तक का सीधा मार्ग) को खोजने वाला व्यक्ति वास्को डी गामा पुर्तगाल का ही यात्री था। वह सर्वप्रथम वर्तमान केरल राज्य के कालीकट नामक स्थान पर पहुंचा था जहाँ उसका स्वागत वहाँ के स्थानीय शासक जमोरिन द्वारा किया गया था। भारत में पुर्तगालियों ने अपनी शक्ति को मुख्यतः पश्चिमी तट पर केंद्रित किया; विशेष रूप से गोवा, बॉम्बे (मुंबई) और दीव जैसे क्षेत्रों में। पुर्तगालियों ने शुरुआत में मसालों, विशेष रूप से काली मिर्च और लौंग इत्यादि के व्यापार पर अपना एकाधिकार स्थापित किया, ताकि वे तत्कालीन यूरोपीय समाज में इन मसालों की आपूर्ति अनिवार्य रूप से कर सकें जो यूरोप में अत्यधिक मांग में थी। उन्होंने धीरे धीरे प्रमुख भारतीय बंदरगाहों को नियंत्रित करना शुरू कर दिया ताकि वे अपने व्यापारिक हितों को सुरक्षित रख सकें और कालांतर में इस कार्य ने उन्हें अपने स्वामित्व के क्षेत्र में उनके आर्थिक प्रभुत्व को बढ़ाने में विशेष योगदान दिया। एक मजबूत नौसेना, चतुर कूटनीती तथा राज्य संरक्षण के माध्यम से शीघ्र ही पुर्तगालियों ने इस इलाके के समुद्री व्यापार पर वर्चस्व स्थापित कर लिया था। गोवा पुर्तगाली शक्ति का मुख्य केंद्र बनकर उभरा, जो न केवल एक व्यापारिक केंद्र था बल्कि भारतीय क्षेत्र में मिशनरी गतिविधियों का भी प्रमुख केंद्र था। इस प्रकार हम देखते हैं कि पुर्तगालियों द्वारा भारतीय सामुद्रिक व्यापार पर नियंत्रण पा लेने के विस्तृत एवं दूरगामी प्रभाव हुए, और भारतीय क्षेत्रों में उनका वर्चस्व तब तक बना रहा जब तक कि 17वीं शताब्दी में डचों और अंग्रेजों ने आकार उन्हें विस्थापित नहीं कर दिया। हालाँकि गोवा पुर्तगालियों के अधीन भारतीय स्वतंत्रता (1947) के बाद तक बना रहा जब तक कि सन 1961 ई. में भारत ने इसे अपने अधीन नहीं कर लिया।

पुर्तगाली शक्ति का नियंत्रण एवं उनके प्रभुत्व का पतन: सन 1498 ई. में जब वास्को डी गामा भारतीय तट पर पहुंचा तो उसने वहाँ स्थापित अरब व्यापारियों के प्रति विद्वेष की भावना को व्यक्त किया, हालाँकि स्थानीय शासक जमोरिन द्वारा उसका स्वागत किया गया तथा उसे काली मिर्च, जड़ी-बूटी, मसालों इत्यादि के व्यापार की अनुमति प्रदान कर दी गई। एक अनुमान के अनुसार वह पुर्तगाल के लिए जितना माल ले गया था उसकी अनुमानित लागत उसके कुल व्यय से 60 गुना अधिक थी। 16वीं शताब्दी के दौरान पुर्तगाली शासक मसालों के व्यापार पर एकाधिकार और अपने निज देश को समृद्ध बनाने हेतु कृतसंकल्पित थे। ऐसा कर जहाँ वे एक ओर अपने प्रतिस्पर्धियों को नीचा दिखा सकते थे वहीं पूर्व के समस्त व्यापार पर अधिकार कर अपनी श्रेष्ठता अभिव्यक्त कर सकते थे।

इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु पुर्तगालियों ने हिंद महासागर में प्रवेश करते ही बल प्रयोग का तरीका अख्तियार किया, शीघ्र ही वर्ष 1503 ई. में पुर्तगालियों ने कोचीन में अपने लिए एक छोटे से दुर्ग का निर्माण कर लिया। इसके

ठीक दो वर्ष पश्चात साल 1505 ई. में उन्होंने किन्नूर में अपने दूसरे किले का निर्माण किया। 1505 ई. में ही पुर्तगाल की सरकार ने अपना पहला वाइसराय या गवर्नर (Estado da India) फ्रांसिस्को डी अल्मीडा को भारत रवाना किया ताकि वह भारत में पुर्तगाली राज्य की स्थापना कर सके, हालांकि वह व्यापार और क्षेत्रीय योजनाओं को पुर्तगालियों की महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप आगे बढ़ाने में सफल नहीं हो पाया। उसके पश्चात अलफोंसो डी अल्बुकर्क को भारत में दूसरे वाइसराय के रूप में भेजा गया जो कि वास्तविक रूप से भारत में पुर्तगालियों का संस्थापक माना जाता है। इस के अधीन पुर्तगालियों ने सैन्य विजय के माध्यम से अपने प्रभाव का विस्तार किया। अल्बुकर्क ने 1510 में गोवा पर कब्जा कर लिया, जो पुर्तगाली भारत का केंद्रबिंदु और आगे के विस्तार के लिए एक महत्वपूर्ण आधार बना। इस के साथ ही साल 1511 और 1515 ई. में इसने क्रमशः मलक्का और फारस की खाड़ी में स्थित हरमुज जल संधि पर भी नियंत्रण स्थापित कर लिया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि 16वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही पुर्तगालियों ने तीन महत्त्वपूर्ण सामरिक स्थलों पर नियंत्रण हासिल कर अपनी स्थिती को मजबूत कर लिया था, हालाँकि यह बात भी सत्य है कि वे बारम्बार प्रयास करने के बावजूद भी अदन पर अधिकार नहीं कर सके जो कि लाल सागर में व्यापार पर नियंत्रण करने की एकमात्र कुंजी थी।

विजय की इस नीति को बढ़ाते हुए अपने व्यापार को ध्यान में रख पुर्तगालियों ने श्रीलंका के तटीय क्षेत्रों पर नियंत्रण हासिल कर लिया उन्होंने साल 1518 ई. में कोलम्बो में अपने लिए एक दुर्ग का निर्माण किया। साल 1530 में गोवा को उन्होंने औपचारिक तौर पर भारत में अपनी राजधानी बना लिया और 1535 तक बसीन और दीव को भी विजित कर लिया। आगे सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दमन भी उनके कब्जे में चला गया और इसी के साथ गुजरात के विशाल समुद्री व्यापार पर भी उनका नियंत्रण स्थापित हो गया। कुल मिलाकर यदि कहा जाए तो 16वीं शताब्दी के अंत तक पुर्तगालियों के पास भारत में 50 से अधिक दुर्ग और 100 से अधिक सामुद्रिक जहाजों का एक शक्तिशाली नौसेना का जखीरा मौजूद था।

पुर्तगालियों ने हिंद महासागर और अरब सागर में समुद्री व्यापार को नियंत्रित करने के लिए कार्टेज़-अर्मेडा-काफिला-व्यवस्था को लागू किया, जिसके तहत व्यापारियों को समुद्र में व्यापार करने की अनुमति लेनी पड़ती थी और समुद्र में उनके एकाधिकार की इससे और भी अधिक पुष्टि हो गई। पुर्तगाली स्वयं को 'समुद्र का स्वामी' कहते और इस व्यवस्था को उचित ठहराते थे, स्थिती यह थी की कोई भी भारतीय या अरबी जहाज पुर्तगालियों से कार्टेज़ या परमिट लिए बिना अरब सागर में प्रवेश नहीं कर सकता था। और खासकर उन्हें काली मिर्च तथा गोला-बारूद के व्यापार की अनुमति नहीं थी। पुर्तगाली निषिद्ध व्यापार का संदेह होने पर अन्य जहाजों की तलाशी भी लिया करते और जो जहाज तलाशी देने से इनकार करता उसे युद्ध की लूट के माल की भाति समझकर या तो लूट लिया जाता था या फिर उसे डूबा दिया जाता था। वस्तुतः देखा जाए तो कार्टेज से प्राप्त होने वाला शुल्क नगण्य ही था और पुर्तगालियों का वास्तविक राजस्व चुंगी के माध्यम से आता था जो कि प्रत्येक जहाज को किसी दुर्ग से गुजरने के दौरान देना पड़ता

था। आगे चलकर 16वीं शताब्दी के अंत में पुर्तगालियों को 'काफिला' व्यस्था भी लागू करनी पड़ी, इसमें स्थानीय व्यापरिक जहाजों का एक काफिला एक साथ चलता था जिसे पुर्तगाली नौसेना बेड़े द्वारा सुरक्षा प्रदान की जाती थी। इस व्यवस्था से भी पुर्तगालियों को दो लाभ प्राप्त हुए, पहला- इन जहाजों को समुद्री डाकुओं से सुरक्षा प्रदान कर जहाँ राजस्व की हानि को रोका गया वहीं दूसरा लाभ यह था कि अब कोई भी व्यापारिक जहाज पुर्तगाली व्यवस्था से बहार जाकर व्यापार नहीं कर सकता था।

धीरे धीरे भारत में डचों और अंग्रेजों ने पुर्तगालियों के प्रभुत्व को चुनौती देना प्रारंभ कर दिया था। पुर्तगालियों को विशेष रूप से डच और ब्रिटिशों से बढ़ती प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। डच ईस्ट इंडिया कंपनी ने मसाला व्यापार में पुर्तगाली प्रभुत्व को चुनौती देना शुरू कर दिया, विशेष रूप से मालुकु द्वीप (मसाला द्वीप) में। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी भारत में अपने पैर जमाने शुरू कर दिए थे, जिसके कारण अंततः व्यापार मार्गों और क्षेत्रों पर नियंत्रण के लिए संघर्ष और प्रतिस्पर्धा की एक अनवरत श्रृंखला शुरू हो गई। इसके अलावा स्थानीय भारतीय शासकों और क्षेत्रीय शक्तियों ने भी पुर्तगाली नियंत्रण का लगातार विरोध किया। इस प्रतिरोध के परिणामस्वरूप अक्सर इन दोनों के मध्य सैन्य टकराव और विद्रोह हुए, जिससे पुर्तगाली संसाधन खत्म हो गए और क्षेत्र पर उनकी पकड़ कमजोर हो गई।

14.3.2 डच ईस्ट इंडिया कंपनी का उदय: भारतीय भूमि पर डचों का पहला साक्ष्य 17वीं शताब्दी की शुरुआत (स्थापना 1602 में) में डच ईस्ट इंडिया कंपनी, जिसे वेरीनिगडे ओस्टिन्डिशे कॉम्पैग्नी (VOC) के रूप में जाना जाता है के रूप में दृष्टिगत होता है। इस कंपनी का निर्माण कई कंपनियों को मिलकर किया गया था। डचों ने भारतीय उपमहाद्वीप में अपना अभियान मसाला व्यापार पर प्रभुत्व हासिल कर लेने के इरादे से किया था जो कि वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए बहुत महत्वपूर्ण था। इसका प्राथमिक उद्देश्य एशियाई व्यापारिक मार्गों पर पुर्तगाली और स्पेनिश एकाधिकार को तोड़ना था। डच सरकार द्वारा VOC को अभूतपूर्व शक्तियां प्रदत्त की गई थी, जिसमें युद्ध छेड़ने, संधियों पर बातचीत करने और उपनिवेश स्थापित करने की अनुमति भी शामिल थी। इन सब अधिकारों के चलते यह कंपनी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की दुनिया में एक अद्वितीय स्थान रखती थी।

साल 1605 में डचों ने भारतीय उपमहाद्वीप के लिए अपना पहला अभियान शुरू किया था, वे सर्वप्रथम भारत के दक्षिणी भाग में पहुँचे, जहाँ मसाला व्यापार विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था। क्योंकि वे स्थानीय शासकों के साथ अपने व्यापार विशेषाधिकारों को सुरक्षित रखना चाहते थे और साथ ही अपने प्रतिद्वंदी पुर्तगालियों की सत्ता को समाप्त करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने अपने शुरुआती प्रयासों में कूटनीति और संघर्ष दोनों पक्षों को शामिल किया। डच शक्ति ने अपना पहला कारखाना साल 1606 में उत्तरी कोरोमंडल के पेटापुली में स्थापित किया था, उसी वर्ष एक अन्य कारखाना मुसलीपट्टनम के बंदरगाह शहर में भी लगाया। साल 1610 में पुलीकट में एक कारखाना स्थापित किया गया जो कि डचों का मुख्य कार्यालय भी बना। आगे चलकर साल 1690 में डचों ने अपना

मुख्यालय पुलीकट से बदलकर नागपत्तिनम में स्थानांतरित कर दिया। डचों ने बंगाल और गुजरात के बंदरगाह शहर सूरत में भी अपने व्यापारिक केंद्र स्थापित किये। सूरत तत्कालीन समय में व्यापार का महत्त्वपूर्ण केंद्र था जो कि भारत के आंतरिक भागों को फारस की खाड़ी और अरब प्रायद्वीप से जोड़ता था। डचों ने सूरत को अपने व्यापारिक संचालन के लिए एक लाभप्रद स्थान पाया, जिससे उन्हें इस क्षेत्र में फैले व्यापक व्यापार नेटवर्क का लाभ उठाने में मदद मिली।

व्यापार और कूटनीति: व्यापार के लिए डच दृष्टिकोण में आक्रामकता और बातचीत दोनों के ही गुण समाहित थे। वे भारतीय उपमहाद्वीप पर पुर्तगालियों के साथ जो कि न केवल व्यापारी थे, बल्कि पुर्तगालियों का भारतीय तट पर किलेबंद ठिकानों के साथ एक सुस्थापित नेटवर्क भी था; सीधे प्रतिस्पर्धा में उतर गए थे, हालाँकि बेहतर नौसैनिक तकनीक और अपनी लचीली वाणिज्यिक रणनीतियों के चलते उन्होंने पुर्तगाली प्रभुत्व को चुनौती देना शुरू कर दिया था। डच रणनीतिकारों की एक महत्त्वपूर्ण रणनीति, स्थानीय शासकों और प्रभावशाली व्यापारिक समुदायों के साथ गठबंधन बनाना था। अपनी इस रणनीति के चलते डच सूरत में अपने अनुकूल व्यापारिक शर्तों पर बातचीत करने में कामयाब रहे, जिससे उन्हें मसालों, वस्त्रों और नील जैसी मूल्यवान वस्तुओं के व्यापार पर अधिकार प्राप्त हो गया। उन्होंने मुगल साम्राज्य के साथ भी अपने मजबूत व्यापारिक संबंध स्थापित कर अपने व्यापारियों के लिए व्यापारिक विशेषाधिकार और सुरक्षा के मद्देनजर अपनी स्थिति को मजबूत कर लिया था।

जैसे-जैसे डचों ने भारत में अपनी शक्ति का विस्तार किया, उन्हें विभिन्न शक्तियों के प्रतिरोध का सामना भी करना पड़ रहा था। मसाला व्यापार पर अपना नियंत्रण बनाए रखने के लिए उत्सुक पुर्तगाली अक्सर डचों से भिड़ जाते थे, जिस कारण इन दोनों प्रतिद्वंदियों के मध्य झड़पें और नौसैनिक युद्ध भी होते थे। डचों को स्थानीय राजनीतिक गतिशीलता का भी सामना करना पड़ा, जिसमें क्षेत्रीय शक्तियों और जटिल गठबंधनों के बीच प्रतिद्वंद्विता शामिल थी। भारत के दक्षिणी भाग में, डचों ने कोचीन और कन्नूर जैसे स्थानों पर अपनी व्यापारिक चौकियाँ स्थापित करी, जिससे मसाला व्यापार में प्रभुत्व स्थापित करने के उनके प्रयास जारी रहे। उनका प्रभाव धीरे-धीरे भारत के पूर्वी तट तक भी फैल गया, जहाँ वे स्थानीय शासकों और क्षेत्रीय शक्तियों के साथ व्यापार और कूटनीति में लगे रहे।

भारत में डच उपस्थिति, हालांकि महत्वपूर्ण थी, लेकिन ब्रिटिश और पुर्तगाली जैसी अन्य यूरोपीय शक्तियों की तुलना में अपेक्षाकृत अल्पकालिक थी। 17वीं शताब्दी के अंत तक, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी इस क्षेत्र में एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभरी थी, और डचों ने अपना ध्यान ईस्ट इंडीज में अपने हितों की ओर अधिक केंद्रित करना शुरू कर दिया। अपने प्रभुत्व की अपेक्षाकृत संक्षिप्त अवधि के बावजूद, डचों ने भारतीय उपमहाद्वीप पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ा। उनकी व्यापारिक प्रथाओं और वाणिज्यिक रणनीतियों ने क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था की गतिशीलता को प्रभावित किया, और स्थानीय शासकों के साथ उनके संबंधों ने भारत में औपनिवेशिक इतिहास के जटिल ताने-बाने में योगदान दिया। डचों के आगमन ने हिंद महासागर व्यापार के इतिहास में एक नया अध्याय लिखा, जिसकी विशेषता बदलते गठबंधन, आर्थिक प्रतिस्पर्धा और सांस्कृतिक आदान-प्रदान थी। डचों ने अपनी समुद्री क्षमता और

वाणिज्यिक कौशल के साथ, यूरोप और भारतीय संबंधों के मध्य एक नया आयाम जोड़ा, जिससे इस क्षेत्र में यूरोपीय भागीदारी का मार्ग प्रशस्त हुआ।

14.3.3 डेनिश: भारत में यूरोपीय औपनिवेशिक विस्तार के व्यापक संदर्भ में, ब्रिटिश, फ्रांसीसी और डच शक्तियों के अपेक्षाकृत डेनिश शक्ति की भागीदारी उतनी प्रभावशाली नहीं थी। भारत में डेनिश का आगमन 17वीं शताब्दी की शुरुआत में हुआ, जो मुख्य रूप से डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी की महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित थे। डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना वर्ष 1616 में हुई जो शुरूआत में एशियाई व्यापार के अवसरों पर केंद्रित थी। भारत में डेनिश शक्ति का दृष्टिकोण मुख्य रूप से वाणिज्यिक था जिसका उद्देश्य बड़े पैमाने पर क्षेत्रीय नियंत्रण के बजाय व्यापारिक चौकियों को स्थापित करना था। साल 1620 में डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने दक्षिण-पूर्वी तट पर एक तटीय शहर त्रैंकोबार के अधिग्रहण के साथ ही भारत में अपनी स्थिती को पुख्ता किया, जो कि वर्तमान तमिलनाडु में अवस्थित है। यह अधिग्रहण स्थानीय शासक तंजावुर के राजा के साथ एक संधि के माध्यम से किया गया था। त्रैंकोबार दक्षिण पूर्व एशिया के साथ व्यापार के लिए एक रणनीतिक स्थल था और दो शताब्दियों से अधिक समय तक भारत में प्रमुख डेनिश बस्ती के रूप में कार्य करता रहा।

डेनिश प्रभाव और प्रशासन: त्रैंकोबार में डेनिश प्रशासन की विशेषता अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण और स्थिर शासन की संरचना थी। डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी का उद्देश्य आक्रामक विस्तार करने के बजाय व्यापार को बढ़ावा देना और एक लाभदायक व्यापार का संचालन स्थापित करना था। त्रैंकोबार को यूरोपीय शैली की इमारतों, किलेबंदी और एक सुव्यवस्थित बाजार के साथ एक सुनियोजित बस्ती के रूप में डेनिशों द्वारा विकसित किया गया था। त्रैंकोबार में डेनिश शासन के उल्लेखनीय पहलुओं में से एक स्थानीय अर्थव्यवस्था और प्रशासन में सुधार के उद्देश्य से कई उपायों की शुरूआत थी। डेनिश लोगों ने क्षेत्र में कानूनी और प्रशासनिक सुधारों की एक प्रणाली स्थापित की, जिसमें सड़कों और किलेबंदी के निर्माण जैसे बुनियादी ढांचे में सुधार के प्रयास शामिल थे।

भारत में डेनिश उपस्थिति केवल वाणिज्यिक नहीं थी। डेनिश लूथरन मिशनरी बार्थोलोमॉस ज़ीगेनबाल्ग के नेतृत्व में डेनिश मिशन ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ज़ीगेनबाल्ग 1706 में त्रैंकोबार पहुंचे और स्थानीय आबादी को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने के साथ-साथ शिक्षा और सामाजिक स्थितियों में सुधार लाने पर ध्यान केंद्रित करते हुए उन्होंने अपना काम शुरू किया। ज़ीगेनबाल्ग के प्रयास सांस्कृतिक समझ और स्थानीय परंपराओं के प्रति सम्मान पर केंद्रित थे। उन्होंने स्थानीय भाषा (तमिल) सीखी और संस्कृति से गहराई से जुड़े, जिससे डेनिश मिशनरियों और स्थानीय आबादी के बीच एक बेहतर समझ विकसित हुई। उनके काम से ईसाई ग्रंथों का तमिल में अनुवाद हुआ और स्कूलों और शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना हुई। ज़ीगेनबाल्ग के मिशन की विरासत एक स्थायी सांस्कृतिक और धार्मिक प्रभाव की थी, जिसमें क्षेत्र में एक छोटा लेकिन स्थायी ईसाई समुदाय शामिल था।

19वीं सदी तक आते आते भारत में डेनिश प्रभाव का पतन शुरू हो चुका था। यूरोपीय उपनिवेशवाद की बदलती गतिशीलता, बढ़ते ब्रिटिश प्रभुत्व और डेनिश हितों के बदलते दृष्टिकोण के कारण डेनिश उपस्थिति और प्रभाव में धीरे-धीरे कमी आने लगी थी। 1845 तक डेनिश कंपनी को वित्तीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और उसने अपनी भारतीय संपत्ति अंग्रेजों को बेच दी। अपने सीमित क्षेत्रीय नियंत्रण के बावजूद, डेनिश ने त्रैंकोबार में एक स्थायी विरासत छोड़ी। फोर्ट डैन्सबोर्ग और कई पुराने चर्चों सहित शहर की वास्तुकला डेनिश औपनिवेशिक शैली को दर्शाती है। स्थानीय संस्कृति और ऐतिहासिक स्थलों के संरक्षण में डेनिश प्रभाव अभी भी दिखाई देता है। निष्कर्षतः भारत में डेनिश उपस्थिति हालांकि ब्रिटिश, फ्रांसीसी या डच की तरह व्यापक या प्रभावशाली नहीं थी परन्तु यूरोपीय उपनिवेशवाद के इतिहास में यह एक उल्लेखनीय अध्याय था।

14.3.4 फ्रांसीसी: भारत में फ्रांसीसी शक्ति का आगमन 17वीं शताब्दी के उतरार्ध में हुआ, यह वह दौर था जब भारतीय उपमहाद्वीप में यूरोपीय ताकतें अपने को समृद्ध और स्थिर बनाने हेतु संघर्ष कर रही थीं। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी और फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी के मध्य भारतीय क्षेत्रों के व्यापार पर आधिपत्य जमाने के लिए कड़ी प्रतिस्पर्धा थी। भारत में फ्रांसीसी रणनीति, वाणिज्यिक और सैन्य दोनों महत्वाकांक्षाओं से संचालित थी, जिसके कारण संघर्षों, गठबंधनों और रणनीतिक युद्धाभ्यासों की एक श्रृंखला चल पड़ी जिसने एक सदी से भी अधिक समय तक भारतीय इतिहास के पाठ्यक्रम को आकार दिया।

फ्रांसीसी शक्ति की स्थापना: वर्ष 1664 में जीन-बैप्टिस्ट कोलबर्ट के द्वारा स्थापित फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी का लक्ष्य हिंद महासागर में ब्रिटिश और डच शक्ति को टक्कर देना था। भारत में कंपनी की पहली महत्वपूर्ण उपस्थिति 1668 में सूरत के बंदरगाह शहर में स्थापित हुई, यहीं इन्होंने अपना पहला कारखाना स्थापित किया था। इसके पश्चात सन 1674 में फ्रांस्वा मार्टिन के नेतृत्व में फ्रांसीसियों ने पांडिचेरी का अधिग्रहण कर लिया जो आगे चलकर भारत में फ्रांसीसियों के मुख्य कार्यलय के रूप में उभरा। अन्य यूरोपीय शक्तियों की ही भाति फ्रांसीसियों ने भे भारत के विभिन्न रणनीतिक स्थलों पर अपने कारखाने स्थापित किये (बालासोर, चंद्रनगर, मुसलीपट्टनम, कालीकट, तेल्लीचेरी इत्यादि। आगे चलकर बिहार और बंगाल में भी उन्होंने अपने वाणिज्यिक केन्द्र स्थापित किये।)। फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत में व्यापार और किलेबंद व्यापारिक चौकियों की स्थापना पर अपना ध्यान विशेष रूप से केंद्रित किया। पांडिचेरी को एक महत्त्वपूर्ण बंदरगाह और वाणिज्यिक केंद्र के रूप में फ्रांसीसियों द्वारा विकसित किया गया, जिसने भारतीय उपमहाद्वीप और उससे आगे के व्यापार और व्यापारियों को आकर्षित किया जा सकता था। फ्रांसीसियों द्वारा भारत से निर्यात किये जाने वाले प्रमुख मदों में शामिल था- सूती कपड़ा, मलमल, काली मिर्च, शोरा, बहुमूल्य लकड़ी, रंगे हुए कपड़े, इत्यादि।

फ्रांसीसियों ने सर्वप्रथम साल 1721 ई. में मालबार तट पर स्थित माहे का अधिग्रहण किया और इसके बाद 1731 ई. में येमन तथा 1758 ई. में कराईकाल पर भी उनका अधिकार हो गया। फ्रांसीसियों का मुख्य कार्यालय

पांडिचेरी था जहाँ उन्होंने 1700-1707 ई. के दौरान फोर्ट लुई किले का निर्माण करवाया। फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले की इच्छा भारत में एक क्षेत्रीय उपनिवेश स्थापित करने की थी ताकि यहीं से प्राप्त राजस्व के माध्यम से भारतीय वस्तुओं की खरीद-फरोख्त कर उनका निर्यात किया जा सके। लेकिन फ्रांसिसी कंपनी के शेयरधारक डूप्ले की इस योजना को लेकर आशंकित थे और वे स्वयं भी औपनिवेशीकरण अभियान की इतनी भारी लागत चुकाने हेतु अनिच्छुक थे। इसके अतिरिक्त डूप्ले के इस सपने को साकार बनाने में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की भी एक प्रमुख बाधा थी। दक्खन भारत में निजामुल-मुल्क की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार को लेकर लड़े जाने वाले युद्ध को लेकर फ्रांसीसियों को दक्खन की राजनीति में प्रवेश करने का मौका सहज ही उपलब्ध हो गया। निजाम के पोते मुजफ्फर जंग को जहाँ फ्रांसीसियों ने अपना समर्थन दिया वहीं उसके प्रतिद्वंदी निजाम के दूसरे बेटे नासिर जंग को अंग्रेजों ने मदद करी। अम्बूर के युद्ध (1749) में मुजफ्फर जंग विजयी हुआ और उसने कृष्ण नदी के दक्षिण के पूरे क्षेत्र पर डूप्ले को अपना प्रतिनधि घोषित कर दिया। इसके साथ ही मुसलीपट्टनम का क्षेत्र फ्रांसीसियों को पारितोषिक के रूप में दे दिया गया और कर्नाटक के राजस्व संबंधी अधिकार भी उन्हें सौंप दिए गए। इसी प्रकार जब मुजफ्फर जंग की मृत्यु के पश्चात सलामत खान् गद्दीनशीं हुआ तो फ्रांसीसियों को कुछ और क्षेत्रों पर भी अधिकार प्रदान करा दिया गया। इन सबके चलते अब लगभग पूरे कोरोमंडल पर फ्रांसीसियों का आधिपत्य स्थापित हो गया। अब जब फ्रांसिसी अपने क्षेत्रीय साम्राज्य के स्वप्न को साकार करने के करीब ही थे कि फ्रांसिसी सरकार ने 1754 में कर्नाटक में उनके असफल प्रयोग और अंग्रेजों की धूर्ततापूर्ण कूटनीति के चलते अपने काबिल गवर्नर डूप्ले को वापिस बुला लिया। फ्रांसिसी अधिकारी अब तक डूप्ले से परेशान हो चुके थे, और वे अपने योग्यतम, कुशल, प्रतिभा-संपन्न और शक्तिशाली गवर्नर की दक्षतापूर्ण नीतियों के महत्त्व को समझने में असक्षम थे। डूप्ले के उत्तराधिकारी के रूप में गोदहे अगला गवर्नर बनकर आया, जिसने आते ही डूप्ले की नीतियों को पलट दिया और अंग्रेजों से संधि कर ली। इन सभी घटनाओं का विवरण आप अगले सत्र में विस्तार पूर्वक करेंगे।

कर्नाटक के युद्ध और फ्रांसीसी प्रभाव में गिरावट: 18वीं शताब्दी भारत में यूरोपीय शक्तियों के बीच तीव्र प्रतिस्पर्धा का दौर था, जिसमें फ्रांसीसी और ब्रिटिश अक्सर क्षेत्रों और प्रभाव के नियंत्रण को लेकर भिड़ते रहते थे। कर्नाटक के युद्ध (1744-1763) फ्रांसीसी और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनियों के बीच संघर्षों की एक श्रृंखला थी, जो व्यापक यूरोपीय प्रतिद्वंद्विता को दर्शाती है। (विशेष रूप से सप्तवर्षीय युद्ध)। इन संघर्षों में प्रमुख व्यक्तियों में जोसेफ फ्रांकोइस डुप्ले जैसे फ्रांसीसी कमांडर शामिल थे, जिन्होंने भारत में फ्रांसीसी गवर्नर-जनरल के रूप में कार्य किया। डुप्ले की महत्वाकांक्षी नीतियों का उद्देश्य स्थानीय भारतीय शासकों, जिनमें कर्नाटक के नवाब, चंदा साहिब और मुगल सम्राट शामिल थे, के साथ गठबंधन के माध्यम से फ्रांसीसी प्रभाव का विस्तार करना था। उनके प्रयासों से शुरू में महत्वपूर्ण सफलताएँ मिलीं, क्योंकि फ्रांसीसी दक्षिण भारत के विभिन्न क्षेत्रों पर अपना प्रभाव डालने में कामयाब रहे थे। हालाँकि अंततः रॉबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने बढ़त हासिल कर ली। 1757 में प्लासी

की निर्णायक लड़ाई ने भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। अब बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला पर क्लाइव की जीत ने इस क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभुत्व को मजबूत किया और फ्रांसीसी संभावनाओं को कम कर दिया।

शुरुआती सफलताओं के बावजूद, भारत में फ्रांसीसियों की स्थिति सप्तवर्षीय युद्ध के बाद क्षीण होने लगी थी, जो कि 1763 में पेरिस की संधि के साथ समाप्त हुई। इस संधि में अंग्रेजों को लाभ हुआ, जिस कारण फ्रांसीसियों को भारत में अपनी कई संपत्तियां अंग्रेजों को सौंपनी पड़ी। फ्रांसीसियों को केवल पांडिचेरी, चंद्रनगर और कुछ अन्य छोटी बस्तियों को बनाए रखने की अनुमति थी। 18वीं सदी के अंत और 19वीं सदी की शुरुआत में, भारत में फ्रांसीसी शक्ति का बोलबाला मुख्य रूप से इन परिक्षेत्रों तक ही सीमित हो गया था। फ्रांसीसी व्यापार में लगे रहे और उन्होंने अपनी सीमित सैन्य उपस्थिति बनाए रखी, लेकिन उनके राजनीतिक प्रभाव को बढ़ते ब्रिटिश साम्राज्य ने दबा दिया।

हालांकि भारत में फ्रांसीसी प्रभाव अंग्रेजों की तुलना में अपेक्षाकृत अल्पकालिक था, लेकिन इसने एक स्थायी प्रभाव छोड़ा। पांडिचेरी शहर, जिसे अब पुडुचेरी कहा जाता है, अभी भी अपने फ्रांसीसी औपनिवेशिक अतीत की वास्तुकला और सांस्कृतिक छापों को संजोए हुआ है। वहाँ के चर्च, प्रशासनिक भवन और फ्रांसीसी औपनिवेशिक इमारतें आज भी उस युग की गवाही प्रस्तुत करते हैं।

14.3.5 अंग्रेज: भारत में अंग्रेजों के आगमन ने भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ को चिह्नित किया है। यह महत्वपूर्ण घटना किसी एक अभियान या किसी एक व्यक्ति की महत्वाकांक्षा का परिणाम नहीं थी, बल्कि व्यापार, कूटनीति और संघर्ष से जुड़ी बातचीत का एक जटिल क्रम था। भारत में ब्रिटिश उपस्थिति वाणिज्यिक हितों से विकसित होकर एक प्रमुख औपनिवेशिक शासन में बदल गई, जिसने इस क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिदृश्य को गहराई से प्रभावित किया।

वर्ष 1600 ई. में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना हुई थी और इसी के साथ उनका भारत में पहली बार प्रवेश हुआ। शुरुआत में, कंपनी ने पुर्तगालियों और डच जैसी अन्य यूरोपीय शक्तियों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हुए आकर्षक मसाला व्यापार से लाभ उठाने की कोशिश की। अंग्रेजों द्वारा भारत में खुद को स्थापित करने के शुरुआती प्रयास मुख्य रूप से क्षेत्रीय नियंत्रण के बजाय व्यापार पर केंद्रित थे। मुगल सम्राट जहाँगीर की अनुमति के उपरान्त भारत में अंग्रेजों का पहला महत्वपूर्ण कारखाना 1612 में सूरत में स्थापित किया गया था। ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा भारत के विभिन्न भागों जैसे मद्रास (अब चेन्नई), बॉम्बे (अब मुंबई) और कलकत्ता (अब कोलकाता) में व्यापारिक चौकियाँ स्थापित करने से ब्रिटिश आर्थिक और राजनीतिक प्रभाव की नींव पड़ी। ये व्यापारिक फैक्ट्रियां या "कारखाने" कपड़ा, चाय और मसालों जैसे सामानों के प्रवाह को सुविधाजनक बनाने के लिए रणनीतिक रूप से महत्त्वपूर्ण थे।

जैसे-जैसे ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रभाव बढ़ता गया, वैसे-वैसे उसकी महत्वाकांक्षाएँ भी बढ़ती गईं। 18वीं शताब्दी के दौरान ब्रिटिश शक्ति का आर्थिक उद्देश्यों और अन्य यूरोपीय शक्तियों के साथ प्रतिस्पर्धा दोनों से प्रेरित होकर महत्वपूर्ण विस्तार हुआ। 1757 में प्लासी की लड़ाई भारत तथा अंग्रेजों के सम्बन्ध निर्धारण में एक महत्वपूर्ण क्षण था। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला पर कंपनी की जीत ने न केवल बंगाल में इसकी शक्ति को मजबूत किया, बल्कि भारत में ब्रिटिश राजनीतिक प्रभुत्व की शुरुआत का भी संकेत दिया। इस जीत का श्रेय रॉबर्ट क्लाइव को जाता है, जिन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए एक विशाल क्षेत्र और पर्याप्त राजस्व सुरक्षित किया, जिससे ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की नींव रखी गई।

इसके बाद के दशकों में आंग्ल-मैसूर युद्ध और आंग्ल -मराठा युद्ध जैसे संघर्षों की एक श्रृंखला देखी गई, जिसने भारतीय क्षेत्रों पर ब्रिटिश नियंत्रण को और अधिक बढ़ा दिया। 19वीं शताब्दी की शुरुआत तक, ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत के बड़े हिस्से पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था, जिसने ब्रिटिश शासन की औपचारिक स्थापना के लिए मंच तैयार किया। ईस्ट इंडिया कंपनी के नियंत्रण में गिरावट 1857 के सिपाही विद्रोह के बाद आई, जिसे 1857 की क्रान्ति भी कहा जाता है। भारतीय सैनिकों के बीच असंतोष और ब्रिटिश नीतियों के खिलाफ व्यापक शिकायतों से प्रेरित यह विद्रोह ब्रिटिश सत्ता के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती थी। विद्रोह को अंततः दबा दिया गया, लेकिन इसने कंपनी के प्रशासन की कमजोरियों और अक्षमताओं को उजागर कर दिया। विद्रोह के जवाब में, ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार अधिनियम 1858 को अधिनियमित किया, जिसके कारण ईस्ट इंडिया कंपनी का विघटन हो गया। अब भारत का प्रशासन सीधे ब्रिटिश क्राउन को सौंप दिया गया, जिससे ब्रिटिश राज की शुरुआत हुई। 1858 से 1947 तक चलने वाले इस काल में रेलवे और टेलीग्राफ के निर्माण सहित व्यापक अवसंरचनात्मक विकास के साथ-साथ महत्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन भी हुए।

विरासत और प्रभाव: भारत में ब्रिटिश शासन ने एक विशाल विरासत छोड़ी। एक ओर, इसने विभिन्न प्रशासनिक सुधार, शैक्षिक उन्नति और अवसंरचनात्मक विकास की शुरुआत की। दूसरी ओर, इसने आर्थिक शोषण, सामाजिक विघटन और सांस्कृतिक अधिरोपण को भी जन्म दिया। भारत की राजनीतिक और सामाजिक संरचनाओं पर ब्रिटिश उपनिवेशवाद का प्रभाव गहरा और स्थायी था, जिसने 1947 में ब्रिटिश शासन के अंत से बहुत आगे तक भारतीय इतिहास के पाठ्यक्रम को प्रभावित किया। इस प्रकार भारत में अंग्रेजों का आगमन एक परिवर्तनकारी घटना थी, जिसने औपनिवेशिक प्रभुत्व और भारतीय समाज और राजनीति के पुनर्गठन की विशेषता वाले एक नए युग की शुरुआत की। इस अवधि को समझने के लिए उन कारकों की सूक्ष्म जांच की आवश्यकता है, जिनके कारण ब्रिटिश विस्तार हुआ और भारतीय उपमहाद्वीप पर इसके परिणामस्वरूप प्रभाव पड़ा। अगले कुछ अध्यायों और सत्रों में आप इस विषय पर विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

14.4 सारांश

भारतीय इतिहास में यूरोपीयों का आगमन एक महत्त्वपूर्ण बदलाव को चिह्नित करता है, जिसने भारतीय भूमि पर औपनिवेशिक शक्ति का सुदृढ़ीकरण कर लगभग दो शताब्दियों तक भारत में अपनी राजसत्ता को अक्षुण्ण बनाए रखा। भारत में सर्वप्रथम 'वास्को डी गामा' नामक एक पुर्तगाली खोजकर्ता सन 1498 में भारत पहुंचा, और उसने व्यापार मार्ग तथा तटीय क्षेत्रों में अपने लोगों को स्थापित कर बस्तियों का निर्माण किया। इसके पश्चात शनैः शनैः अन्य यूरोपीय शक्तियों का भी भारत में आगमन हुआ जैसे की डच, ब्रिटिश, डेनिश और फ्रांसीसी। इनमें से प्रत्येक यूरोपीय शक्ति ने भारत की संपत्ति और रणनीतिक लाभों का दोहन करने की भरपूर कोशिश की। पुर्तगालियों ने व्यापार और मिशनरी गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करते हुए गोवा को अपना गढ़ बना लिया। डच ईस्ट इंडिया कंपनी ने पुर्तगालियों के साथ डटकर मुकाबला किया और पश्चिमी तथा पूर्वी तटों के प्रमुख बंदरगाहों और व्यापारिक केंद्रों पर नियंत्रण हासिल कर लिया। इसी बीच फ्रांसीसी कंपनी ने दक्षिणी भारत के पांडिचेरी में अपनी व्यापारिक फैक्ट्रियाँ स्थापित की। इन यूरोपीय शक्तियों में सबसे महत्त्वपूर्ण शक्ति थी ब्रिटिश साम्राज्य- वह ब्रिटिश ही थे जो अपने सैन्य कौशल, कूटनीतिक गठबंधनों और आर्थिक नियंत्रण के संयोजन के माध्यम से प्रमुख औपनिवेशिक शक्ति के रूप में उभरे। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी जो शुरू में मात्र एक व्यापारिक इकाई के रूप में कार्यरत थी; ने स्वदेशी शक्तियों के कमजोर होने पर धीरे-धीरे भारतीय क्षेत्रों पर अपना प्रभाव बढ़ाया। 1757 में प्लासी की लड़ाई और 1764 में बक्सर की लड़ाई के पश्चात ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर नियंत्रण कर यहाँ की दीवानी प्राप्त कर ली, जिससे आगे के क्षेत्रीय विस्तार हेतु एक विस्तृत खाका खींच लिया गया। अंग्रेजों ने अप्रत्यक्ष शासन की रणनीति अपनाई और आर्थिक लाभ के लिए भारत के संसाधनों का जमकर दोहन किया। 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश ताज ने भारत पर सीधा नियंत्रण कर लिया और अब ताज के तहत प्रत्यक्ष ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई। अब भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका था जो कच्चे माल के स्रोत और ब्रिटिश सामानों के लिए एक बाजार के रूप में उपलब्ध था।

वस्तुतः यूरोपीय लोगों के भारत आगमन के पश्चात प्रभुत्व, अधिकार और प्रतिस्पर्धा का एक तीव्र दौर शुरू हुआ जिसमें अंग्रेजों ने अंततः विजय पायी और भारत में आर्थिक शोषण, सैन्य विजय और रणनीतिक गठबंधनों के माध्यम से औपनिवेशिक शक्ति को मजबूत किया। औपनिवेशिक शासन के इस काल ने भारत के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य को गहराई से प्रभावित किया और एक नये सांचे में ढाल कर 1947 में इसकी स्वतंत्रता के लिए एक मंच प्रदान किया।

14.5 तकनीकी शब्दावली

- ❖ कार्टेज़: पुर्तगालियों द्वारा भारतीय तथा एशियाई व्यापारियों को जारी किया गया एक प्रकार का परमिट जिसके माध्यम से वे समुद्री व्यापार करते थे।
- ❖ काफिला: व्यापारिक जहाजों का वह समूह जिसे नौसैनिक बेड़े द्वारा सुरक्षा मुहैय्या कराई जाती थी।

14.6 स्वमूल्यांकित प्रश्न

प्रश्न: वास्को डी गामा किस वर्ष भारत पहुंचा था?

1. 1492 2. 1592 3. 1498 4. 1598

प्रश्न: पुर्तगालियों ने किस वर्ष गोवा को औपचारिक रूप से अपनी राजधानी घोषित किया?

1. 1410 2. 1510 3. 1530 4. 1540

प्रश्न: डूप्ले का सम्बन्ध किस देश से रहा है?

1. ब्रिटेन 2. पुर्तगाल 3. फ्रांस 4. हालैंड

प्रश्न: भारत में कार्टेज़ प्रणाली की शुरुआत किस विदेशी शक्ति द्वारा की गई थी?

1. अंग्रेज 2. फ्रांसिसी 3. हालैंड 4. पुर्तगाल

14.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

- ❖ मध्यकालीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मानविकि विद्यापीठ
- ❖ मध्यकालीन भारत (भाग-2), हरीशचन्द्र वर्मा, संस्करण-2009
- ❖ History of British India, P. E. Roberts, 1976
- ❖ मध्यकालीन भारत, डॉ० सतीश चन्द्र, संस्करण-2016
- ❖ मध्यकालीन भारत का इतिहास, वी. डी. महाजन, संस्करण-2016
- ❖ Kumar, R. (2007), The Emergence of British India, New Delhi: Oxford University Press
- ❖ English Travellers in India, M. A. Ansari, Publication-1974
- ❖ Cameron, J. (2002) The British Empire in India: A Historical Overview, London: Routledge
- ❖ IGNOU, MA History Book

14.18 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में यूरोपीय शक्तियों के आगमन पर टिप्पणी कीजिये?
2. भारत में डच प्रभाव को स्पष्ट कीजिये।